मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, लिमिटेड
इलाहाबाद

भूमिका

अपने अध्ययन तथा अध्यापन काल में जिन पौराणिक अन्तर्कथाओं का मैंने संग्रह किया था, उनको अपने इष्टमित्रों तथा विद्यार्थियों के आग्रह से कोशरूप में प्रस्तुत कर रही हूँ। जिन ज्ञात तथा अज्ञात विद्वानों के ग्रंथों से मुझे इस कोश की सामग्री उपलब्ध हुई है, उनको धन्यवाद देते हुए मैं विशेष रूप से संपादक-'कल्याण' (गोरखपुर) की आभारी हूँ, जिन्होंने अपने यहाँ से प्रकाशित रामायण, महाभारत, पुराणादि ग्रंथों से कथाओं को चयन करने की अनुमति मुझे दे दी है।

इस कोश में केवल उन्हीं मुख्य पौराणिक अन्तर्कथाओं का संग्रह है, जिनके लिए हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों को इधर-उधर भटकना पड़ता है। मुझे पूर्ण आशा है कि केवल विद्यार्थीगण ही नहीं, किन्तु अन्य कथा-प्रेमी भी इस "कथा-कोश" से लाभ उठायंगे।

पं० देवीदयाल चतुर्वेदी की अमूल्य सहायता से ही इस कोश का प्रकाशन संभव हो सका—इसलिए उनकी भी मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।

प्रयाग,
अधिक वैशाख, कृष्ण ४
२०१० वि०

—सम्पादिका

पृष्ठ

विषय			पृष्ठ

प्रासंगिक

कथा-कोश

अंबा, अंबिका, अंबालिका, शाल्व, भीष्म, शिखंडी, विचित्रवीर्य

भरत राजा के वंश में शान्तनु नामक एक राजा थे। उनके तीन पुत्र थे—देवव्रत, चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। देवव्रत ने आजन्म अविवाहित और कभी राज्य न करने की भीष्म प्रतिज्ञा की थी, अतएव वे 'भीष्म' नाम से प्रसिद्ध हो गये। चित्राङ्गद एक युद्ध में मारे गये। ऐसी दशा में अपनी माता सत्यवती के कहने से भीष्म काशी के राजा इन्द्रद्युम्न की तीनों पुत्रियों का हरण (स्वयंवर सभा से) कर हस्तिनापुर ले आये। ये तीन पुत्रियाँ थीं—अंबा, अंबिका और अंबालिका।

अंबा सबसे बड़ी थी। वह सौभदेश के राजा शाल्व को पतिरूप में वरण कर चुकी थी, अतएव भीष्म ने उसे शाल्व के पास पहुँचा दिया; किन्तु शाल्व ने उसके चरित्र पर संदेह कर उसे ग्रहण नहीं किया। अतः वह अपनी दुर्दशा का कारण भीष्म को समझ, उनसे बदला लेने के लिए, परशुराम के पास पहुँची; किन्तु वसु के अवतार, महाबली, योद्धा अपने शिष्य भीष्म से युद्ध कर परशुराम हार गये। इससे निराश हो अंबा तपोवन मे जाकर उग्र तप करने लगी। शिवजी ने उसके तप से प्रसन्न हो, उसे वरदान दिया कि तुम दूसरे जन्म में पुरुषत्व प्राप्त कर युद्ध में भीष्म को मारोगी। तुम राजा द्रुपद के यहाँ जन्म लोगी और तुम्हे सब वृत्तान्त स्मरण रहेगा। इसके पश्चात् चिता में जलकर

अंबा मर गई। फिर उसने शिखंडी नामक कन्या होकर पुरुषत्व प्राप्त किया, जिसको आगे कर पांडवों ने भीष्म पितामह को बाणों से वेध मूर्च्छित कर दिया।



अंबा को शंकर का वरदान

अंबा से छोटी बहिन का नाम अंबिका था। वेदव्यास के नियोग द्वारा अंबिका के गर्भ से धृतराष्ट्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सबसे छोटी बहन अंबालिका थी। उसके गर्भ से पांडु का जन्म हुआ। धृतराष्ट्र के पुत्र "कौरव" और पाडु-के पुत्र "पाडव" कहलाये।

शाल्व शिशुपाल का मित्र था। वह रुक्मिणी के विवाह के अवसर पर बारात में, शिशुपाल की ओर से, गया था। रुक्मिणी-हरण के समय यदुवंशियों ने युद्ध मे जरासन्ध आदि के साथ शाल्व को भी हराया था। तभी शाल्व ने यदुवंशियो के नाश की प्रतिज्ञा की थी। इसी कारण उसने आशुतोष भगवान् शंकर को मनाने के लिए उग्र तपस्या की। शंकर के प्रसन्न होने पर शाल्व ने वर माँगा कि मुझे आप ऐसा विमान दीजिए जो देवता, असुर, मनुष्य, गंधर्व, नाग और राक्षसों से भी तोड़ा न जा सके। विमान स्वेच्छाचारी और यदुवंशियों का नाश करनेवाला हो। तब भगवान् शंकर ने मय दानव से लोहे का "सौभ" नामक विमान बनवाकर शाल्व को दे दिया। शाल्व ने इसी विमान पर चढ़ द्वारका पर चढ़ाई कर दी। प्रद्युम्न और शाल्व का घमासान युद्ध हुआ।

उन दिनों श्रीकृष्ण और बलराम इन्द्रप्रस्थ गये हुए थे। श्रीकृष्ण द्वारका पर आई विपत्ति की सूचना पाकर लौट आये। युद्ध-भूमि में आये तो शाल्व, अपने मित्र शिशुपाल की मृत्यु और रुक्मिणी-हरण को याद कर, कृष्णजी पर टूट पड़ा। बहुत देर तक श्रीकृष्ण और शाल्व में युद्ध होता रहा। अन्त मे भगवान् के चक्र से उसकी मृत्यु हो गई और उसका दिव्य विमान भी चूर-चूर हो गया।

अंबरीष, दुर्वासा, सुदर्शन चक्र, कृत्या

सूर्यवंशी राजा अंबरीष परम प्रतापी और भगवान् के भक्त थे। एक बार उन्होंने एकादशी का व्रत करने का निश्चय किया। एकादशी का व्रत कर एक दिन वे, द्वादशी को कुछ खाकर, व्रत पूर्ण करने ही जा रहे थे कि दुर्वासा मुनि अनेक ऋषियों के साथ आ पहुँचे। राजा ने व्रत का पारण न कर दुर्वासा मुनि से भोजन करने के लिए प्रार्थना की। दुर्वासाजी स्नान करने चले गये। वहाँ उन्हे देर हो गई। उस दिन द्वादशी थोड़ी ही देर के लिए थी और त्रयोदशी लगने में एक-आध घड़ी

बाकी थी। शास्त्रानुसार द्वादशी में ही पारण न करने से दोष लगता है और त्रयोदशी लग जाने से व्रत निष्फल हो जाता है। अतः ब्राह्मणों के कहने से उन्होंने शालग्राम की मूर्त्ति को स्नान करा चरणामृत पी लिया। इतने मे दुर्वासाजी लौट आये। उन्हें भ्रम हो गया कि राजा ने, बिना मेरे आये ही, जलपान कर लिया है। अतएव आगबबूला हो उन्होंने राजा को शाप दे दिया कि तुम्हें मुक्ति नहीं मिलेगी और दस बार शरीर धारण करना होगा। शाप दे देने पर भी उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ। उन्होंने अपना एक बाल तोड़कर "कृत्या" नाम की एक भयानक राक्षसी उत्पन्न की। वह राजा को खाने को झपटी, तब भगवान् ने सुदर्शन चक्र फेंककर उस कृत्या को भस्म कर दिया। फिर वह चक्र दुर्वासा को दंड देने के लिए उनके पीछे पीछे चला। दुर्वासा अपने प्राण बचाने को तीनों लोकों में भागते फिरे, किन्तु उन्हें कहीं शरण न मिली। अन्त में दुर्वासा मुनि राजा अम्बरीष के पैरों पर गिर पडे और क्षमा माँगने लगे। तब भगवान् ने चक्र को शान्त कर दिया और दुर्वासा मुनि से कहा कि जो शाप आपने राजा को दिया है, उसे अपने प्रिय भक्त के बदले में स्वयं ग्रहण करूँगा। इसी कारण भगवान् को मत्स्य, वाराह, कूर्म, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि ये "दशावतार" लेने पड़े।

अकृतव्रण और परशुराम

महामुनि अकृतव्रण भगवान् परशुराम के परमप्रिय शिष्य थे। ये बड़े साधु स्वभाव के मुनि थे। जब ये छोटे बालक थे, तब इन्हें बाघ उठाकर वन मे ले गया था। बाघ ने इन्हें मारा नहीं, इनका पालन-पोषण किया। ये वन में शेर, बाघ आदि हिंसक पशुओं के बीच में पले थे। दैवसयोग से इन्हें परशुरामजी मिल गये। वे इन्हें उठा लाये और शिक्षा दी। बाघों के बीच रहते हुए भी इन्हें एक व्रण नहीं हुआ,

इसलिए इनका नाम अकृतव्रण पड़ा। ये अत्यन्त गुरुभक्त थे। परशुराम के साथ सदैव छाया की तरह रहते थे।

अगस्त्य, विंध्याचल, आतापी, वातापी, टिटिहरी

अगस्त्य मुनि वेदों के मंत्रदृष्टा ऋषि थे। इनके पिता का नाम सूर्य और वरुण था। कहते हैं, एक वार वे दोनों स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी पर मुग्ध हो गये, जिससे अगस्त्य का जन्म हुआ। अगस्त्य का जन्म एक घड़े में हुआ था, अतएव ये कुंभज ऋषि कहलाते थे। अगस्त्य अपने कर्मों के कारण अगस्त्य नाम से प्रसिद्ध हुए थे—जो 'अग' अर्थात् पर्वत को भी स्तंभित कर दे, उसे "अगस्त्य" कहते हैं।

एक वार विंध्याचल पर्वत को बड़ी ईर्ष्या हुई कि सब देवता सूर्य, चन्द्र आदि सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं, किन्तु मेरी नहीं करते। पाषाण होने के कारण उसमें नम्रता और कोमलता के भाव कहाँ से आते? अतएव ईर्ष्या के वशीभूत हो उसने सूर्य का मार्ग बन्द करने का विचार किया। सूर्य से उसका विशेष वैर था, कारण सूर्य की गर्मी से उसके वृक्ष आदि झुलस जाते थे। गर्व में वह बढ़ने लगा। बढ़ते-बढ़ते सूर्य को भी उसने ढक लिया। जब संसार में सर्वत्र अंधकार छा गया, तो देवताओं ने महर्षि अगस्त्य से प्रार्थना की। महर्षि अगस्त्य, अपनी पत्नी लोपामुद्रा के साथ, विन्ध्य पर्वत के निकट गये। विन्ध्याचल शाप के भय से उनके चरणों में गिरकर बोला—"मेरे योग्य कोई सेवा बताइए।"

अगस्त्य मुनि ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा—'जब तक मैं न लौटूँ, ऐसे ही पड़े रहना।'

महर्षि अगस्त्य दक्षिण चले गये और फिर वहाँ से न लौटे। तब से आज तक विन्ध्याचल ज्यों का त्यों पड़ा हुआ है।

अगस्त्य मुनि लोक-कल्याण के लिए प्रसिद्ध है। दो-एक बार महर्षि ने समुद्र को भी पी लिया था। वृत्रासुर के मारे जाने के बाद बचे हुए "कालेय" आदि दैत्य समुद्र में छिपकर रहने लगे थे। वे रात को बाहर निकलते थे और अनेक प्रकार के उपद्रव किया करते थे। ये दैत्य ऋषि-मुनियों को भी खा जाया करते थे। अतएव उनके दुःख से दुःखी हो, अगस्त्य ने एक चुल्लू में समुद्र का जल पी लिया। समुद्र के सूख जाने पर उसमें से दो भयंकर राक्षस "आतापी" और "वातापी" निकले। इन दोनों को अगस्त्य ने बड़ी युक्ति से मार डाला।

एक समय समुद्र एक टिटिहरी नामक चिड़िया के तीन बच्चों को बहा ले गया। क्रोध कर समुद्र को सुखा डालने की इच्छा से वह चिड़िया अपनी चोंच में पानी भर-भरकर बाहर फेंकने लगी। अगस्त्य मुनि ने उसे देख इसका कारण पूछा, तो उसने अपना सारा दुःख कह सुनाया। मुनि को उस निस्सन्तान टिटिहरी पर बड़ी दया आई और उससे कहने लगे—'समुद्र बड़ा जड़ है। हम उसको अवश्य दंड देंगे।' ऐसा कहकर वे समुद्र के किनारे स्नान करने लगे। उसी समय समुद्र उनकी पूजा की समस्त सामग्री बहा ले गया। अब मुनि का क्रोध और भड़क उठा। उन्होंने तीन बार आचमन कर समुद्र को सुखा डाला और वहां मैदान कर दिया। फिर कुछ काल पीछे जब देवताओं ने मुनि की स्तुति की, तो उन्होंने लघुशंका कर समुद्र को फिर से भर दिया। इसीलिए समुद्र का पानी खारा हो गया।

इन्होंने ही राजा नहुष को शाप देकर महाकाय अजगर बना दिया था श्रीराम वनगमन के समय इनके आश्रम मे पधारे थे। भक्त सुतीक्ष्ण इन्हीं के शिष्य थे। श्रीराम जब अयोध्या लौटे और जब उनका राज्याभिषेक हुआ, तो उन्होंने राम को अनेक कथाएँ सुनाई थीं।

अगस्त्य-संहिता नाम का एक सुन्दर ग्रंथ भी है। अगस्त्य एक तारा है, जिसका उदय शरद् ऋतु मे होता है। उसका उदय होने से मार्ग का वर्षा-जल सूख जाता है और सरोवरों का जल शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल हो जाता है। इसी तारे से संवत् के शुभाशुभ का भी विचार होता है।

अगस्त्य मुनि के पर्य्यायवाची नाम हैं—मैत्रावरुणि, और्वशेय, कुंभज, घटोद्भव, कुंभसंभव, समुद्रचुलुक, पीताब्धि।

अगस्त्य ऋषि समुद्र के शत संकटों की अवहेलना कर दूर दूर की निर्बाध यात्रा किया करते थे। भारत के पूर्वीय द्वीपों के असंख्य निवासी आज भी अपने को अगस्त्य मुनि की सन्तान मानते हैं।

अंधक, शिव, भैरव

अंधक दैत्य कश्यप और उनकी पत्नी दिति का पुत्र था। इसके एक सहस्र सिर थे और दो सहस्र भुजाएँ और नेत्र थे। दैत्यों की मृत्यु के उपरान्त, दिति देवताओं पर बहुत क्रुद्ध हुई। उसने कश्यप से एक अत्यन्त पराक्रमी और अवध्य पुत्र की याचना की जिससे इस दैत्य की उत्पत्ति हुई। दो हजार नेत्र रहने पर भी वह दैत्य अंधक इसलिए कहलाता था कि अहंकार के नशे में चूर अंधों के समान लड़खड़ाता हुआ चलता था।

एक वार वह स्वर्ग से पारिजात पुष्प चुराकर ला रहा था कि उसकी मुठभेड़ शिव से हो गई। शिव ने उसे मार डाला। इसी कारण शिव अंधकारि कहलाने लगे। जिस समय शिव इस दैत्य से युद्ध कर रहे थे, उस समय इसने शिव के मस्तक पर अपनी एक गदा मारी, जिससे रक्त की धारा बहने लगी। उसी धारा से पाँचों भैरवों की उत्पत्ति हुई। भैरव शिव के गण हैं, जो उन्हीं के अवतार माने जाते हैं।

अक्रूर और नन्द

अक्रूर यदुवंशी श्वफल्क (सुफलक) के पुत्र थे। ये कृष्णजी के चाचा लगते थे और मथुरा में कंस का राजकाज सँभालते थे। नाना प्रकार के प्रयत्नों से कंस जब श्रीकृष्ण को मार न सका, तो उसने धनुषयज्ञ और

मल्ल-युद्ध देखने के बहाने बलराम और कृष्ण को मथुरा बुलाने के लिए दानोध्यक्ष अक्रूर को व्रजभूमि भेजा।

यदुवशी अक्रूर बड़े धर्मात्मा थे और वसुदेव के भाई लगते थे। व्रजभूमि आने पर अक्रूर बड़े चिन्तित और दुःखी थे। मार्ग में वनभूमि पर पड़े ध्वज, वज्र, अकुश आदि चिह्नों से युक्त श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न देखकर अक्रूर विह्वल होकर रथ से कूद पड़े और वहाँ की भूमि मे लोट-पोट हो वहाँ की रज उठा उठाकर शरीर में मलने लगे। फिर वे गोपों के प्रधान, दक्ष प्रजापति के अवतार, नन्द के यहाँ पहुँचे।



अक्रूर

अक्रूर ने गोकुल जाकर नन्द बाबा से और श्रीकृष्ण से उनके मामा कंस का सँदेशा कह सुनाया और कृष्ण-बलराम को लेकर वे मथुरा चले। विदा होते समय यमुना नदी के किनारे रथ खड़ा कर अक्रूर स्नान करने लगे, तो डुबकी लगाते ही जल में बलराम और कृष्ण दिखाई पड़े। विस्मित हो सिर उठाकर दूर तट पर रथ को

नाग पर विराजमान चतुर्भुज स्वरूप विष्णु भगवान् को समस्त पार्षदों सहित देखा। भगवान् के दर्शन कर अक्रूर परम आनन्दित हो स्तुति करने लगे। भगवान् की मूर्ति के अन्तर्धान होने पर अक्रूर जल से बाहर निकल आये और रथ पर बैठ गये। कंस को मारकर श्रीकृष्ण अक्रूर के घर भी गये थे और उनका आतिथ्य स्वीकार किया था।

पांडु की मृत्यु का समाचार सुन, कृष्णजी ने अक्रूर को हस्तिनापुर भेजा था। अक्रूर वहाँ गये और धृतराष्ट्र का पांडवों के प्रति कटु व्यवहार देख, मथुरा लौट आये और श्रीकृष्ण से हस्तिनापुर के सब समाचार कहे।

श्रीकृष्ण के साथ अक्रूर मथुरा से द्वारकापुरी में जाकर रहने लगे थे। इन्हीं की सम्मति से शतधन्वा स्यमन्तक मणि सत्राजित से छीनकर चला गया था, फिर श्रीकृष्ण से डरकर अक्रूर के पास ही मणि छोड़ गया था। अन्त में श्रीकृष्ण ने मणि अक्रूर को ही दे दी थी।

अक्षय पात्र, दुर्वासा, द्रौपदी, श्रीकृष्ण

दूसरी बार भी कौरवों से जुए में हार जाने पर जब पांडवों को तेरह वर्ष के लिए वन में जाना पड़ा, तब धौम्य ऋषि के आदेशानुसार युधिष्ठिर ने सूर्य की आराधना की। सूर्य ने प्रसन्न होकर युधिष्ठिर का अभिप्राय समझकर कहा कि आज के चौदहवें वर्ष तुम्हें अपना राज्य मिल जायगा, तब तक मैं तुम्हे अन्नदान करता रहूँगा। इसके बाद सूर्यदेव ने युधिष्ठिर को ताँबे का एक पात्र दिया और कहा—तुम्हारे रसोईघर मे इस पात्र मे जो कुछ फल-मूल, शाक आदि भोजन-सामग्री तैयार होगी, वह तब तक अक्षय रहेगी, जब तक द्रौपदी परोसती रहेगी। इस प्रकार अक्षय पात्र प्राप्त कर वन में भी पांडव सुख से रहने लगे। थोड़ा पकाया हुआ अन्न भी अक्षय हो जाता और युधिष्ठिर सब ब्राह्मणों को भर पेट भोजन कराने लगे। बचा हुआ स्वयं खाते। अन्त मे जब द्रौपदी खाती, तब पात्र का अन्न समाप्त होता।

धीरे-धीरे दुरात्मा दुर्योधन को यह भेद ज्ञात हुआ, तो उसने पाण्डवों को नीचा दिखाने के लिए एक युक्ति सोची। उसने दुर्वासा मुनि को प्रसन्न कर कहा कि आप वन में पाण्डवों के अतिथि होकर जाइए और जिस समय द्रौपदी स्वयं भोजन करके विश्राम कर रही हो, उस समय जाकर उनसे भोजन माँगिए। दुर्योधन जानता था कि दुर्वासा मुनि महाक्रोधी हैं। भोजन न मिलने पर अवश्य पांडवों को शाप दे देंगे।

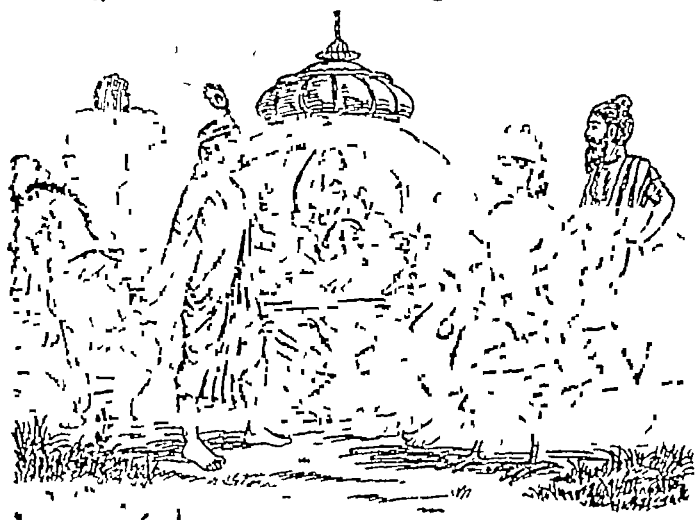
दुर्वासा मुनि दस हजार शिष्यों को लेकर पाण्डवों के पास वन में ऐसे समय पहुँचे, जब सब लोग भोजन से निवृत्त हो विश्राम कर रहे थे। मुनि ने आते ही भोजन माँगा, तो द्रौपदी घबराकर भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण कर उस सकट से उद्धार करने के लिए प्रार्थना करने लगी। भगवान् कृष्ण द्रौपदी की पुकार सुन, तत्काल दौड़े आये। भगवान् ने आते ही द्रौपदी से भोजन माँगा। द्रौपदी ने लज्जित होकर कहा—'अब तो अक्षय पात्र खाली है। अभी अभी मैं भोजन कर चुकी हूँ, अब मैं कहाँ से लाऊँ ?' भगवान् ने कहा—'देखूँ, कहाँ है तुम्हारा पात्र ?' द्रौपदी तुरन्त पात्र ले आई। उसमें थोड़ा-सा साग लगा हुआ था। कृष्ण ने उसे ही लेकर खा लिया और फिर सहदेव से बोले—अब दुर्वासा आदि सभी मुनियों को बुला लाओ। मुनि जब आये, तो उन्हें अपने आप सहसा पूर्ण तृप्ति मालूम हुई, मानो भोजन कर चुके हों। सब मुनि आपस मे कहने लगे—'हमारा तो पेट भरा हुआ है, मानो अभी भोजन किया हो।' दुर्वासा ने सोचा, अब यदि हम इतने सारे लोगों की रसोई तैयार होने पर मना कर देंगे, तो बड़ी लज्जा की बात होगी अतएव उन्होंने शिष्यों को आज्ञा दी कि पांडवों से बिना पूछे ही चुप चाप भाग चलो।

सहदेव जब दुर्वासा मुनि को ढूँढ़ने गये, तो वे कहीं न मिले। तब श्रीकृष्ण ने कहा—'आप लोग परम क्रोधी दुर्वासा के शाप का डर न करें। वे आपके तेज से डरकर पहले ही भाग गये हैं।' भगवान् जानते थे कि अम्बरीष पर क्रोध कर दुर्वासा पछता चुके थे। इसी कारण उस समय से वे भगवान् के भक्तों से बहुत डरते थे। पाण्डव भगवान् के

म भक्त थे। अतः दुर्वासा मुनि चुपचाप अपने शिष्यों के साथ ाग गये।

अग्निदेव, खांडव वन, सुदर्शन, कपिध्वज और गांडीव

प्राचीन समय में श्वेताकि नामक एक राजा था। उसने एक सौ ाह वर्ष तक बड़े-बड़े यज्ञ किये। यज्ञों में घी की धाराएँ पीते-पीते ाग्निदेव का पेट फूल गया और पाचन-शक्ति क्षीण हो गई। उसे ास्वस्थ देख, ब्रह्माजी ने कहा—'तुम खांडव वन को खा जाओ। उसमे हुत-सी जड़ी-बूटियाँ हैं। उनके खाने से तुम्हें भोजन पचने लगेगा।'



अग्नि

अतएव अग्नि ने खाडव वन को सात वार जलाना चाहा; किन्तु इन्द्र ने वन जलने नहीं दिया। तव अग्नि ने श्रीकृष्ण और अर्जुन से सहायता माँगी। किन्तु अर्जुन ने कहा कि इन्द्र से लडने के लिए हमारे पास वल और कौशल तो है, पर अस्त्र नहीं है। आप अस्त्र दीजिए तो हम लड़ें। तव अग्नि ने जलाधिपति वरुण को वुलाकर उससे सोम का दिया

अक्षय तर्कस, गाण्डीव धनुष, "कपिध्वज" नामक दिव्य रथ और सुदर्शन चक्र माँगा। वरुण ने सभी वस्तुएँ लाकर दे दीं।

अर्जुन का "गाण्डीव" किसी भी शस्त्र से नहीं कट सकता था; किन्तु सब शस्त्रों को काट सकता था। वह धनुष लाखों धनुषों के तुल्य था। अर्जुन के कपिध्वज रथ में गन्धर्व देश के घोड़े जुते हुए थे। रथ पर सुवर्ण के डंडे थे और ध्वजा पर हनुमान्‌जी बैठकर रक्षा करते थे। चक्र श्रीकृष्ण को देकर अग्नि ने कहा—'इस चक्र के द्वारा आप जिसे चाहेंगे मार डालेंगे। इस चक्र के प्रभाव से सारे देवता, राक्षस, पिशाच, नाग और मनुष्य शक्तिहीन हो जायँगे। यह चक्र प्रत्येक बार शत्रु का नाश कर आपके पास वापस लौट आयेगा।'

अब अग्निदेव ने खाण्डव वन को जलाना प्रारंभ कर दिया। इन्द्र बचाने को दौड़ा और आकाश से घनघोर वर्षा कर वह आग बुझाने लगा। जब अग्नि का सकोप बढ़ता ही गया तब इन्द्र और अर्जुन मे घनघोर युद्ध होने लगा। शीघ्र ही अर्जुन ने देवता, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प आदि की सेना तहस-नहस कर डाली। उसी समय आकाशवाणी हुई, जिससे इन्द्र लौट गया। इस समय अर्जुन ने मय नामक राक्षस को आग मे से बचाया था, जिससे कृतज्ञ हो उस स्थान पर, युधिष्ठिर के रहने लायक, एक सभाभवन उसने तैयार कर दिया।

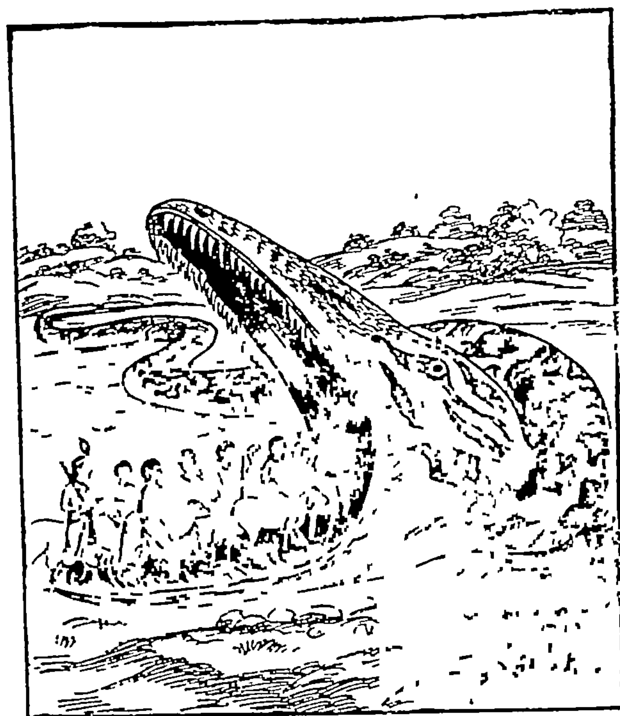
अग्नि के पर्य्यायवाची शब्द—आग, पावक, वह्नि, वैश्वानर, जातवेद, वायुसखा, हव्यवाहन, हुताशन, दव, कृशानु, रोहिताश्व, धूम्रकेतु, अनल।

अघासुर

अघासुर पूतना और वकासुर का छोटा भाई था। अपने भाई-बहिन की मृत्यु का वदला लेने वह व्रजभूमि पहुँचा। अघासुर एक बड़े भारी अजगर के रूप मे रहता था। वह कंस की आज्ञा से कृष्ण को

मारने व्रजभूमि गया था। वह वृन्दावन में जहाँ कृष्णजी गायें चराया करते थे, अपना वृहत् मुँह फैलाकर राह में लेट गया।

अघासुर का शरीर चार कोस लंबा था। उसका खुला मुँह पहाड़ की गुफा-सा प्रतीत होता था। फैली हुई जीभ वनपथ-सी प्रतीत हो रही थी। ग्वाल-बाल उसे जंगल का कोई मार्ग समझकर उसके भीतर चले गये; किन्तु अघासुर ने मुँह बन्द नहीं किया। वह तो कृष्ण को मारना चाहता था। कृष्ण सबके पीछे थे। जब वे मुँह के अन्दर घुसे, तो अजगर ने तुरन्त अपना मुँह बन्द कर दिया।



अघासुर

कृष्ण ने अब भीतर ही भीतर बढ़ना प्रारंभ कर दिया। अपना विराट् शरीर उन्होंने इतना बढ़ा दिया कि अघासुर का साँस लेना रुक गया। उसका दम घुट गया। अन्त में उसके प्राणपखेरू उड़ गये। कृष्ण उस समय पाँच वर्ष के थे। उनकी अतुल शक्ति को देखकर सब लोग आश्चर्य करने लगे।

अजामिल

अजामिल एक विद्वान् ब्राह्मण और भगवान् का भक्त था। एक बार उसकी दृष्टि एक वेश्या पर पड़ी, जिसके संसर्ग से वह बड़ा दुराचारी हो गया। भोग-विलास और मद्यपान करते-करते वह भगवान् को बिलकुल भूल गया। जन्म भर पाप करने के उपरान्त जब मृत्यु की घड़ी आई, तो यमराज के दूतों की भयंकर आकृति देख, वह अत्यन्त भयभीत हो अपने पुत्र को पुकारने लगा। भाग्यवश उसने कुछ साधुओं के कहने से अपने पुत्र का नाम "नारायण" रखा था।

प्राण निकलते समय वह कष्ट से "नारायण, नारायण" पुकारने लगा भगवान् के नामोच्चारण मे इतनी शक्ति है कि वे स्वयं प्रसन्न हो, वहा उपस्थित हो गये। तब यमदूत और भगवान् के पार्षदों में विवाद होने लगा।

भगवान् के दूतों ने अजामिल को भगवद्भक्त कहकर यमदूतों को मार भगाया। इस प्रकार पापी अजामिल भगवान् का नाम उच्चारण कर नरक मे जाने से बच गया। वह जीवित हो, अपने पापों का प्रायश्चित्त करने लगा। भगवान् के दूतों और यमदूतों की बातें सुनकर अजामिल को ज्ञान हो गया। अतएव अब वह भगवद्भजन में अपना समय व्यतीत करने लगा, जिससे उसकी मुक्ति हो गई।

अदिति

दैत्यों की माता दिति की छोटी बहिन अदिति थी। वह दक्ष प्रजापति की पुत्री और प्रजापति कश्यप की धर्मपत्नी थी। दोनों ने वन मे जाकर घोर तपस्या की थी। अन्त में भगवान् ने प्रसन्न होकर उनसे कहा—'तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँगो।' कश्यप और अदिति ने भगवान से कहा कि हमारी इच्छा है कि आप हमारे पुत्र हों।

भगवान् ने कहा—'त्रेतायुग मे तुम दोनों अयोध्या के राजा-रानी होगे, तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।'

वही अदिति कौशल्या और कश्यप दशरथ हुए। तभी राम रूप मे दशरथ के पुत्र होकर भगवान् ने जन्म लिया। फिर कृष्ण की माता देवकी और वामन की माता होकर अदिति ने जन्म लिया।

अदिति के पुत्र होने से सूर्य का नाम आदित्य पड़ा। भूमि का पुत्र नरकासुर अदिति के दिव्य कुंडल हर ले गया था। श्रीकृष्ण ने भौमासुर को मारकर कुंडल अदिति को वापस कर दिये। देवताओं की माता अदिति थी।

अत्रि, राहु, सूर्य

अत्रि सप्तर्षियों मे से एक ऋषि थे। अत्रि का जन्म ब्रह्मा के नेत्रों से हुआ था। ये विभिन्न मन्वन्तरों मे प्रजापति और सप्तर्षि के रूप मे रहते थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम अनसूया था।

अनसूया बड़ी पतिव्रता थी। पति को स्नान करने में कष्ट न हो, इसलिए वे अपने पातिव्रत के बल से गंगा की धारा को अपने आश्रम तक ले आई थीं। अत्रि मुनि ने अनेक ऋषियों की सृष्टि ब्रह्मा की आज्ञा से की थी। वनवास के समय श्रीराम इनके आश्रम में पधारे थे। इनका आश्रम चित्रकूट के निकट था।

एक बार राहु के आक्रमण से सूर्य पृथ्वी पर गिर रहे थे, तब अत्रि मुनि ने ही अपनी तपस्या के प्रभाव से पतनोन्मुख सूर्य को आकाश में रोक दिया था। उस समय से ऋषियों ने अत्रि का नाम "प्रभाकर" रख दिया था। इनकी उग्र तपस्या से प्रसन्न हो ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओं ने दर्शन दिये और वरदान माँगने को कहा। अत्रि और अनसूया ने तीनों देवताओं से पुत्र रूप मे उनके यहाँ जन्म लेने के लिए प्रार्थना की। इस वरदान के फलस्वरूप उनके तीन पुत्र हुए।

विष्णु के अंश से दत्तात्रेय, ब्रह्मा के अंश से सोम और महेश के अंश से दुर्वासा का जन्म हुआ।

अत्रि की एक पुत्री का नाम आत्रेयी था, जिसका विवाह महर्षि अङ्गिरा से हुआ था। अङ्गिरा मुनि का स्वभाव बड़ा उग्र था। उनकी क्रोधाग्नि को शान्त करने के लिए आत्रेयी ने नदी का रूप धारण किया, जिसमें आप्लावित हो महर्षि अङ्गिरा का स्वभाव शान्त हो गया।

अनसूया, सीता, अत्रि

ब्रह्मा के मानस पुत्र महर्षि अत्रि की पतिव्रता स्त्री का नाम अनसूया था। स्वायंभुव मनु की पुत्री देवहुति इनकी माता थी। इनके पिता कर्दम मुनि थे। स्वर्ग मे लक्ष्मी, सरस्वती और सती को अपने पातिव्रत्य का बड़ा अभिमान था। उनके गर्व का नाश करने के लिए भगवान ने नारद मुनि से कुछ परामर्श किया।

नारद मुनि तीनों देवियों के पास गये और उनसे अनसूया के पातिव्रत्य धर्म की भूरि-भूरि प्रशसा की। तीनों देवियों ने अपना पातिव्रत्य फीका देख अपने-अपने पतियों से अनसूया के सतीत्व को भंग करने के लिए प्रार्थना की।

तीनों देव मुनि का वेश धारण कर अनसूया के यहाँ अतिथि होकर पहुँचे। अत्रि मुनि की अनुपस्थिति मे परपुरुषों की सेवा न करनी पड़े यह सोच अनसूया ने तीनों मुनियों को अपने पातिव्रत्य के बल से बच्चा बना लिया और उन्हें गोद में खिलाने लगी। अत्रि मुनि आये, तो सब रहस्य समझ गये और तीनों देवताओं को पुत्र रूप में पाकर बड़े प्रसन्न हुए। स्वर्ग मे तीनों देवियाँ भी सती के प्रताप को देखकर लज्जित हो गईं। इन तीनों पुत्रों का नाम दत्तात्रेय, चन्द्रमा और दुर्वासा था।

अनसूया ने गंगा नदी को अपने आश्रम तक इसलिए बुला लिया था कि उनके पति को स्नान के लिए दूर तक न जाना पड़े। वनवास के समय राम, लक्ष्मण और सीता तीनों इनके आश्रम में गये थे। उस समय परम विदुषी सती अनसूया ने पतिव्रता स्त्रियों के धर्म समझाते हुए सीता को उपदेश दिया था।

अन्नपूर्णा, सती, शिव

अन्नपूर्णा पार्वती का एक रूप है। दुर्गा—अन्न की अधिष्ठात्री देवी—विश्वनाथ शिव की पत्नी काशीपुरी की मुख्य देवी समझी जाती हैं। दक्ष प्रजापति ने शिव से अप्रसन्न होकर उन्हें अपमानित करने का निश्चय किया। उन्होंने समस्त देवी-देवताओं को अपने यहाँ यज्ञ में बुलाया; किंतु अपनी पुत्री सती और दामाद शिव को नहीं बुलाया।

सती बिना बुलाये पिता के यहाँ यज्ञ-स्थान पर पहुँची, तो दक्ष ने जी भरकर शिव की निन्दा की। इस पर सती यज्ञ-कुण्ड में कूद पड़ी और जल मरी। उनके साथ जो अनुचर गये थे, उन्होंने महादेव को सब समाचार सुनाये, तो वे क्रोध से पागल हो उठे। उन्होंने वीरभद्र प्रभृति अनुचरों द्वारा यज्ञ विध्वंस करवा दिया और दक्ष प्रजापति का सिर काट डाला।

सती के विछोह से उन्हें इतना दुःख हुआ कि वे उनकी मृत देह को कंधे पर रखे हुए चारों ओर नाचते हुए घूमने लगे। उनकी विक्षिप्तावस्था को देख, विष्णु भगवान् ने एक उपाय सोचा। वे धीरे-धीरे सती के अधजले शव को अपने चक्र से काट-काटकर पृथ्वी पर गिराने लगे। जिन-जिन स्थानों पर उनके कोई अंग या आभूषण गिरे, वे स्थान सती की एक-एक शक्ति के 'पीठ' बन गये। काशी में उनके कानों का कुण्डल गिरा था। अतः वहाँ की शक्ति मणिकर्णी और 'अन्नपूर्णा' कहलाने लगी।

शिव के पर्य्यायवाची शब्द—शंकर, गंगाधर, उमेश, चन्द्रशेखर, कामरिपु, त्रिपुरारि, उमापति, भूतनाथ, पशुपति, शंभु, शिव, रुद्र, वृषकेतु, चन्द्रमौलि, महेश, गिरीश, नीलकंठ।

अभिमन्यु और जयद्रथ

महाभारत के युद्ध मे पांडवों को प्रवल देख, द्रोणाचार्य ने अपनी सेना की व्यूह-रचना इस प्रकार की कि उसे तोड़ सकने मे केवल श्रीकृष्ण और अर्जुन ही समर्थ थे। किन्तु दुर्योधन के षड्यंत्र से उस समय ये दोनों

दूर दक्षिण दिशा मे जाकर संशप्तकों से युद्ध कर रहे थे। पाडवों को निराश देख, सोलह वर्ष के अभिमन्यु ने, जो अर्जुन और सुभद्रा का पुत्र था, कहा—'मैं अकेला ही व्यूह में प्रवेश कर शत्रुओं का नाश कर दूँगा। जब मैं माता के गर्भ में था, तब एक दिन पिता ने माता को चक्रव्यूह में प्रवेश कर उसके द्वार तोड़ने की युक्ति बतलाई थी। प्रवेश करना तो मुझे याद है; किन्तु व्यूह से निकल आने की विद्या मुझे ज्ञात न हो सकी, क्योंकि माता को उस समय नींद आ गई थी।'

पाडवों ने कहा—'तुम प्रवेश करो। हम तुम्हारे पीछे-पीछे घुसकर व्यूह तोड़ डालेंगे।'

अभिमन्यु ने व्यूह में प्रवेश कर शत्रु-सेना को तितर-बितर कर दिया। व्यूह की रक्षा जयद्रथ कर रहा था। उसने युद्ध कर भीम इत्यादि पांडवों को पीछे हटा दिया, तब अकेला अभिमन्यु कौरवों से लड़ता रहा। दु'शासन को मूर्च्छित हो गिरते देख, द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा, वृहद्बल और कृतवर्मा नामक छ महारथी अभिमन्यु पर टूट पड़े और अन्यायपूर्वक अधर्म से अकेले अभिमन्यु पर एक साथ आक्रमण कर बैठे। कर्ण ने उसके धनुष को काट डाला। जयद्रथ ने उसके रथ को चूर-चूर कर डाला। हथियार भी टूट जाने पर असहाय अभिमन्यु रथ का पहिया लेकर लड़ने लगा। अन्त मे कौरवों के छः महारथियों ने मिलकर उस वीर बालक को मार डाला।

अभिमन्यु जब मरकर गिर पड़ा तब जयद्रथ ने उसे गदा मारकर सिर पर लात मारी। इस प्रकार वीर अभिमन्यु के मरने से सारी पाडव-सेना मे हाहाकार मच गया। अभिमन्यु का विवाह बलराम की पुत्री वत्सला तथा विराट की बेटी उत्तरा से हुआ था। उत्तरा उस समय गर्भवती थी। अतएव श्रीकृष्ण ने उसे सती होने से मना कर दिया। उत्तरा-अभिमन्यु के पुत्र का नाम 'परीक्षित' था, जो युद्ध के उपरान्त हस्तिनापुर का राजा हुआ।

अरिष्टासुर

व्रज-भूमि में भगवान् के अवतार कृष्ण के अतुल बल का वृत्तान्त सुन, कंस अनेक राक्षस को उन्हे मार डालने के लिए वृन्दावन भेजने लगा। अरिष्टासुर भी एक राक्षस था, जो बड़े भारी बैल का रूप धारण कर वृन्दावन गया था। वह ग्वालों के बीच जाकर जोर से शब्द करता हुआ सबको डराने लगा। उसे देख व्रजवासी भयभीत हो गये और कृष्ण के पास दौड़े। भगवान् सबको अभय देकर राक्षस के निकट गये।

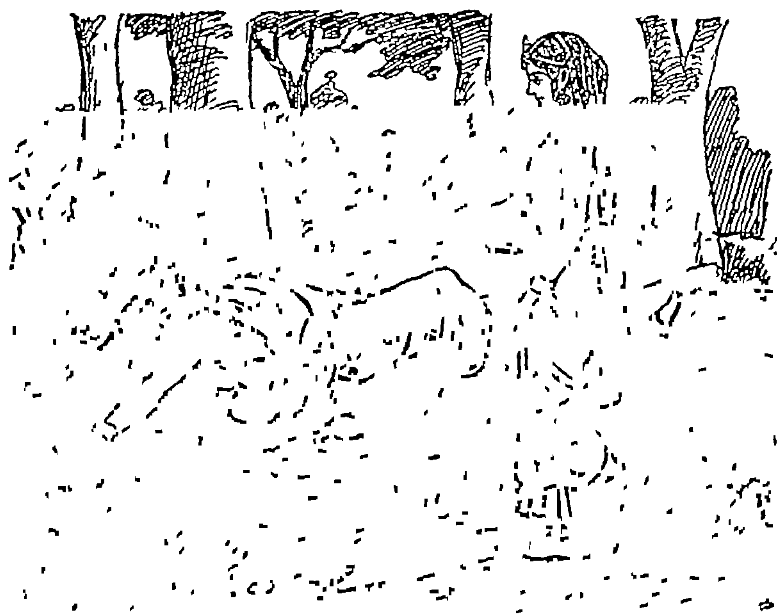


अरिष्टासुर

वह राक्षस कृष्ण को देखकर, खुरों से धरती खोदता हुआ सींग उठाकर लाल-लाल आँखें कर भगवान् की ओर दौड़ा। भगवान् अपनी जगह पर खड़े रहे। ज्यों ही वह बैल निकट आया, उन्होंने झपटकर उसके दोनों सींग पकड़ लिये, फिर उसके शरीर को मरोड़ना प्रारम्भ किया। थोड़ी देर में उसकी आँखें बाहर निकल आईं और वह तड़प-तड़पकर मर गया। तब व्रजवासी लोग श्रीकृष्ण का जय-जयकार करने लगे। अरिष्ट ने वृषभ का रूप धारण किया था, अतएव वह वृषभासुर भी कहलाता है।

अश्विनीकुमार, संज्ञा-छाया, यम-यमुना, शनि-तपती, दध्यङ्

महर्षि कश्यप और अदिति के पुत्र विवस्वान् भगवान् सूर्य की दो पत्नियाँ थीं—संज्ञा और छाया। देवशिल्पी विश्वकर्मा त्वष्टा की पुत्री संज्ञा प्रभा नाम से भी प्रसिद्ध थी। संज्ञा से उत्पन्न सूर्य के वैवस्वत मनु नामक एक पुत्र और जुड़वाँ सन्तान "यम" और "यमुना" थी।



तपती

एक वार सूर्य के तेज को सहन न कर सकने के कारण संज्ञा अपनी जुड़वाँ सन्तान यम और यमुना को अपनी सपत्नी छाया के पास छोड़कर चुपचाप भाग गई और घोड़ी का रूप धारण कर वन में जाकर तप करने लगी। तव छाया से सूर्य के दो सन्तानें और हुईं, जिनका नाम था शनि और तपती।

धीरे-धीरे छाया ने संज्ञा की सन्तान का अनादर करना प्रारंभ कर दिया, तब सूर्य को संज्ञा की याद आने लगी। संज्ञा का पता लगाकर सूर्य भी घोड़ा बनकर वन में संज्ञा के निकट पहुँचा और धीरे-धीरे बड़वा-रूप में सूर्य अश्विनी के निकट रहने लगा। उन दोनों के जुड़वाँ सन्तान हुई, जो अश्विनीकुमार कहलाईं। ये दोनों अश्विनीकुमार, देवताओं के चिकित्सक बने।

कुरुक्षेत्र में दोनों अश्विनीकुमारों का जन्म हुआ था। इन्होंने च्यवन ऋषि को दृष्टि, नवयौवन एवं सुन्दरता का दान दिया था।

दध्यङ् नाम के एक ऋषि थे, उन्हें ब्रह्मविद्या प्राप्त थी। इन्द्र ने उन्हें बताया था कि दूसरों को यह विद्या सिखाने पर उनका सिर धड़ से अलग हो जायगा। इस पर दोनों अश्विनीकुमार दध्यङ् मुनि के पास पहुँचे। उन्होंने कहा—'हम आपका सिर धड़ से अलग कर घोड़े का सिर जोड़ देते हैं। आप हमें ब्रह्मविद्या का उपदेश दीजिए। जब आपका सिर कट जायगा, हम पुनः आपका पहला सिर जोड़ देंगे।'

ऐसा ही हुआ। अश्विनीकुमारों ने ब्रह्मविद्या प्राप्त कर ऋषि का पहला सिर जोड़ दिया। अश्विनीकुमारों की कृपा से पाण्डु की पत्नी माद्री के, नकुल और सहदेव, दो पुत्र हुए थे। प्रातःकाल ये उषा के दूत बनकर सोने के रथ पर आकाश में निकलते हैं। लोगों को ये सुख-सौभाग्य प्रदान करते हैं और उनका दुःख, दरिद्रता आदि हरते हैं।

संज्ञा के पुत्र "यमराज" ब्रह्मा की आज्ञा से समस्त प्राणियों को कर्म के अनुसार फल का विधान करते हैं। यमराज के शरीर का वर्ण श्याम है। वे हाथ मे एक विशाल दंड धारण करते हैं। इनका वाहन भैसा है। इनके दूतों को आदेश है कि भगवान् से विमुख असत् दुष्टों को ही यमपुरी में लाया जाय। पुण्यात्मा जीव को ये धर्मराज के रूप में दर्शन देते हैं।*

---

* धर्म के चार पैर हैं—गुण, द्रव्य, क्रिया और जाति। सत्ययुग में चार पैरों से, त्रेता में तीन पैरों से, द्वापर में दो पैरों से और कलि में एक पैर से धर्मराज

उन्हे धर्मराज मृत्यु के उपरान्त "संयमिनीपुरी" में भेजते हैं। वहाँ उनके पुण्य के अनुसार उन्हें उच्च लोक में भेजा जाता है।

यमराज की बहिन 'यमुना' नदी के रूप में बहती है। शनि ग्रह की पदवी प्राप्त कर विद्यमान है।

'अश्व' के पर्य्यायवाची शब्द—सैन्धव, तुरङ्ग, बाजि, हय, घोटक, रविपुत्र, बड़वा, गन्धर्व, बाह।

'यमुना' के पर्य्यायवाची शब्द—सूर्यसुता, रवितनया, रविनन्दिनी, कालिन्दी, अर्कजा, कृष्णा, तरणिजा, सूर्यतनया, रविसुता, हंससुता।

अष्टावक्र, वंदी, वरुण

उद्दालक मुनि का कहोड़ नाम का एक प्रसिद्ध शिष्य था। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर मुनि ने अपनी कन्या सुजाता के साथ उसका विवाह कर दिया। कुछ काल के बाद सुजाता गर्भवती हुई। एक दिन कहोड़ वेदपाठ कर रहे थे कि गर्भस्थ शिशु बोल उठा—'पिताजी, वेदों का अशुद्ध पाठ क्यों कर रहे हैं?' इस पर कहोड़ ने चिढ़कर शाप दे दिया—'तू पेट में ही ऐसी टेढ़ी टेढ़ी बातें करता है। जा, तू आठ जगह से टेढ़ा उत्पन्न होगा।'

उस कुरूप बालक का जन्म हुआ तो उसका नाम पड़ा 'अष्टावक्र'। उसी समय कहोड़ राजा जनक के पास गये। वहाँ वन्दी नामक एक विद्वान् ने उन्हें शास्त्रार्थ में हरा दिया। वन्दी का नियम यह था कि जो कोई शास्त्रार्थ में हार जाता था, उसे समुद्र में डुबो दिया जाता था। बारह वर्ष की अवस्था में अष्टावक्र को अपने पिता की मृत्यु का वृत्तान्त ज्ञात हुआ, तो अष्टावक्र राजा जनक के यहाँ जाने को चल पड़े। वहाँ जाकर उस बालक ने वन्दी से शास्त्रार्थ किया और उसे परास्त कर दिया। तब वन्दी जल में डूबकर वरुणलोक को चला गया।

शासन करते हैं। धर्म के चार पुत्र सनत, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार हैं। युधिष्ठिर भी धर्म के पुत्र थे।

वास्तव में बन्दी जलाधीश वरुण का पुत्र था। वरुण के यहाँ एक यज्ञ हो रहा था। उसमें श्रेष्ठ ब्राह्मणों की आवश्यकता थी। अतएव बन्दी इस युक्ति से विद्वानों को वरुणलोक भेज देता था। अष्टावक्र से हारने पर समुद्र में डुबाये हुए सभी ब्राह्मण, वरुण देव से सम्मानित हो, जल से बाहर निकल आये। उन ब्राह्मणों ने अष्टावक्र की पूजा की और उसे समंगा नदी में स्नान करने को कहा। नदी में डुबकी लगाते ही अष्टावक्र के समस्त टेढ़े मेढ़े अंग सीधे हो गये।

अहल्या, गौतम, शिला

अहल्या महर्षि गौतम की पत्नी थी। एक दिन इन्द्र, चन्द्रमा की सहायता से, गौतम को धोखा देकर आश्रम से बाहर ले गया और फिर उसने गौतम का रूप धारण कर अहल्या के साथ अनुचित व्यवहार किया। गौतम ने आश्रम मे आकर इन्द्र को 'सहस्र भग' हो जाने का शाप दिया और अहल्या को पत्थर हो जाने का। अहल्या ने बहुत अनुनय-विनय की, तो अनुग्रह कर कहा कि त्रेतायुग में जब भगवान् राम का अवतार होगा तब उनके चरणस्पर्श से तुम्हारा उद्धार होगा। तभी से वह शिला-रूप में पड़ी रही।

भगवान् रामचन्द्रजी जब विश्वामित्र मुनि के साथ मिथिलापुरी जा रहे थे तब मार्ग में इसका उद्धार किया। फिर चरणस्पर्श से मुक्त होकर अहल्या पतिलोक को चली गई। अहल्या की गणना प्रातःस्मरणीय पाँच महिलाओं में होती है। अहल्या, सीता, द्रौपदी, तारा और मंदोदरी पाँच महिलाएँ हैं जिनका स्मरण प्रातःकाल करने से पुण्य होता है।

आतापी-वातापी और अगस्त्य

आतापी और वातापी दो भाई थे। दोनों मिलकर ऋषियों को बहुत सताया करते थे। वातापी तो भेड़ बन जाता था और उसका भाई आतापी उसे मारकर ब्राह्मणों को भोजन कराया करता था। जब ब्राह्मण लोग

खा चुकते, तब वह वातापी का नाम लेकर पुकारता था और वातापी ब्राह्मणों का पेट फाड़कर निकल जाता था। इस प्रकार उन दोनों ने बहुत-से ब्राह्मणों को मार डाला।

एक दिन अगस्त्य ऋषि उन दोनों के घर गये। आतापी ने वातापी को मारकर अगस्त्य ऋषि को खिला दिया और फिर उसका नाम लेकर पुकारने लगा। अगस्त्य ने डकार लेकर कहा—'वह तो मेरे पेट में कभी का पच गया। अब कहाँ से आयेगा !'

आतापी का नाम इल्वल भी था।

उत्तंक

पाडवों के पुरोहित धौम्य ऋषि के एक शिष्य का नाम था महर्षि वेद। वेद के शिष्यों में प्रधान थे उत्तंक। उनकी दृढ़ श्रद्धा और संयम देखकर गुरु-पत्नी बहुत प्रसन्न हो गई और महर्षि वेद ने आशीर्वाद दिया।

विद्या ग्रहण करने के उपरान्त उत्तंक ने गुरु-दक्षिणा देनी चाही; किन्तु गुरु ने मना कर दिया। बहुत हठ करने पर महर्षि ने गुरु-पत्नी से पूछने को कहा। गुरु-पत्नी ने राजा पौष्य की पतिव्रता पत्नी के कुंडल माँगे और केवल चार दिन का अवसर दिया।

उत्तंक को राजा की पत्नी ने बड़ी श्रद्धा से देवदुर्लभ कुण्डल दिये; किन्तु तक्षक पहले ही उन पर ताक लगाये बैठा था। छल करके वह उन कुण्डलों को चुराकर पाताल में ले गया।

इन्द्र ने तब उत्तंक की सहायता की और उन्होंने वे कुण्डल दुबारा प्राप्त कर गुरु-पत्नी को अर्पित कर दिये। उत्तंक की अटल गुरुभक्ति देखकर सब लोग प्रसन्न हो गये।

महाभारत के युद्ध मे कौरवों के विनाश की बात सुनकर उत्तंक मुनि इतने कुपित हुए कि अपने तप के बल पर श्रीकृष्ण को शाप देने को तैयार हो गये। तब श्रीकृष्ण ने अध्यात्मज्ञान का वर्णन कर उन्हें

विश्वरूप के दर्शन कराये और कहा—'जब कौरव साम, दाम, दंड और भेद से भी न माने, तब उनका वध किया गया है।'

उद्धव, भ्रमरगीत, राधा और गोपियाँ

उद्धव वृष्णिवंश के एक प्रधान पुरुष थे। वे साक्षात् बृहस्पति के शिष्य और परम बुद्धिमान् थे। वे श्रीकृष्ण के प्यारे सखा तथा मंत्री भी थे। श्रीकृष्ण जब मथुरा में कंस को मारकर राज्य प्रबन्ध कर रहे थे, तब उन्होंने गोकुल की गोपियों के प्रेम को याद कर ऊधो के हाथ सँदेशा भेजा कि गोपियाँ ऊधो की तरह ज्ञानमार्गी हो, मोक्षप्राप्ति के लिए योग साधन करें।

ऊधो को अपने ज्ञान का बड़ा गर्व था। भगवान् ने इस बहाने उन्हें प्रेम का महत्त्व भी सिखाना चाहा। ऊधो की आकृति कृष्ण की सी थी और उन्होंने कृष्ण का सा वेश धारण कर रक्खा था। वे वृन्दावन और नन्दगाँव पहुँचे, तो वहाँ कृष्ण की प्रेमिका राधा और गोपियों की विचित्र दशा देखी। विरह व्यथा में विह्वल गोपियाँ अपने प्रियतम कृष्ण के लिए घर-बार और सगे-सम्बन्धियों को छोड़, विरह में मूर्च्छित हो रही थीं। ऊधो ने उन्हे समझाना चाहा; किन्तु ऊधो का उपदेश सुन वे निराश हो, अपने प्रेम पर अटल विश्वास दिखाने लगीं। वे ऊधो को घेरकर नाना प्रकार के प्रश्न पूछने लगीं।

उसी समय उन्होंने देखा कि पास ही एक भौंरा गुनगुना रहा है। गोपियाँ उस भौंरे को ही सम्बोधित कर ऊधो को जली-कटी सुनाने लगीं। यह उपालंभ का विषय "भ्रमरगीत" के नाम से प्रसिद्ध है। नन्द और यशोदा से भी ऊधो मिले। ऊधो उन सब ब्रजवासियों के सच्चे प्रेम को देखकर अपने ज्ञानगर्व को भुला बैठे और स्वयं श्रीकृष्ण-भक्ति के अनुयायी हो गये।

भौंरे के पर्य्यायवाची शब्द—षटपद, भृंग, भ्रमर, अलि, द्विरेफ, मधुप, मधुकर।

उलूपी, चित्राङ्गदा, बभ्रुवाहन, अर्जुन, द्रौपदी, वसु, गंगा

द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी बनी, तो आपस में फूट न पड़ने देने के लिए, देवर्षि नारद की सम्मति से, पाँचों पाण्डवों ने प्रतिज्ञा की कि एक नियमित समय तक हर एक भाई के पास द्रौपदी रहेगी और जब एक भाई द्रौपदी के साथ एकान्त में होगा, तो दूसरा भाई उस स्थान में नहीं जायगा। जो इस नियम को तोड़ेगा उसे बारह वर्ष तक वन में रहना पड़ेगा।



उलूपी ने अर्जुन को जल मे घसीट लिया

एक बार एक ब्राह्मण ने आकर अर्जुन से कहा कि कुछ दुष्ट लुटेरों ने मेरी गौएँ छीन ली हैं। तुम दौड़कर उन्हें बचाओ। अर्जुन सहायता करने के लिए अस्त्र लाने दौड़े, तो देखा कि जिस घर मे अस्त्र रक्खे हुए थे उसमें युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ बैठे हुए हैं। एक ओर घर का नियम, दूसरी ओर ब्राह्मण की सहायता करना। इस दशा मे कर्त्तव्य के आगे अर्जुन ने नियम तोड़कर उस ब्राह्मण की गायों का उद्धार कर दिया और बारह वर्ष के वनवास के लिए चल पड़े।

वन मे एक दिन अर्जुन एक नदी में स्नान कर रहे थे कि नागकन्या उलूपी ने उन्हें जल के भीतर घसीट लिया और अपने भवन में ले

गई। उलूपी ने प्रसन्न होकर, अर्जुन को वरदान दिया कि किसी भी जलचर प्राणी से आपको भय नहीं रहेगा। फिर अर्जुन मणिपुर पहुँचे। वहाँ के राजा चित्रवाहन की पुत्री चित्राङ्गदा से अर्जुन ने विवाह किया; पर राजा ने उसके पुत्र को गोद लेने की प्रतिज्ञा करा ली। इसी प्रतिज्ञा के कारण चित्राङ्गदा का पुत्र बभ्रुवाहन राजा चित्रवाहन के पास ही रहा। तत्पश्चात् अनेक तीर्थों मे घूमते हुए बारह वर्ष व्यतीत कर अर्जुन प्रभास क्षेत्र पहुँचे, वहाँ से श्रीकृष्ण के पास द्वारकापुरी गये। वहीं रैवतक पर्वत पर रहते हुए श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा का बलपूर्वक हरण किया, जिसको श्रीकृष्ण ने अपना सम्मान ही समझा।



सुभद्रा-हरण

महाभारत के युद्ध के पश्चात् पांडवों ने अश्वमेध यज्ञ किया, तो अश्व की रक्षा के लिए अर्जुन की नियुक्ति हुई। अश्व के पीछे-पीछे सेना लेकर अर्जुन मणिपुर पहुँचे। वहाँ उनका पुत्र बभ्रुवाहन राजा था। वह पिता का स्वागत करने आया तो अर्जुन ने उसे क्षत्रिय-धर्म का स्मरण करा, युद्ध के लिए ललकारा। उसी समय बभ्रुवाहन की

विमाता उलूपी भी वहाँ आ गई। उसने भी बभ्रुवाहन को युद्ध के लिए प्रेरित किया। पिता और पुत्र में घोर संग्राम छिड़ गया। बभ्रुवाहन के एक बाण की चोट से अर्जुन मूर्च्छित हो गिर पड़े। बभ्रुवाहन अर्जुन के बाणों से घायल तो था ही इससे वह भी मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चित्राङ्गदा ने पति और पुत्र को रण-क्षेत्र में मूर्च्छित देखा, तो विलाप करने लगी। उलूपी को देख वह उसी को दोष देने लगी कि बेटे को उकसाकर स्वामी की हत्या तुम्हीं ने कराई है।

इतनी देर में बभ्रुवाहन को होश आ गया। वह पिता को देख अपने को पिता का हत्यारा और महापापी समझकर धिक्कारने लगा। तब उलूपी ने अपनी सजीवन-मणि द्वारा अर्जुन को जीवित कर दिया। अर्जुन स्वस्थ होकर उठे, तो पुत्र की वीरता से बहुत प्रसन्न हुए। फिर अश्व को लेकर पृथ्वी की परिक्रमा के लिये चल दिये।

वीर अर्जुन की एक बालक के हाथ से यह पराजय केवल एक शाप के कारण हुई थी। जब शिखंडी की ओट में अर्जुन ने भीष्म पितामह को मारा तो वसुगण और गंगा को बड़ा क्रोध आया। वे शाप देने ही जा रहे थे कि उलूपी के पिता ने बड़ी अनुनय-विनय की, जिससे उन्होंने कहा कि अर्जुन को एक बार युद्धक्षेत्र मे परास्त अवश्य होना पड़ेगा। इसी कारण बभ्रुवाहन से युद्ध करवाकर उलूपी ने अर्जुन को शाप से मुक्त किया।

उग्रसेन, कंस, देवकी, वसुदेव

उग्रसेन यदुवंश में उत्पन्न हुए थे। वे शूरसेन देश (मथुरा) के राजा थे। उग्रसेन का बड़ा लड़का कंस था और उसके चचा देवक की पुत्री का नाम देवकी था। इस देवकी का विवाह शूरसेन के पुत्र—कुन्ती के भाई—वसुदेव से हुआ था। कंस अपनी चचेरी बहिन का विवाह हो जाने पर बड़े स्नेह से वसुदेव-देवकी को रथ मे बैठाकर पहुँचाने गया। उसी समय आकाशवाणी हुई कि मूर्ख, तू अपनी जिस बहिन को रथ में ले जा

ह्रा है, उसका आठवाँ पुत्र तेरा काल होगा। यह सुनकर कंस आगबबूला हो गया। उसने देवकी और वसुदेव दोनों को कैद कर लिया।

कंस कालनेमि राक्षस का अवतार था। अपने पिता को कैद में डालकर वह मथुरा का राजा बनकर नाना प्रकार के अत्याचार कर रहा



कंस

था। जब श्रीकृष्ण ने जन्म लेकर कंस को मारा, तो मथुरा जाकर भगवान् ने अपने नाना उग्रसेन को मुक्त किया। वृद्ध उग्रसेन अपने दुष्ट पुत्र कंस के मरने पर दुःखी नहीं हुए। कृष्ण ने उन्हें राजगद्दी दे दी और स्वयं उनकी सहायता करते रहे।

उर्वशी, अर्जुन, उत्तरा

अर्जुन को जब शिव से पाशुपतास्त्र, जलाधीश वरुण से वारुण-पाश और धनाधीश कुबेर से अन्तर्धान नामक अस्त्र प्राप्त हुए, तो इन्द्र का सारथि मातलि अर्जुन को दिव्य रथ पर बैठाकर स्वर्ग ले गया। वहाँ अर्जुन ने इन्द्र से अस्त्र-शिक्षा ग्रहण की। पाँच वर्ष तक अभ्यास करने के उपरान्त उन्होंने गंधर्वों से नाचना और गाना सीखा। चित्रसेन गंधर्व से नृत्यशिक्षा लेकर अर्जुन इस विद्या में भी प्रवीण हो गये।

इसी समय अर्जुन की प्रशंसा सुनकर स्वर्ग की सबसे सुन्दरी अप्सरा उर्वशी उन पर मुग्ध हो गई। वह अर्जुन के पास एक दिन सज-धजकर गई और कहने लगी—'मैं आपके गुणों को सुनकर आपके पास आई हूँ। आप मुझे स्वीकार करें।' ब्रह्मचर्य व्रतधारी अर्जुन ने उसे देख, गुरुजन समझ, श्रद्धा से नत-मस्तक हो वन्दना की और कहा—'तुम तो गुरुपत्नी के समान मेरी पूजनीय हो।'

उर्वशी अपनी प्रणय-याचना मे निराश हुई, तो उसने क्रोध में आकर अर्जुन को शाप दिया—'तुमने पुरुष होकर मुझे निराश किया है, अतएव तुम्हें स्त्रियों में नर्त्तक होकर रहना पड़ेगा। तुम सन्तान-रहित होकर नपुंसक के नाम से प्रसिद्ध होगे।'

इन्द्र ने जब इस शाप की बात सुनी तो अर्जुन को समझाया कि यह शाप तुम्हारे लिए वरदान सिद्ध होगा, अतएव चिन्ता मत करो।

अज्ञातवास के समय अर्जुन ने राजा विराट की पुत्री उत्तरा को नृत्य और संगीत सिखाने के लिए "वृहन्नला" नाम से अपने को प्रसिद्ध किया और अन्तःपुर में रहकर कन्याओं को गाने-बजाने और नाचने की शिक्षा देते रहे। यही उत्तरा अन्त मे अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से विवाह कर अर्जुन की पुत्र-वधू बनी। द्रोणाचार्य के चक्रव्यूह में अभिमन्यु वीरगति को प्राप्त हुए तब उत्तरा, गर्भवती होने के कारण, सती न हो सकी।

अर्जुन के द्वारा अपमानित होने पर अश्वत्थामा ने पांडुवंश का उन्मूलन करने का संकल्प किया था। श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से मरे उत्तरा के गर्भस्थ पुत्र को जीवित कर दिया। यही पुत्र परीक्षित नाम से हस्तिनापुर का राजा बना।

उषा, चित्रलेखा, बाणासुर, अनिरुद्ध

राजा बलि के सौ बेटों मे बाणासुर सबसे बड़ा था। वह शंकर का परम भक्त था। उसकी एक पुत्री 'उषा' थी। वह परम सुन्दरी थी। उषा ने एक बार स्वप्न में कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को देखा। अनिरुद्ध प्रद्युम्न का पुत्र था। रात को एकाएक नींद खुल जाने से उषा बोल उठी—'प्रियतम कहाँ गये?' तब पास ही वर्तमान उसकी एक सखी चित्रलेखा ने आश्चर्य से कहा—'तुम्हारे प्रियतम कौन हैं? तुमने किसको स्वप्न में देखा है?' उषा ने स्वप्न में देखे हुए परम सुदर्शन पुरुष का रूप, आकृति और वेश-भूषादि का वर्णन कर कहा—'मै तो अब उसी से विवाह करूँगी।'

चित्रलेखा ने उसके बताये हुए वर्णन को सुनकर अनिरुद्ध का हू-बहू सच्चा चित्र खींच दिया और माया के बल से जान लिया कि वह द्वारकापुरी में रहनेवाले कृष्ण के पोते हैं। बस, वह योगबल से आकाश में उड़ गई और अनिरुद्ध को पलँगसहित उठाकर उषा के भवन में ले आई। उषा और अनिरुद्ध एक-दूसरे से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और गुप्त रूप से रहने लगे।

उषा के महल मे कोई पुरुष नहीं जा सकता था। बाणासुर को स्वप्न में भी ध्यान न था कि कोई पुरुष उसकी पुत्री के महल मे है। एक बार पहरेदारों ने शंकित होकर बाणासुर से कह दिया। वह उसी समय दौड़ता आया, तो देखा कि दोनों बैठे चौसर खेल रहे हैं। अनिरुद्ध समझ गया कि बाणासुर मारने आ रहा है। उसने द्वार बन्द करनेवाला लोहे का भारी बेलन उठा लिया और सामना करने को तैयार हो गया।

बाणासुर के असुरों से बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। अन्त में बाणासुर ने उसे नाग-पाश से बाँधकर कैद कर लिया।

उधर नारद ने यादवों पर सारा भेद प्रकट कर दिया। अनिरुद्ध के बन्दी होने का समाचार सुनकर कृष्ण और बलदेव युद्ध के लिए चल पड़े। दोनों ओर की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। बाणासुर ने अपने एक हजार हाथों से निरन्तर बाणों की वर्षा की। शिव स्वयं अपने भक्त की ओर से लड़ने आये। कृष्ण और शंकर में घोर युद्ध हुआ। फिर कृष्ण अपने चक्र से बाणासुर का एक-एक हाथ काटने लगे। जब दो हाथ र गये, तब शिव ने समझ लिया कि अब बाणासुर के प्राण नहीं बचेंगे। तब वे कृष्ण के सामने प्रकट होकर स्तुति करने लगे—मैं जानता हूँ कि आप साक्षात् नारायण हैं। यह असुर मेरा भक्त है। इसे अभयदान दीजिए। अब आपके पोते को बंदी बनाने का इसे पर्याप्त दंड मिल चुका है।

भला, कृष्णजी शंकर की बात कैसे टालते? उन्होंने कहा—बाणासु मेरे परम भक्त प्रह्लाद का वंशज है। अतः मैं उसे यों भी न मारता।

अन्त में बाणासुर के अपराध क्षमा कर शुभ लग्न में अनिरुद्ध-उ का विवाह हो गया। शिव भी कैलास चले गये। और सब लोग बहु सा धन दहेज में लेकर द्वारकापुरी लौट गये। अनिरुद्ध का वि रुक्मी की पोती रोचना से भी हुआ था, जिससे वज्रनाभ नामक उत्पन्न हुआ।

अतएव उन्होंने शाप के भय से बहाना किया कि यदि आप एक हजार श्यामकर्ण श्वेत घोड़े ला दें, तो मैं अपनी कन्या का विवाह कर दूँ।

ऋचीक वरुण के पास गये और वैसे ही घोड़े माँग लाये। तब सत्यवती का विवाह महर्षि ऋचीक से हो गया। सत्यवती के कोई भाई न था, इससे पत्नी और सास दोनों ने महर्षि से पुत्र-प्राप्ति के लिए प्रार्थना की। उन्होंने मंत्रबल से दो चरु तैयार किये। एक में तो क्षात्रधर्म की शक्ति स्थापित की और दूसरे में ब्रह्मशक्ति स्थापित की। सत्यवती की माँ यह समझी कि सत्यवतीवाला चरु अधिक अच्छा होगा। इससे उन्होंने सत्यवती का चरु स्वयं खा लिया। और अपना भाग सत्यवती के लिए छोड़ दिया।

ऋचीक मुनि को जब यह पता लगा, तो वे बोले—यह तो बड़ा अनर्थ हो गया। अब तुम दोनों के घोर प्रकृतिवाला पुत्र होगा।

सत्यवती ने बहुत अनुनय की तो ऋचीक ने कहा—'तुम्हारा पुत्र नहीं तो तुम्हारा पौत्र ब्राह्मण होकर क्षत्रिय के कर्म करेगा और तुम्हारा भाई क्षत्रिय वंश में उत्पन्न होकर ब्रह्मवेत्ता होगा।'

सत्यवती के पुत्र जमदग्नि और जमदग्नि के परशुराम हुए, जो ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय कर्म करनेवाले हुए और गाधि के विश्वामित्र हुए, जो क्षत्रिय वंश में उत्पन्न होकर भी राजर्षि से ब्रह्मर्षि बने।

ऋभु, निदाघ

महर्षि ऋभु ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। वे एक दिन भ्रमण करते हुए पुलस्त्य ऋषि के आश्रम मे पहुँचे तो वहाँ पुलस्त्य के पुत्र निदाघ को अपना शिष्य बना लिया। निदाघ अपने पिता का आश्रम छोड़, इनके साथ भ्रमण करने लगा।

महर्षि ऋभु ने निदाघ को तत्त्वज्ञान का उपदेश देकर कहा कि अब जाकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो।

गुरुदेव की आज्ञा से निदाघ ने विवाह किया और एक नदी के किनारे आश्रम बनाकर रहने लगा। एक दिन ऋभु मुनि उसके आश्रम में आये, तो निदाघ ने उन्हें पहचाना नहीं। बहुत दिनों बाद पुनः महर्षि ऋभु को निदाघ ने एक भीड़ मे देखा, तो बातचीत करने के उपरान्त निदाघ ने उन्हें पहचाना कि वे उनके गुरु हैं। इस प्रकार अन्य अवसरों पर भी निदाघ ने इन्हें नहीं पहचाना, पर प्रत्येक बार महर्षि ऋभु ने अपने शिष्य को क्षमा कर दिया। इनकी क्षमाशीलता की महिमा सुनकर सनक आदि ऋषियों ने इनकी प्रशंसा ब्रह्मा के सामने की। उन्होंने इनके नाम के आगे क्षमा के प्रथम अक्षर 'क्ष' को जोड़कर इनका नाम ऋभुक्ष रख दिया।

ऋभुगण एक प्रकार के देवता भी हैं। ये त्वष्टा की पुत्री के तीन पुत्र थे, जो सदा एक साथ रहते थे। ये त्वष्टा के समान ही शिल्पी थे। इन ऋभुगणों ने ही इन्द्र के घोड़े, अश्वनीकुमारों का रथ और बृहस्पति की कामधेनु बनाई थी। इनके पिता का नाम सुधन्वा था, जिसने अपने सत्कर्मों से देवत्व प्राप्त किया था। इन ऋभुगणों ने अपने वृद्ध माता पिता को युवावस्था प्रदान की और जब त्वष्टा ने देवताओं के लिए एक सोमरस का पात्र बनाया, तो ऋभुगणों ने उसी पात्र के चार पात्र बना सबको चकित कर दिया था। ये प्रायः इन्द्र के साथ घूमा करते थे।

एकपत्नी, धर्मव्याध, कौशिक

मिथिलापुरी-निवासी एक व्याध ने कौशिक नाम के एक तपस्वी वेदाध्यायी ब्राह्मण को धर्म का तत्त्व समझाया था। कौशिक नामक एक तपस्वी पेड के नीचे बैठे वेदपाठ कर रहे थे कि एक बगली चिड़िया (वलाका) ने पेड़ पर से उनके ऊपर बीट कर दी। कौशिक ने क्रुद्ध होकर उसकी ओर जो देखा, तो वह मरकर गिर पड़ी। इस पर उन्हें अपने तप के प्रभाव का बड़ा गर्व हो गया। फिर वे भिक्षा माँगने के लिए निकले। वे एकपत्नी नामक गृहिणी के घर गये। उसका पति भूखा

यासा उसी समय आया था। वह उसकी सेवा में लग गई। थोड़ी देर बाद आई तो विलम्ब का कारण बताकर क्षमा माँगने लगी।

कौशिक बहुत बिगड़े और अपना क्रोध प्रदर्शित करने लगे। इस पर एकपत्नी बोली—'मैं वह बगली नहीं हूँ, जो आपके क्रोध की आग से जलकर मर गई थी।'

कौशिक अवाक् हो गये कि इस पतिव्रता ने अपने पातिव्रत्य से सब समझ लिया। उन्होंने क्षमा माँगी, तब सती एकपत्नी ने उन्हें क्रोध को वश में करने की शिक्षा दी और मिथिला नगरी के धर्मव्याध धर्मात्मा पारधि से मिलने को कहा।

कौशिक ने वहाँ जाकर देखा कि वह धर्मव्याध पितृपरम्परा से चले आये व्यवसाय को करते हुए भी धर्म-पालन करता है। उसने अपनी भयंकर वृत्ति को कुलोचित कर्म बतलाया, जिससे सदाचार के आचरण में कोई बाधा नहीं पहुँचती थी।

धर्मात्मा पारधि ने कौशिक को अनेक प्रकार के उपदेश देकर अपने पूर्व जन्म की कथा बतलाई कि वे पिछले जन्म में वेदाध्यायी ब्राह्मण थे। एक दिन राजा के साथ शिकार खेलते समय मृगी पर तीर चलाया, तो ज्ञात हुआ कि मृगी के रूप में वह एक ऋषि थे। ऋषि ने शाप दे दिया—तूने मुझे बिना अपराध मारा, इससे तू शूद्र योनि में उत्पन्न एक व्याधा होगा। इसी पाप के कारण पारधि व्याधा बना।

एकलव्य, अर्जुन, द्रोणाचार्य

कौरवों और पाण्डवों के गुरु का नाम द्रोणाचार्य था। वे उन्हें धनुर्वेद की शिक्षा देते थे। द्रोणाचार्य के पुत्र का नाम अश्वत्थामा था। वह जल्दी से अपना काम समाप्त कर सबसे पहले अपने पिता के पास पहुँचकर गुप्तविद्या सीख लेता था। सब शिष्यों मे अर्जुन बढ़े-चढ़े थे। वे तुरन्त ताड़ गये। अब वे भी चटपट अपना काम समाप्त कर

अश्वत्थामा के साथ ही आचार्य के पास आ जाते और अंधकार में भी बाण चलाने का अभ्यास किया करते।

एक दिन शिष्यों की परीक्षा के लिए आचार्य ने वृक्ष पर बैठी एक चिड़िया दिखाई और उसका सिर उड़ाने को कहा। पहले युधिष्ठिर से कहा। जब वे निशाना लगा रहे थे, तब द्रोणाचार्य ने पूछा—क्या तुम मुझे और अपने भाइयों को देख रहे हो? युधिष्ठिर ने कहा—हाँ, वृक्ष, चिड़िया, आपको और भाइयों को देख रहा हूँ। वे निशाना न लगा सके। फिर द्रोणाचार्य ने एक-एक करके सब शिष्यों से वही प्रश्न किया। सबने वही उत्तर दिया और कोई भी निशाना न लगा सका। अन्त में जब अर्जुन की बारी आई, तो गुरु ने उसी प्रश्न को दुहराया। अर्जुन ने उत्तर दिया—'नहीं, मैं चिड़िया के सिर के अतिरिक्त और कुछ नहीं देख रहा हूँ। और गुरु की आज्ञा पाकर तत्काल उस चिड़िया का सिर उड़ा दिया।

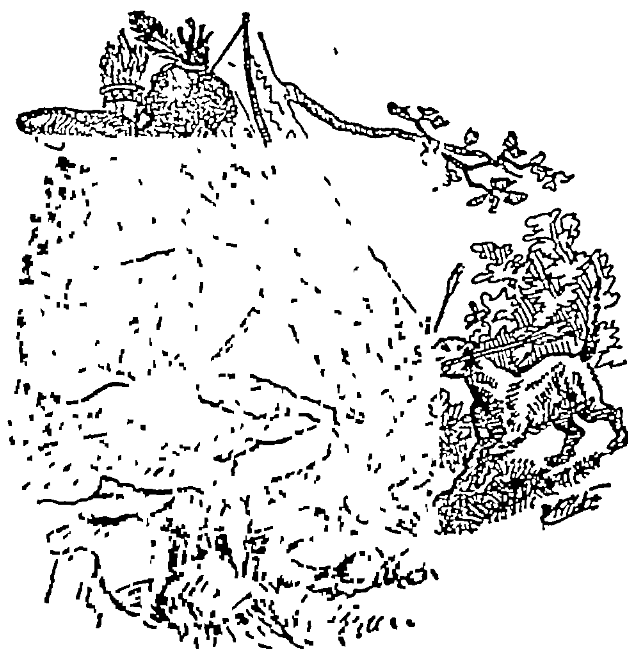
एक बार द्रोणाचार्य को गंगा-स्नान करते समय मगर ने पकड़ लिया, तो अर्जुन ने ही अपने बाणों से उस मगर को मारकर गुरु को बचाया, जिससे उन्हें ब्रह्मशिर आदि अस्त्र मिले। इस प्रकार द्रोणाचार्य के शिक्षा-कौशल की बात देश-देशान्तर मे फैल गई।

एक दिन निषादपति हिरण्यधनु अपने पुत्र एकलव्य को अस्त्र-शिक्षा प्राप्त कराने के लिए लाया; किन्तु द्रोणाचार्य ने उसे निषाद जाति का जान, शिक्षा देना अस्वीकार कर दिया। इस पर एकलव्य लौट गया और वन मे जाकर द्रोणाचार्य की एक मिट्टी की मूर्त्ति बना, उसी को गुरु मानकर नियमित रूप से अस्त्राभ्यास करने लगा और अत्यन्त निपुण हो गया।

एक दिन जब कौरव और पाडव आदि सब राजकुमार वन मे शिकार खेल रहे थे, तो उनके साथ उनका एक कुत्ता भी वन मे था।

एक स्थान पर मैले-कुचैले मृगचर्म पहने एकलव्य को देखकर कुत्ता भूँकने लगा।

एकलव्य उस समय अभ्यास कर रहा था। उस कुत्ते पर खीझकर कलव्य ने सात बाण मारे, जिससे कुत्ते का मुँह भर गया और ह भूँक न सका। वह पाडवों के पास उसी दशा में जब भागकर ाया, तो वे आश्चर्य-चकित हो गये। शीघ्र ही उन लोगों ने एकलव्य को ूँढ़ निकाला। उसने अपने को द्रोणाचार्य का शिष्य बताया। तब द्रोणा-



एकलव्य

चार्य से अर्जुन ने कहा—गुरुजी, आप तो कहते थे, मेरा कोई भी शिष्य तुमसे बढ़कर न होगा; लेकिन यह एकलव्य तो मुझसे अधिक प्रवीण है।

यह सुनकर द्रोणाचार्य एकलव्य के पास गये और बोले—'यदि तू सचमुच मेरा शिष्य है, तो गुरु-दक्षिणा दे।'

एकलव्य ने कहा—'क्या दूँ? आप आज्ञा दीजिए।'

द्रोणाचार्य ने कहा—'तुम अपने दाहिने हाथ का अँगूठा मुझे दो।'

एकलव्य ने प्रसन्नतापूर्वक उसी समय अपना अँगूठा काटकर दे दिया। इसके बाद से उसके हाथों में बाण चलाने की वह सफाई और स्फूर्ति न रही, परन्तु उसका यश चारों ओर फैल गया।

और्व, बड़वानल

और्व मुनि भृगु मुनि के वंशज थे। भृगु मुनि के ही वंशज परशुराम थे, जिन्होंने पृथ्वी के समस्त क्षत्रियों का संहार कर डाला था। उन्होंने दत्तात्रेय के भक्त, कार्तवीर्य सहस्रार्जुन को भी मार डाला था। कार्तवीर्य के पुत्रों ने भी बदला लेना चाहा। उन्होंने भृगु के वंशजों को मारना प्रारम्भ किया। यहाँ तक कि गर्भस्थ शिशु की भी वे हत्या कर डालते थे। अतएव एक भृगुवंशी स्त्री ने उरु (जाँघ) में छिपा कर अपने पुत्र का पालन-पोषण किया। उरु मे से उत्पन्न होने के कारण वह पुत्र और्व कहलाया।

और्व ने घोर तप कर अपने तेज से हैहयराज कार्तवीर्य के पुत्रों को अंधा कर दिया। उनके क्रोधाग्नि के तेज से सारा ससार जल उठता, किन्तु अपने पितरों की इच्छा से उन्होंने उस अग्नि को बड़वा या घोड़ी के रूप में समुद्र मे डाल दिया। उस समय से समुद्र की आग "बड़वानल" कहलाने लगी। फिर और्व मुनि अयोध्या के राजा सगर के पुरोहित बने

कच, देवयानी, संजीवनी, शुक्राचार्य

असुरों के गुरु शुक्राचार्य संजीवनी विद्या जानते थे, इस कारण जितने दानव युद्ध में मरते थे, उनको वे जीवित कर देते थे। देवताओं के गुरु बृहस्पति को यह विद्या नहीं आती थी।

शुक्राचार्य के देवयानी नामक एक पुत्री थी। कच देवताओं के गुरु बृहस्पति का पुत्र था। वह शुक्राचार्य के पास संजीवनी-विद्या सीखने के लिए आया, तो देवयानी उससे प्रेम करने लगी। असुरों ने बारम्बार

कच को मार डाला; किन्तु देवयानी के कहने से शुक्राचार्य ने उसे हर बार जिला दिया।

एक बार असुरों ने कच को मारकर, उसे जला डाला और उसकी राख शराब में मिलाकर शुक्राचार्य को पिला दी। देवयानी ने जब पिता से उसे जीवित करने को कहा, तो ज्ञात हुआ कि कच तो उनके पेट में है। अतः उन्होंने कच को संजीवनी-विद्या सिखाकर अपने पेट से निकाल दिया।



कच और देवयानी

फिर देवयानी ने कच के आगे विवाह-प्रस्ताव किया। किन्तु कच ने गुरु-पुत्री सोच अस्वीकार कर दिया। इस पर देवयानी ने क्रोध कर उसे शाप दिया कि तेरी विद्या निष्फल हो जाय। कच ने कहा—मैं शाप को स्वीकार करता हूँ; किन्तु मैं यदि यह विद्या दूसरे को दान कर दूँगा तो वह सफल होगी। पर तुम्हे भी मेरा शाप है, तुम्हारा विवाह ब्राह्मण से नहीं होगा।

इसी शाप के कारण देवयानी का विवाह राजा ययाति से हुआ।

कद्रू, विनता, गरुड़, उच्चैःश्रवा, कर्कोटक

महर्षि कश्यप दूसरे ब्रह्मा के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके द्वारा अनेक योनियों की सृष्टि हुई। कश्यप मुनि की दो पत्नियाँ थीं—कद्रू और विनता।

कद्रू नाम की पत्नी से गरुड़ आदि पक्षियों की उत्पत्ति हुई।

एक दिन कद्रू और विनता में विवाद छिड़ गया कि समुद्र-मन्थन से उत्पन्न उच्चैःश्रवा नामक घोड़े की पूँछ का रंग सफेद है या काला। विनता कहती थी, सफेद और कद्रू कहती थी काला। अन्त में दोनों में यह शर्त ठहरी कि जिसकी बात असत्य निकले, वह दूसरी की दासी होकर रहे।

वास्तव में उच्चैःश्रवा घोड़े की पूँछ सफेद रंग की थी। कद्रू को यह बात पहले ज्ञात हो गई, तो उसने घबराकर अपने काले-काले पुत्रों को—जो सर्प थे—भेजा कि उच्चैःश्रवा घोड़े की पूँछ से लिपट जायँ।

दूसरे दिन कद्रू और विनता घोड़े को देखने के लिए आकाश-मार्ग से चलीं। दूर से विनता को उच्चैःश्रवा की पूँछ काली दिखलाई पड़ी, तो वह हार मान गई और शर्त के अनुसार कद्रू की दासी बन गई।

अन्त में विनता के पुत्र गरुड़ ने माता को दासत्व से छुड़ाया। वह भगवान् के निकट जाकर नाना प्रकार से उनकी सेवा करने लगा। भगवान् ने प्रसन्न होकर कहा—'वर माँगो।' गरुड़ ने वर माँगा कि मैं सर्पों को भक्षण करूँ, तो सर्प का विष मुझे न चढ़े। भगवान् ने कहा—'तथास्तु।'

उस दिन से गरुड़ सर्पों को भक्षण करने लगा। तब कद्रू घबरा गई और विनता से अपना अपराध क्षमा करवाकर उसे मुक्त कर दिया। फिर दोनों आपस में मिल-जुलकर रहने लगीं।

कद्रू के एक पुत्र सर्प का नाम कर्कोटक था। एक बार नारद मुनि ने इस सर्प से रुष्ट होकर शाप दिया कि तुमने मेरे साथ छल किया है, अतएव तुम वन में अजगर होकर एक स्थान पर पड़े रहो। तुम्हारा उद्धार केवल राजा नल के द्वारा होगा।

राजा नल राजपाट खोकर जब वन में भटक रहे थे तब इसी कर्कोटक ने उन्हें काट खाया। सर्प के विष से राजा नल कुरूप और विकृत हो गये, पर कर्कोटक शापमुक्त हो गया। तव उसने प्रसन्न होकर राजा नल से कहा कि मेरे काटने से आपको हानि के वदले लाभ ही होगा। विकृत होने से कोई आपको पहचान न सकेगा। आप मेरे कहने से अब राजा ऋतुपर्ण के यहाँ जाकर नौकरी करें।

"राजा ऋतुपर्ण द्यूतकला में निपुण हैं। उनसे जुआ खेलना सीखिए और जव कभी अपना असली रूप चाहें, तो मेरा स्मरण करने से आपको अपना पूर्व रूप प्राप्त हो जायगा।" कर्कोटक का काटना वास्तव में नल के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ।

कबंध

सीता-हरण के उपरान्त जब सीताजी को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते राम और लक्ष्मण वन में घूम रहे थे, तो उन्होंने एक विशालकाय राक्षस को देखा, जिसके न तो मस्तक था और न गला। धड़मात्र (कबंध) ही उसका स्वरूप था। उसके पेट में ही मुँह और एक आँख बनी हुई थी। वह पर्वत के समान ऊँचा था। उसने अपनी योजन भर लम्बी भुजाओं से बलपूर्वक राम और लक्ष्मण को पकड़ लिया। तव राम और लक्ष्मण ने तलवार से उसकी दोनों भुजाएँ काट दीं। भुजाएँ कटते ही खून से लथपथ होकर राक्षस गिर पड़ा और अपने शाप की बात कहने लगा—मैं पूर्वकाल में बड़ा वली और पराक्रमी था। सूर्य, चन्द्र और इन्द्र के समान मेरा रूप था; किन्तु लोगों को डराने के लिए अत्यन्त भयकर राक्षस-रूप धारण करके मैं इधर-उधर घूमा करता था और ऋषि-मुनियों को सताया करता था। एक वार स्थूलशिरा नामक महर्षि को मैंने कुपित कर दिया। तव उन्होंने मुझे घोर शाप देते हुए कहा, 'तुम्हारा यह निन्दित और भयंकर रूप सदैव के लिए हो जाय।' मुनि के शाप से राक्षस होने पर वहुत दुःखी होकर मैंने घोर तपस्या कर ब्रह्माजी से दीर्घजीवी होने का वरदान

पाया। इससे मुझे बड़ा अहङ्कार हो गया। मैं एक दिन युद्ध में देवराज इन्द्र पर आक्रमण कर बैठा। इन्द्र ने मुझ पर वज्रप्रहार किया, जिससे मेरा मस्तक मेरे शरीर में ही धँस गया। टाँगें भी शरीर में घुस गईं। बहुत अनुनय-विनय करने पर इन्द्र ने मेरी भुजाएँ एक एक योजन लम्बी कर दीं और कहा—जब राम-लक्ष्मण तुम्हारी भुजाएँ काटेंगे, तब तुम्हारा उद्धार होगा।

राम-लक्ष्मण ने उसका दाहसंस्कार किया, तो वह फिर तेजस्वी स्वरूप से प्रकट हो गया। उसने कहा—'आप लोग सुग्रीव नामक वानर के पास जाइए। उसकी मित्रता से आपको सीताजी का पता लग जायगा।' ऐसा कहकर कबंध स्वर्ग चला गया।

कपिलदेव, देवहूति, अनसूया

भगवान् कपिलदेव महर्षि कर्दम और देवहूति के पुत्र थे। देवहूति महाराज स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की पुत्री थी। राजा की पुत्री होने पर भी देवहूति किसी तपस्वी मुनि से विवाह करना चाहती थी। देवर्षि नारद की सम्मति से देवहूति का विवाह कर्दम मुनि से किया गया। किन्तु कर्दम ऋषि ने कहा कि सन्तान होने के उपरान्त मैं गृहस्थाश्रम छोड़कर सन्यास ले लूँगा। देवहूति के गर्भ से नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं, तो कर्दम मुनि वन जाने लगे। किन्तु देवहूति ने उनसे नौ कन्याओं का विवाह करने तथा पुत्रोत्पत्ति के बाद जाने का अनुरोध किया।

कर्दम ने अपनी नौ कन्याओं का विवाह नौ प्रजापतियों से कर दिया। उनकी पुत्री कला मरीचि को, अनसूया अत्रि को, श्रद्धा अङ्गिरा को, हविर्भू पुलस्त्य को, गति पुलह को, क्रिया क्रतु को, ख्याति भृगु को, अरुन्धती वशिष्ठ मुनि को और शान्ति अथर्वा को ब्याही गई।

कुछ दिनों बाद देवहूति के गर्भ से कपिलदेव का जन्म हुआ। उन्होंने जब अपने पिता कर्दम को उपदेश दिया, तो वे विरक्त होकर वन

भक्ति का उपदेश दिया। तत्पश्चात् कपिलदेव भी वन में चले गये। देवहूति भी भगवान् की आराधना करके परम पद को प्राप्त हुई। उसका शरीर नदी के रूप में परिणत हो गया।

नदी के *पर्य्यायवाची शब्द*—निम्नगा, तटिनी, आपगा, सरिता, तरंगिणी, कुलङ्कषा।

कणाद

महर्षि कणाद दर्शनशास्त्र के ग्रंथों के प्रणेता थे। ये किसी प्रकार का संग्रह नहीं रखते थे। किसान अपने-अपने खेतों से अन्न काटकर जब ले जाते थे, उसके बाद कणों के रूप मे जो कुछ बच रहता, उसे ही बीन-कर ये अपने शरीर का निर्वाह करते। इसी लिए इनका नाम "कणाद" पड़ा। इन्होंने महर्षि नर-नारायण के पास बदरीनारायण में जाकर अपनी जिज्ञासा पूर्ण की थी और भगवत्तत्त्व-संबंधी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी।

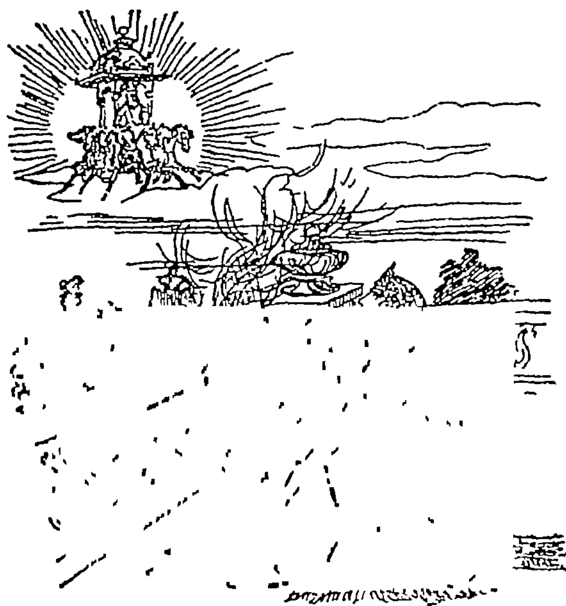
काशी में अब तक इनके द्वारा स्थापित एक शिवलिंग है, जहाँ स्वयं भगवान् शिव ने प्रकट होकर इन्हे दर्शन दिये थे।

कर्ण, पृथा, राधा, इन्द्र, परशुराम

शूरसेन की पुत्री का नाम पृथा था। शूरसेन के भाई कुन्तिभोज के कोई सन्तान न थी, अतः उन्होंने कुन्ती को गोद ले रखा था। कुन्ति-भोज की पुत्री होने से वह कुन्ती कहलाने लगी।

एक दिन शूरसेन के यहाँ दुर्वासा ऋषि आये। पृथा की सेवा-शुश्रूषा से प्रसन्न होकर उन्होंने उसे पाँच मंत्र दिये और कहा—इन मंत्रों से जिस देवता का आह्वान करोगी, वह उपस्थित होकर तुम्हारे अधीन हो जायगा।

उस कुमारी कन्या ने कौतूहलवश सूर्य नारायण का आह्वान किया तो वे तत्काल उपस्थित हो गये। सूर्य से पृथा को एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो जन्म से ही सोने के कवच और कुंडल पहने था। लोक-लज्जा से डर-कर पृथा ने उस नवजात शिशु को पिटारी में रखकर नदी में बहा दिया।



कुमारी कुन्ती ने सूर्य का आह्वान किया

वह पिटारी बहती-बहती अंगदेश पहुँची और किनारे जा लगी, तो उस पर महाराज के सारथी अधिरथ की दृष्टि पड़ी। वह नि.सन्तान था। उसने और उसकी पत्नी राधा ने बड़े प्रेम से उस बालक का पालन-पोषण किया। उसके सोने के कुंडल देखकर उसका नाम उन्होंने "वसुषेण" रखा।

वसुषेण राधा का पुत्र होने से 'राधेय' और सूत का पुत्र होने से 'सूतपुत्र' भी कहलाता था। कर्ण की गणना दानवीरों में होती है। कर्ण की प्रतिज्ञा थी कि मध्याह्न तक सूर्य नारायण का जप करते समय कोई जो याचना करेगा, उसे मुँहमाँगा दान देंगे। एक दिन अर्जुन के जन्मदाता इन्द्र, ब्राह्मण का वेश धारण कर, अर्जुन के लिए कर्ण के कवच-कुंडल माँगने गये। कर्ण ने उन्हे पहचान लिया, फिर भी अपने शरीर से कवच काटकर और कान से कुंडल निकालकर इन्द्र को दे दिये। तब इन्द्र ने प्रसन्न होकर उसे अपनी शत्रुघातिनी शक्ति दे दी। उस घड़ी से वह "कर्ण" नाम से प्रसिद्ध हो गया।

कर्ण को पहचान कर कुन्ती ने उससे पांडवों की ओर से लड़ने को कहा; किन्तु कर्ण कौरवों का कृतज्ञ था, इस कारण उसने अपनी असमर्थता प्रकट की। बात यह थी कि एक बार द्रोणाचार्य के यहाँ धनुर्विद्या सीखते समय कर्ण और अर्जुन में विवाद हो गया। तब अर्जुन ने अज्ञात कुलशीलवाले सूतपुत्र से लड़ना अस्वीकार कर दिया। उसी समय दुर्योधन ने कर्ण को अंग देश का राजा घोषित कर उसका बड़ा सम्मान किया। द्रौपदी के स्वयंवर में भी कर्ण ने जैसे ही धनुष उठाया, वह बोल उठी कि मैं सूतपुत्र को नहीं वरूँगी। अतः वह दुःखी हो कौरवों की शरण मे चला गया।

माता कुन्ती के याचना करने पर अपने जन्म का रहस्य सुनकर कर्ण ने प्रतिज्ञा की कि अर्जुन के अतिरिक्त अन्य किसी पाण्डव को वह न मारेगा। उसने अपने को ब्राह्मण-पुत्र कहकर छल से परशुराम से शस्त्र-विद्या सीखी थी।

एक दिन कर्ण की गोद मे सिर रखे परशुराम लेटे हुए थे कि एक अलर्क नाम के कीड़े ने कर्ण की जाँघ मे काट खाया, जिससे रक्त की धारा बहने लगी; पर गुरु को जगाने के भय से वह चुपचाप कष्ट सहता रहा। जागने पर खून की धारा बहते देख, परशुराम क्रुद्ध होकर उसका परिचय पूछने लगे। कर्ण को बतलाना पड़ा कि वह सूतपुत्र कर्ण है,

ब्राह्मण-पुत्र नहीं। झूठ बोलने के कारण परशुराम ने उसे शाप दिया कि मेरी दी हुई भार्गव-विद्या तू अन्त समय में भूल जायगा।

एक बार कर्ण ने एक ब्राह्मण के बछड़े को मार दिया। इससे क्रोध कर ब्राह्मण ने शाप दिया कि संग्राम में लड़ते-लड़ते तुम्हारे रथ का पहिया पृथ्वी में धँस जायगा और तब तुम्हारा अन्त समय आ जायगा।

द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद कर्ण कौरवों का सेनापति बना तो कर्ण और अर्जुन मे घमासान युद्ध हुआ। अर्जुन ने कर्ण के पुत्र वृषसेन को मार डाला। इस पर उसे बड़ा क्रोध आया; पर इसी समय अर्जुन ने अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ा और कर्ण ने अपना वज्रास्त्र छोड़ा। किन्तु रथ आगे बढ़ाते ही उसका पहिया पृथ्वी में धँस गया और ज्यों ही रथ से उतरकर वह पहिया निकालने लगा, अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष से तीक्ष्ण बाण छोड़े, जिससे कर्ण का मस्तक कट गया और तुरन्त ही कौरवों का सेनापति कर्ण मर गया। अन्त समय उसके एक हाथ में रथ का पहिया था और दूसरे हाथ में परशुराम की विद्या का खाली अस्त्र।

कर्णघंटा

कर्णघंटा अथवा घंटाकर्ण नामक एक ब्राह्मण था, जो कानों मे घंटे बाँधने के कारण "कर्णघंटा" नाम से विख्यात हो गया। यह ब्राह्मण शिव का परम भक्त था। वह शिव का इतना कट्टर भक्त था कि अन्य देवताओं के नाम तक सुनना नहीं चाहता था। कानों में घंटे बाँधने से वह अपने आसपास अन्य देवताओं के नाम नहीं सुन पाता था। यदि कोई उसके सामने राम, कृष्ण या विष्णु का नाम ले लेता, तो वह सिर हिलाकर घंटा बजाता हुआ दूर दौड़ जाता था। जिस स्थान में वह रहता था, वह भी "कर्णघंटा" के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

कश्यप

ब्रह्मा के मानस पुत्र मरीचि के एक पुत्र का नाम कश्यप था। दक्ष
। जिन तेरह कन्याओं से इनका विवाह हुआ था, उनके नाम हैं—
दिति, दिति, दनु, काला, दनायु, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता,
पिला, मनु, कद्रू और सिंहिका। इन सब की इतनी सन्तानें हुईं कि
नसे समस्त सृष्टि भर गई। अदिति से देवता और बारह आदित्य,
ति से दैत्य, दनु से दानव, काला दनायु के भी दानव, सिंहिका से सिंह,
याघ्र, क्रोधा से क्रोध करनेवाले असुर, विनता से गरुड़, अरुण आदि
ः पुत्र हुए। कद्रू के सर्प, नाग इत्यादि हुए। मनु से समस्त मनुष्य
ए। इन सब में अदिति सबसे प्यारी पत्नी थी, जिनसे भगवान् वामन
ा जन्म लिया। कश्यप की गणना प्रजापतियों मे होती है।

भगवान् के कच्छपावतार से इनका नाम कच्छप से कश्यप
ो गया।

काकभुशुंडि

पूर्व जन्म में काकभुशुंडि अयोध्या के एक शूद्र थे। वे शैव थे और
नगुण भगवान् श्रीनारायण की निन्दा करते थे। गुरु के समझाने पर
भी कि शंकर और विष्णु अभिन्न हैं, वे शिव की ही पूजा करते थे। एक
बार शिवालय में शिवमंत्र का जप करते समय उनके गुरु पहुँच गये, तो
उन्होंने गुरु को प्रणाम नहीं किया। तब आकाशवाणी हुई कि उन्हे
एक हजार बार कीट-पतंग, पशु-पक्षी की योनि में जन्म लेना पड़ेगा।
इस शाप को सुनकर गुरु ने शिव की स्तुति कर क्षमा-याचना की, तब
शिव ने कहा—अच्छा, यह अन्तिम जन्म में रामभक्त ब्राह्मण होगा।

शाप के अनुसार अनेक योनियों के उपरान्त उसने ब्राह्मण के घर
जन्म लिया। घूमते-घामते वह ब्राह्मण लोमश ऋषि के पास पहुँचा।
महर्षि ने उसे ब्राह्मण-बालक समझ, ब्रह्मज्ञान का उपदेश देना प्रारंभ

किया, किन्तु जब भी वे निर्गुण ब्रह्म समझाना चाहते, वह ब्राह्मण-कुमार उसका खंडन कर सगुण का समर्थन करता था। अन्त में महर्षि को क्रोध आ गया। उन्होंने शाप दिया—'तुझे अपने पक्ष का इतना आग्रह है, तो तू पक्ष धारण कर। पक्षियों में नीच कौआ हो जा।' शापवश वह काक हो गया। तत्पश्चात् योग-बल से उसे पहचान कर उन्होंने स्नेहपूर्वक राममंत्र दिया और आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी राम में अनन्य भक्ति रहेगी। तुम जिस आश्रम में रहोगे, वहाँ एक योजन तक अविद्या न रहेगी।

तब काकभुशुंडि नीलाचल पर जाकर रहने लगे। राम की बाल-लीला देखने के लिए वे अयोध्या के महलों पर उड़कर बैठ जाते थे। काकभुशुंडि ने एक बार गरुड़ को भक्ति का उपदेश दिया था। एक बार जब ये रामकथा कह रहे थे, तो शंकर भगवान् राजहंस बनकर रामकथा सुनने इनके आश्रम में गये थे।

कार्त्तिकेय, देवसेना, षष्ठी, गणेश

शिव-पार्वती के विवाह के उपरान्त समस्त देवता, तारकासुर का वध करने के लिए, उनके पुत्र की प्रतीक्षा करने लगे; किन्तु पार्वती के बहुत दिनों तक कोई पुत्र न हुआ। तभी एक बार शिव का तेज पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसे पृथ्वी सहन न कर सकी, तो उसने अग्नि को दे दिया। कुछ दिनों के उपरान्त अग्निदेव ऋषि-पत्नियों को देखकर आसक्त हो गये। उन कृत्तिकाओं के प्राप्त न होने से वे बहुत दुःखी थे। उनकी पत्नी "स्वाहा" को जब यह ज्ञात हुआ, तो उसने छः बार छः ऋषि-पत्नियों का रूप धारण किया। इस प्रकार स्वाहा ने छः बार अग्नि का तेज प्राप्त किया। इससे उसके छः सिर और बारह भुजाओं-वाला एक पुत्र हुआ। उस पुत्र का नाम 'कुमार' और 'स्कन्द' पड़ा। इसी 'षडानन' ने तारकासुर का वध किया।

स्कन्द पुराण के अनुसार एक बार अग्नि सन्यासी का रूप धारण कर पार्वती के पास जा भिक्षा माँगने लगा। भिक्षा के साथ वह शिव

के वीर्य को भी खा गया। इस पर पार्वती ने शाप दिया कि तू सर्वभक्षी हो जा और इस वीर्य भक्षण से तुझे महान् कष्ट हो।

अग्निदेव उस वीर्य को पचा न सके तो उन्होंने उसे गंगा में वमन कर दिया। गंगा में वह वीर्य छः भागों में विभक्त होकर पड़ा रहा। वहाँ वे छः भाग मिलकर एक शरीर में परिणत हो गये। दैवयोग से वहाँ छः कृत्तिकाएँ आईं, तो छः मुखोंवाले उस पुत्र को देख वे उसे अपना पुत्र समझकर उठा ले गईं। उनके पति महर्षियों ने उन पर संदेह कर शाप दिया और घर से निकाल दिया। इससे वे नक्षत्ररूप हो आकाश में विचरण करने लगीं।

एक अन्य पुराण के अनुसार अग्नि को जब शिव के वीर्य-भक्षण से बहुत कष्ट हुआ, तो उन्हे नारद मुनि ने समझाया कि माघमास मे प्रातःस्नान करके जो स्त्री अग्निसेवन करने आये, उसके शरीर मे यह तेज स्थापित कर देना। संयोग से छः कृत्तिकाएँ वहाँ तापने गईं, जिसके फलस्वरूप वे गर्भवती हो गईं। तब उनके पति महर्षियों ने क्रोध कर उन्हे शाप दे दिया, जिससे वे तो नक्षत्र बन गईं; किन्तु उनका गर्भ गंगा मे गिर पड़ा। बहते-बहते, सरकंडों के समूह से घिर, उसकी रक्षा होती रही। कुछ काल में वह छः मुखोंवाले बालक के रूप में परिणत हो गया। सर्वज्ञ नारद ने इस पुत्र-जन्म के समाचार शिव-पार्वती को सुनाये। शिव-पार्वती उस समय गन्धमादन पर्वत पर विहार कर रहे थे। वे सब देवी-देवताओं के साथ उस बच्चे के पास गये। पार्वती उस बालक को देखकर वात्सल्यभाव से भर गईं। उसी समय देवताओं ने उस षडानन कुमार की स्तुति की, जिससे तारकासुर का वध हुआ।

एक बार इन्द्र ने, देवसेना नामक एक ब्रह्मा की पुत्री की, केशी असुर से रक्षा की थी। देवसेना को ब्रह्मा से आशीर्वाद मिला था कि उसका विवाह एक महान् पराक्रमी बालक से होगा। इस देवसेना का विवाह कार्त्तिकेय कुमार से हो गया और षडानन की पत्नी होने के कारण वह "षष्ठी" नाम से पुकारी जाने लगी।

कार्त्तिकेय के पर्य्यायवाची शब्द—स्कन्द, विशाख, कुमार, अग्निभू
गंगापुत्र, षरामुख, षडानन, सेनानी, सरजन्म, तारकजित ।

कालनेमि, मकरी, हनुमान, सुषेण

इन्द्र की सभा में एक अप्सरा और एक गन्धर्व नाच-गाकर सभासद
को रिझाया करते थे। एक दिन सभा में उनके नृत्य-गान की बहु
प्रशंसा हुई। संयोग से दुर्वासा ऋषि भी वहाँ उपस्थित थे; किन्तु उन्हों
इनके नृत्य और संगीत की प्रशंसा नहीं की। उस गन्धर्व औ
अप्सरा ने सोचा, ये ऋषि नृत्य और गायन के विषय में क्या जानें
अतएव दुर्वासा की ओर देख ये दोनों हँस पड़े। इस पर दुर्वासा
शाप दे दिया कि अप्सरा तो मकरी हो जाय और कालनेमि गन्ध
राक्षस। जब इन दोनों ने क्षमा-याचना की तो ऋषि ने कहा—त्रेतायु
मे रामदूत हनुमान के चरणों का स्पर्श होने से मकरी का और उन
द्वारा मारे जाने से कालनेमि का उद्धार होगा। अतएव इसने बड़े मायाव
दैत्यराज के रूप मे जन्म लिया।

लक्ष्मण को जब मेघनाद की शक्ति लगी, तो हनुमान मूर्च्छि
लक्ष्मण को राम के समीप ले गये। तब जाम्बवन्त ने कहा, 'सुषे
नाम का वैद्य लका मे रहता है, उसे बुलवाइए।' हनुमान छोटा-सा रू
धारण कर लका गये और घर समेत उस वैद्य को ले आये। सुषेण
पर्वत और ओषधि का नाम बता दिया।

हनुमान जैसे ही संजीवनी बूटी लेने के लिए चले, रावण ने अप
मामा कालनेमि को आज्ञा दी कि हनुमान को छल करके मार्ग में मा
डालो। कालनेमि ने मार्ग में माया रची, जिससे तालाब, मन्दिर और बा
बन गये। हनुमान ने सुन्दर आश्रम देखा, तो जल की तलाश मे घूम
लगे और साधुवेश में बैठे कालनेमि को देखा। कालनेमि ने राम
प्रशंसा कर कमडल भर जल दे दिया। फिर हनुमान से कहा कि सरोवर
स्नान करके आओ और मुझसे ज्ञान प्राप्त करो। तालाब में घुसते ह

एक मगरनी ने हनुमान के चरण पकड़ लिये और जब उन्होंने पैर से मारा तो सुन्दर अप्सरा का शरीर धारण कर वह आकाश में यह कहती चली गई कि वह मुनीश्वर नहीं, राक्षस है। इस प्रकार मकरी का शाप मिट गया, फिर स्नान कर हनुमान साधु के पास गये और कहा—पहले गुरुदक्षिणा ले लो। इसके पश्चात् अपनी पूँछ में उसको लपेटकर पछाड़ दिया। मरते समय वह गन्धर्व हो "राम-राम" कहता अपने लोक को चला गया।

कालयवन, जरासंध, द्वारका

कालयवन यूनान देश का रहनेवाला बड़ा बली राजा था। वह पृथ्वी भर घूम आया, मगर उसे कोई लड़नेवाला वीर न देख पड़ा। राह में उसकी भेट नारद से हुई, तो उसने अपने लड़ने योग्य योद्धा का पता पूछा। नारद ने मथुरापुरी के श्रीकृष्ण का यश वर्णन कर उनका पता दे दिया।

कालयवन अपनी सेना लेकर सीधे मथुरा पहुँचा। इसी समय श्रीकृष्ण ने सुना कि कंस का श्वशुर "मागध"—मगध का प्रतापी—राजा जरासंध भी सेना लेकर आ रहा है। श्रीकृष्ण बड़े असमंजस में पड़ गये कि क्या करें। अन्त में सोच-विचार कर उन्होंने देवताओं के कारीगर विश्वकर्मा को बुलाकर रातोंरात समुद्र के भीतर एक ऐसी पुरी बनवाई, जो सुदृढ़ किले के समान थी। कोई शत्रु उस पर आक्रमण नहीं कर सकता था। एक दिन में द्वारकापुरी बन गई। श्रीकृष्ण ने रातोंरात मथुरा-पुरी खाली कर दी और योगबल से मथुरावासियों को उनके सामान सहित वहीं पहुँचा दिया। फिर कृष्णचन्द्र कालयवन से लड़ने निकले।

कृष्ण को अकेला आते देख वह स्वयं भी रथ से उतर पड़ा और तलवार लेकर दौड़ा। कृष्ण दौड़ते हुए बहुत दूर निकल गये। कालयवन उनका पीछा करता रहा। कृष्ण एक खोह में घुसने लगे तो, कालयवन ने कहा—'तुम बड़े कायर हो। इस तरह पीठ दिखाकर

भागते हो।' किन्तु कृष्ण खोह के भीतर चले गये। वहाँ राजा मुचुकुन्द सो रहे थे। कालयवन ने समझा कि कृष्ण ओढ़ कर सो रहे हैं। बस, उसने लात मारी तो मुचुकुन्द चौंककर उठ बैठा। आँख खोलते ही उसकी दृष्टि कालयवन पर पड़ी और वह जलकर राख का ढेर हो गया। युद्धभूमि से युक्तिपूर्वक भागने के कारण कृष्णजी द्वारका में "रणछोड़" कहलाने लगे।

कालिय, गरुड़

गोकुल में श्रीकृष्ण अनेक लीलाएँ करते थे। एक दिन ग्वालबालों के साथ वे यमुना तट पर गये। गर्मियों के दिन थे। प्यासे गोपों और गौओं ने यमुना का जल पिया, तो सब मूर्च्छित हो तट पर गिर पड़े। कृष्णजी समझ गये कि महाविषधर कालिय नाग ने यमुना का जल विषैला कर दिया है, अतएव उन्होंने ग्वालबालों तथा गौओं की परिचर्या कर उन्हें जीवित कर दिया। फिर उन्होंने कद्रु के पुत्र कालिय नाग को मारना चाहा। वे एक ऊँचे कदम्ब-वृक्ष से विषैले जल मे कूद पडे।

कालिय नाग के कुंड का पानी विष की गर्मी से खौल रहा था; किन्तु श्रीकृष्ण मतवाले गज के समान नागपाश मे चले गये। नाग का बंधन खोलकर श्रीकृष्ण क्षण भर मे बाहर निकल आये, तो नाग अपने फन फैलाकर फुफकारें मारने लगा।

कालिय नाग के एक सौ एक सिर थे। वह जिस सिर को ऊपर उठाता था, उसी सिर पर सवार हो श्रीकृष्ण अपने पैर की ठोकर से नीचे कुचल डालते थे। रौंदते-रौंदते श्रीकृष्ण ने उसका अंग चूर-चूर कर डाला।

अपने पति की यह दशा देखकर, नाग-पत्नियाँ भगवान् की शरण मे जाकर क्षमा माँगने लगीं। मूर्च्छित कालिय नाग भी होश मे आकर

कहने लगा—'मैं जन्म से क्रोधी हूँ, अतएव आपको पहचाना नहीं। अब आप जो चाहे, मुझे दंड दें।' भगवान् ने कहा—'तू अब सकुटुम्ब यहाँ से समुद्र में चला जा। तू गरुड़ के भय से रमणक द्वीप छोड़कर इस दह में आ बसा था। अब तेरा शरीर मेरे चरण-चिह्नों से अंकित



कालिय

हो गया है, इसलिए अब तुझे गरुड़ नहीं खायेंगे।' इस प्रकार यमुना का जल छोड़, कालिय रमणक द्वीप के समुद्र मे चला गया और यमुना का जल फिर अमृत के समान मधुर हो गया। कालिय नाग 'कालनेमि' राक्षस का अवतार था।

कालिन्दी

कालिन्दी कृष्ण की एक पत्नी थी। द्रौपदी के विवाह के उपरान्त एक दिन श्रीकृष्ण पाडवों से मिलने के लिए हस्तिनापुर गये। वहाँ कुछ दिन रहकर अर्जुन के साथ वन में मृगया के लिए गये। वहाँ प्यास लगी तो घूमते-घूमते यमुना के किनारे पहुँचे। वहीं भगवान् को एक परम सुन्दरी कन्या तपस्या करती हुई दिखलाई पड़ी।

श्रीकृष्ण ने उसका हाल जानने के लिए अर्जुन को भेजा। अर्जुन ने निकट जाकर उस कन्या का परिचय पूछा, तो ज्ञात हुआ कि वह सूर्य नारायण की पुत्री है। नाम उसका कालिन्दी है। भगवान् विष्णु को पतिरूप में पाने की कामना से वह तप कर रही थी। इतना सुनते ही श्रीकृष्ण कालिन्दी के पास गये और उसे रथ मे बैठाकर हस्तिनापुर लौट गये। वहीं शुभ मुहूर्त्त में कालिन्दी के साथ श्रीकृष्ण का विवाह हो गया। कालिन्दी यमुना नदी का भी नाम है।

किर्मीर

किर्मीर वक नामक राक्षस का भाई था। पाडव लोग जब जुए में हारकर काम्यक वन में पहुँचे, तो उन्होंने भयकर किर्मीर को भीषण गर्जना करके वन के मार्ग को रोकते देखा। उसने पाडवों से कहा—'मैं तुम लोगों को युद्ध मे हराकर तुम्हारा मास खाऊँगा। भीमसेन कौन है, जिन्होंने मेरे परम मित्र हिडिम्ब और भाई 'वक' को मार डाला है?'

भीमसेन झटपट एक वृक्ष उखाड़कर किर्मीर से लड़ने को तत्पर हो गये। द्रौपदी के अपमान से भीमसेन तो पहले ही कुपित थे। उन्होंने सारा क्रोध किर्मीर पर उतारा। थोड़ी ही देर में भीमसेन ने उसको गला दवाकर यमलोक भेज दिया। राक्षसों की मृत्यु से वनवासी तपस्वी वहुत प्रसन्न हुए। अव पाँचों पाडव काम्यक वन से द्वैतवन की ओर चले गये।

किरात, मूक, अर्जुन, सव्यसाची, पाशुपतास्त्र

वेदव्यास ने वनवास के समय पांडवों को बताया कि नारायण का सहचर महातपस्वी ऋषि 'नर' वीर अर्जुन ही है। वृत्रासुर के भय से देवताओं ने अपने सब अस्त्रों का बल इन्द्र को सौंप दिया है, इसलिए अर्जुन को इन्द्र के पास भेजो। यह सलाह मानकर अर्जुन उत्तर दिशा में "गन्धमादन" पर्वत पर जाकर तप करने लगे।

इन्द्र ने उन्हें दर्शन देकर कहा—'जब तुम्हें भगवान् शंकर के दर्शन होंगे, तब मै तुम्हे दिव्य अस्त्र दूँगा।'

मनस्वी अर्जुन ने कठिन तपस्या कर शंकर को भी प्रसन्न किया। तब शिव ने किरात (भील) का रूप धारण किया और देखा कि "मूक" नामक दैत्य शूकर बनकर तपस्वी अर्जुन को मार डालने की घात में है। अर्जुन अपना बाण छोड़ना ही चाहते थे कि भील ने कहा—'तुम इसे मत मारो। यह मेरा लक्ष्य है।' पर अर्जुन ने ध्यान नहीं दिया। तब दोनों के बाण एक साथ शूकर के शरीर पर जाकर टकराये। 'मूक' का शरीर विंध गया और वह राक्षस का रूप प्रकट कर मर गया। अब अर्जुन और भील मे विवाद होने लगा।

भील ने कहा—'तुम्हे अपनी शक्ति का बहुत गर्व है, तो मुझ पर बाण चलाओ।'

अर्जुन क्रोध मे आगबबूला हो, भील पर बाण-वर्षा करने लगे। तब भील-वेशधारी शंकर हँसकर कहने लगे—'बस।' अर्जुन के बाण समाप्त हो गये, तलवार टूट गई। इस दशा में घूँशा मारा तो होश हवा हो गये। तब भील ने जो उन्हे पकडा, तो अर्जुन मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

अर्जुन को जब होश आया, तो उन्होंने भगवान् शंकर की लिंग-मूर्ति की स्थापना की और उनके शरणागत हो, पूजा करने लगे। अर्जुन ने देखा कि जो पुष्प वे मूर्ति पर चढ़ाते थे, वे भील के सिर पर आ जाते थे। घायल अर्जुन विस्मित होकर भील को देखने लगे। तब शिव प्रकट हो गये और प्रसन्न होकर उन्होंने अर्जुन को पाशुपतास्त्र दे

दिया। अर्जुन ने उनके चरणों में गिरकर क्षमा-याचना की। इन्द्र आदि देवताओं ने भी उन्हें अस्त्र दिये। यमराज ने 'दण्ड' दिया, वरुण ने 'वारुण-पाश' दिया। कुबेर ने 'अन्तर्धान' नामक अनुपम अस्त्र दिया। फिर इन्द्र से अस्त्रविद्या सीखकर उन्हे अपना गुरु बनाया।

अर्जुन दाहिने हाथ से जैसे तीर चला सकते थे, वैसे ही बाँयें हाथ से भी। इसलिए उन्हे लोग "सव्यसाची" कहते थे।

अर्जुन के पर्य्यायवाची शब्द—फाल्गुन, जिष्णु, किरीटी, बृहन्नल, धनंजय, कपिध्वज, गुडाकेश, सव्यसाची, गांडीवी, ऐन्द्रि, पार्थ, पाण्डुनन्दन।

कुम्भकर्ण, मेघनाद (इन्द्रजित), लक्ष्मण, जयन्त, सुषेण, शची

राम-रावण-युद्ध में रावण के बहुत-से सैनिक मारे गये, तो उसने अपने शूरवीर बेटे मेघनाद को युद्धभूमि में भेजा। उसने अपने तीक्ष्ण बाणों से बहुत-से बन्दरों को मार गिराया। यह देख, लक्ष्मण को क्रोध आ गया। वे मेघनाद की ओर आये। दोनों महावीरों में भयंकर युद्ध होने लगा। दोनों ही वीर योद्धा थे।

बाण-वर्षा से घबराकर मेघनाद ने अपनी वीरघातिनी "शक्ति" मारी। वह शक्ति लक्ष्मण के वक्ष को पार कर धरती में धँस गई। लक्ष्मण तत्क्षण मूर्च्छित हो गिर पड़े।

राम ने भाई को अचेत देख, हनुमान से कहा कि लंका के सुषेण वैद्य को बुला लाओ। हनुमान सुषेण को, उसके मकान-सहित, उठा लाये। सुषेण ने हिमालय पर्वत की एक बूटी बताई। परन्तु रात भर मे उसे हनुमान के अतिरिक्त कौन लाता? हनुमान जड़ीवाले पर्वत को ही उठा लाये। सजीवनी बूटी सुँघाते ही लक्ष्मण ऐसे उठ खड़े हुए, मानो सोकर उठे हों।

दूसरे दिन रावण ने बड़ी कठिनाई से अपने भाई कुंभकर्ण को जगाकर एक बहुत बड़ी सेना के साथ राम से लड़ने भेजा। कुंभकर्ण ने, रावण के साथ तप कर, ब्रह्मा से वरदान प्राप्त किया था कि मैं अनेकानेक

वर्षों तक सोता रहूँ। वह छः महीने सोता था और एक दिन जागता था। खा-पीकर फिर सो जाता था। रावण ने जब उसे कच्ची नींद से उठाया, तो राम-लक्ष्मण की बातें सुन, क्रोध कर, रणभूमि मे जाने को तैयार हो गया।

कुंभकर्ण ने युद्ध करते-करते सुग्रीव को पटक दिया और उन्हें, मूर्च्छित देख, उठाकर ले चला। भुजाओं मे दवे हुए सुग्रीव ने कुंभकर्ण के नाक-कान अपने दाँतों से काट डाले। जब वह तड़पने लगा, तो भाग निकले।

अब नाक-कान से हीन कुंभकर्ण अति भयंकर रूप धारण कर लक्ष्मण-राम से युद्ध करने दौड़ा; किन्तु रामचन्द्र ने एक बाण से उसका मस्तक काटकर धड से अलग कर दिया। तब रावण ने दुःखी होकर अपने बड़े बेटे मेघनाद को फिर लड़ने के लिए भेजा।

मेघनाद ने जन्मते ही, रोते समय, मेघ के समान गंभीर नाद किया था, इससे उसका नाम मेघनाद रक्खा गया था। उसने एक बार अपने पिता रावण के बल का गर्व कर देवताओं की सेना पर धावा कर दिया था। इन्द्र का पुत्र शचीकुमार जयन्त उससे युद्ध करने निकला, तो दोनों मे भयंकर युद्ध होने लगा। इसी बीच परमपराक्रमी "प्रलोमा" नामक दैत्यराज युद्धभूमि मे आया और शची के पुत्र जयन्त को पकड़कर युद्धभूमि से दूर हटा ले चला। वह शची का पिता और जयन्त का नाना था। अपने दौहित्र को लेकर वह समुद्र मे घुस गया। तब पुत्र को न देखकर इन्द्र युद्ध के लिए निकले। दोनों मे भयंकर युद्ध हुआ और रावण की सेना बाणों की वर्षा से ढक गई। रावण को इन्द्र के चंगुल मे फँसा देख, उसका पुत्र मेघनाद दौड़ा आया। वह इन्द्र को हराकर, अपने रथ मे बैठाकर, लंकापुरी ले चला। तभी ब्रह्मा ने मार्ग मे उसका रथ रोककर कहा—बेटा रावण, तुम्हारे पुत्र की वीरता देख मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। यह बालक अब "इन्द्रजित" के नाम से संसार में प्रसिद्ध होगा। अब इन्द्र को छोड़ दो, पर मेघनाद ने एक शर्त रखी कि अग्निदेव से मुझे ऐसा दिव्य रथ मिले कि जब तक मैं उस पर बैठूँ, मुझे कोई मार न सके।

मेघनाद जब राम-लक्ष्मण से लड़ने आया, तो रामचन्द्र ने अ तीक्ष्ण बाणों से उसके सारथी को मार डाला और उसका दिव्य चूर-चूर कर डाला। तभी लक्ष्मण ने अग्नि के समान दाहक बा से इन्द्रजित पर प्रहार कर दिया, जिससे उसके प्राणपखेरू उड़ गये।

कुबरी-कुब्जा

धनुषयज्ञ तथा दंगल के उत्सव के बहाने जब कृष्ण और बलर अक्रूर के साथ मथुरा पहुँचे, तो उन्हें कंस की दासी कुब्जा मिल



कुब्जा

वह रूपवती, किन्तु कुबड़ी थी। कुब्जा कृष्ण के सुन्दर रूप को देख उन पर रीझ गई। वह बोली—'मैं महाराज कंस की दासी हूँ।

को उवटन लगाती हूँ, तेल मलती हूँ और चन्दन से वेलवूटे वना भाँति-भाँति के तिलक लगाती हूँ। आज मैं आपकी सेवा भी करना चाहती हूँ।' ऐसा कह कुब्जा ने कृष्ण के मस्तक पर केसरिया चन्दन का तिलक और शरीर में चन्दन के तरह-तरह के चित्र बना दिये। वलराम को भी इसी प्रकार चन्दन से शृंगार किया।

भगवान् उस पर वहुत प्रसन्न हुए। कृष्ण ने उसको अपने दर्शन और सेवा का फल तुरन्त दे दिया। उन्होंने कुब्जा के दोनों पैरों को अपने पैरों से दबाकर, उसकी ठोढ़ी में हाथ लगाकर, ऐसा झटका दिया कि वह एकदम सीधी हो गई। इस प्रकार कुवरी-कुब्जा का कुवड़ापन दूर हो गया और वह फिर सुन्दरी हो गई।

कुवलयापीड़, चाणूर, मुष्टिक, कूट-शल, धनुष-यज्ञ, तोशल

भगवान् श्रीकृष्ण जव कंस का निमंत्रण पाकर, अक्रूर के साथ, मथुरा में धनुष-यज्ञ का उत्सव और दंगल देखने के लिए गये, तो कंस ने कुवलयापीड़ हाथी के महावत को वुलाया और कहा—'तुम दंगल के फाटक पर हाथी को लेकर खड़े रहना। जव कृष्ण और वलराम आने लगें, तव उन्हें कुचल देना।' इसी प्रकार कंस ने चाणूर और मुष्टिक पहलवानों से कहा कि मैंने कृष्ण और वलराम को तुम्हारी कुश्ती देखने को मथुरा वुलाया है। यदि दैवयोग से वे कुवलयापीड़ हाथी से वच जायँ, तो तुम लोग उनको अपने दाँव-पेच से मार डालना।

कृष्ण और वलराम जव मथुरा पहुँचे तो उन्होंने धनुष देखने की इच्छा से रंगशाला में प्रवेश किया। धनुष को देखते ही कृष्ण ने उसे वायें हाथ से उठा लिया और इतने जोर से खींचा कि उसके वीच से दो टुकड़े हो गये। अव पहरेदार तथा अन्य असुर दोनों भाइयों को मारने दौड़े, तो उन्होंने धनुष के टुकड़ों से ही कंस की भेजी सेना का संहार कर डाला।

कंस ने दूसरे दिन दंगल का महोत्सव कराया। चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि प्रधान पहलवानों की कुश्ती थी। कृष्ण-बलराम ने पहुँचकर देखा कि रंगभूमि के द्वार पर कुवलयापीड़ हाथी खड़ा है। वह मस्त हाथी अंकुश की मार से क्रोधित हो उनकी ओर बढ़ा। उसने कृष्ण को तेजी से सूँड़ मे लपेट लिया; परन्तु भगवान्



कुवलयापीड़

पतले बनकर सूँड़ से शीघ्र सटक आये और फिर घूँसा मारकर हाथी के अगले पैरों मे छिप गये। हाथी खीझ उठा, पर कृष्ण बड़ी देर तक उससे खेल करते रहे। अन्त में सूँड़ पकड़कर ऐसा झटका दिया कि उसके दोनो दाँत उखड़ गये और वह कृष्ण के हाथ से मारा गया।

रंगभूमि में ज्यों ही वे पहुँचे, चाणूर ने कहा कि तुम दोनों बहुत वीर हो। तुमने कुवलयापीड़ को मार डाला है। आओ, अब हमसे लड़ो तो तुम्हारा पराक्रम जानें।

कृष्ण और बलराम फौरन अखाड़े मे कूद पड़े और कृष्ण तो चाणूर से और बलराम मुष्टिक से भिड़ गये। थोड़ी ही देर में चाणूर और मुष्टिक



चाणूर और मुष्टिक

धराशायी हो मर गये। इसके बाद कूट, शल और तोशल पहलवान भी लडे, पर अन्त मे मारे गये। कंस के अतिरिक्त सभी दर्शक उन दोनो वीरों की मल्लक्रीड़ा देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

कुबेर, चित्ररथ, नलकूबर, लंकापुरी

कुबेर एक देवता थे, जो इन्द्र की नौ निधियों के भंडारी, धनाध्यक्ष और महादेव के मित्र समझे जाते थे। वे विश्रवस् ऋषि के पु और रावण के सौतेले भाई थे। इनकी माता का नाम इळविळा था कहते हैं, इन्होंने विश्वकर्मा से "लंकापुरी" बनवाई थी। पर जब राव ने इन्हें वहाँ से निकाल दिया, तब तपस्या करने पर ब्रह्मा इन्हें देवता बनाकर उत्तर दिशा का राज्य दे दिया और इन्द्र का कोषा ध्यक्ष बना दिया।

कुबेर समस्त संसार के धन के स्वामी माने जाते हैं। ये बड़े कुरू थे। इनके एक आँख, तीन पैर और आठ दाँत थे। किन्तु देवता होने प भी इनका पूजन कहीं नहीं होता।

चित्ररथ नामक एक गन्धर्वराज, जो कश्यप और दक्षकन्या मुनि के पुत्र थे, इनके परम सखा माने जाते हैं। चित्ररथ ने कुबेर का बाग बनाय था, अतएव कुबेर का बाग 'चैत्ररथ' कहलाता है। इसके पुत्र का नाम नलकूबर था।

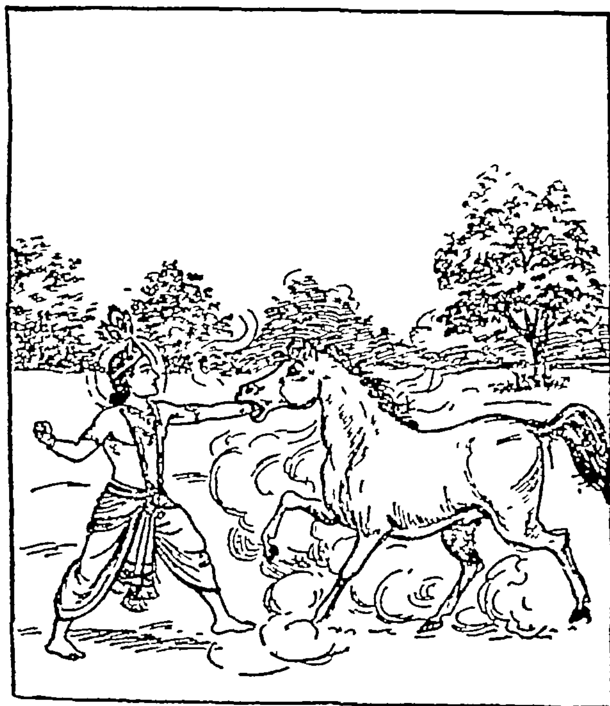
एक दिन नलकूबर के निकट जाती हुई "रंभा" अप्सरा को दिग्विजयी रावण ने बलपूर्वक पकड़ लिया था, तब उसी समय नलकूब ने रावण को शाप दिया कि किसी स्त्री के साथ बलात्कार करोगे, तो तुरत मर जाओगे। ये नलकूबर ही नारद के शाप से यमलार्जुन हुए जिन्हें श्रीकृष्ण ने शापमुक्त किया था।

कुबेर के अनुचरगण, जो कुबेर के कोष की रक्षा करते थे, यक्ष कहलाते थे। यक्ष राक्षसों से श्रेष्ठ और देवताओं से निम्न माने जाते थे। किन्नरगण भी कैलाश पर स्थित अलकापुरी में रहते थे। इनका समस्त शरीर तो मनुष्यों-जैसा होता था, पर मुँह घोड़े की तरह होता था। गधर्वों के समान किन्नरगण भी संगीत में निपुण होते थे। किन्नर गंधर्व और यक्ष लोग देवताओं के समान ही माने जाते थे।

कुबेर के पर्य्यायवाची शब्द—यक्षराज, किन्नरेश, धनद, धनाधिप, हर्य्यक्ष, त्र्यंबकसखा, श्रीद, अलकाधिप, एकपिंग, एकाक्ष, ऐलविल, नरवाहन।

केशी

व्रज-भूमि में नन्द-यशोदा के पुत्र श्रीकृष्ण की शक्ति का वृत्तान्त सुन कंस भयभीत होकर अनेक राक्षसों को उन्हे मारने के लिए भेजने लगा। परंतु जिस राक्षस को वह कृष्ण की हत्या के लिए भेजता था, उसी को



केशी

कृष्ण बड़ी आसानी से मार डालते थे। बहुत भयभीत होकर उसने केशी नाम के एक राक्षस को वृन्दावन भेजा। वह बड़े भयानक घोड़े

के रूप में गया। ब्रज में जाकर वह ऊधम करने लगा। वह टापों की चोट से धरती को खोदता और घनघोर मेघ-गर्जन के समान हिनहिनाता। गोकुल के गोप-ग्वाल, पशु-पक्षी सब डरकर भागने लगे।

उस असुर के घोर उपद्रव को देख कृष्ण ने उसे मारने के लिए अपना हाथ उसके मुँह में ठूँस दिया। वह जब कृष्ण के हाथ को निगलने लगा, तो वह हाथ धीरे-धीरे मोटा होने लगा। थोड़ी देर में वह इतना मोटा हो गया कि राक्षस का मुँह फटने लगा। शीघ्र ही राक्षस का दम घुटने लगा। उसका शरीर फट गया और वह तड़प-तड़पकर मर गया। केशी की मृत्यु देखकर ब्रजवासी बड़े प्रसन्न हुए।

कैकेयी, दशरथ

कैकेयी केकय देश की राजकुमारी और राजा दशरथ की सबसे प्रिय रानी थी। एक बार देवताओं की ओर से दशरथ दैत्यों से युद्ध कर रहे थे। जब वे दैत्यों से युद्ध करने मे तन्मय थे, तो अकस्मात् उनके रथ की धुरी टूट गई। यदि एक क्षण का भी विलम्ब हो जाता, तो दशरथ गिर पड़ते, परन्तु भाग्यवश रथ पर कैकेयी भी थी। उसने तुरन्त धुरी के स्थान पर अपना हाथ लगाकर उन्हे गिरने से बचा लिया।

दशरथ जब असुरों को हरा चुके, तो उनका ध्यान कैकेयी के हाथ की ओर गया। कैकेयी की शक्ति, साहस और प्रेम को देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कैकेयी से कहा—तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँगो। कैकेयी के वर न माँगने पर भी उन्होंने एक वर दिया। कैकेयी ने कहा कि अच्छा, जब चाहूँगी माँग लूँगी।

एक बार राजा दशरथ को कोई भयंकर रोग हो गया। कैकेयी ने उनकी बहुत सेवा की। उसके प्रयत्न और परिचर्या से राजा दशरथ जब स्वस्थ हो गये, तो उन्होंने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया। वह

वरदान भी कैकेयी ने दशरथ पर उधार रखा। इस प्रकार दो वरदान हो गये।

कैकेयी की दासी मंथरा ने जब राम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ देखीं, तो उसने कैकेयी के खूब कान भरे और राजा से दोनों वरदान माँगने के लिए उसे उकसाया।



कोपभवन में कैकेयी तथा दशरथ

कैकेयी कोपभवन में जाकर राजा से रूठ गई। राजा दशरथ ने जब बहुत मनाया, तब उसने एक वरदान से तो श्रीराम को चौदह वर्ष का वनवास और दूसरे से भरत का राज्याभिषेक माँगा। दशरथ यह सुनते ही मूर्च्छित हो गये और राम, लक्ष्मण तथा सीता के वन चले जाने पर इतने दुःखी हुए कि, अंध तापस के शाप से, पुत्र-वियोग में उनकी मृत्यु हो गई।

गार्गी, याज्ञवल्क्य

भारत की विदुषी नारियों में ब्रह्मवादिनी गार्गी का नाम बहुत प्रसिद्ध है। गर्ग गोत्र में उत्पन्न होने के कारण इस बुद्धिमती बालिका का नाम गार्गी पड़ गया था।

राजा जनक ने एक बार यज्ञ किया, जिसमें देश-विदेश के विद्वान् ब्राह्मण एकत्र हुए। उन्होंने एक हजार गायें लेकर, उनके सींग सोने से मढ़वाकर, यह घोषित किया कि जो सबसे अधिक ब्रह्मवेत्ता हो, वह स्वयं आकर इन गायों को ले जाय।

शास्त्रार्थ के भय से किसी ब्राह्मण का साहस न हुआ कि जाकर गायें ले जाय। सबको मौन देख, याज्ञवल्क्य मुनि ने अपने शिष्य से कहा कि गायें ले चलो। इस पर अन्य सब ब्राह्मण याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हो गये। अनेक मुनियों ने आकर शास्त्रार्थ किया पर हारकर चुप बैठ गये। तब परम विदुषी गार्गी ने भी याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की।

गार्गी ने उनसे अनेक प्रश्न किये और उनके उत्तर पाकर सन्तुष्ट हो उपस्थित ब्राह्मणों से बोली कि ब्रह्म-संबंधी विवाद मे याज्ञवल्क्य को कोई नहीं हरा सकता।

गार्गी और याज्ञवल्क्य के ज्ञान और तेज को देखकर सब लोग चकित हो गये।

गज, ग्राह, अगस्त्य, हूहू, इन्द्रद्युम्न

त्रिकूट पर्वत पर एक बहुत बड़ा सरोवर था। उसके पानी में अनेक हाथी जल-विहार करने को जाते थे। एक बार एक गजराज उस झील में जाकर जल-विहार करने लगा। उस झील के भीतर एक बड़ा भारी महाबली ग्राह रहता था। उसने अचानक जाकर गज का पैर पकड़ लिया। अब दोनों मे खींचातानी होने लगी। बहुत समय तक दोनों मे युद्ध होता रहा। अन्त में गजराज का बल और उत्साह घट चला।

हताश होकर गजराज ने जब अपने बचने का कोई उपाय न देखा तब वह भगवान् का स्मरण कर पूर्व जन्म के प्रभाव से स्तुति करने लगा। अपने भक्त गजराज की पुकार सुनकर भगवान् उसे उबारने के लिए नंगे पैरों ही दौड़ पड़े। जल्दी से गरुड़ ने जाकर उन्हे अपने कंधे पर बैठा लिया

दूर से भगवान् को आते देखा, तो गजराज के आनन्द का ठिकाना न रहा। उसने सरोवर से एक कमल का फूल तोड़ा और सूंड़ में लेकर भगवान् को अर्पित किया। भगवान् ने गजेन्द्र तथा ग्राह दोनों का उद्धार किया। गजराज तो भगवान् का पार्षद हो गया और ग्राह गंधर्व-लोक मे चला गया। वास्तव मे दोनों ही शाप से इस योनि में उत्पन्न हुए थे।

ग्राह पहले जन्म में हूहू नाम का एक गन्धर्व था। देवल ऋृषि के शाप से उसे ग्राह की योनि मिली थी। भगवान् के सुदर्शन चक्र से मस्तक कटते ही वह अपने लोक मे चला गया।

गज पहले पांड्य देश का इन्द्रद्युम्न नाम का राजा था। वह बड़ा ज्ञानी और भक्त था। वह कुलाचल पर्वत पर आश्रम बनाकर भजन करता था। वह एक दिन मौनव्रत धारण किये, समाधि लगाये, हरि का ध्यान कर रहा था। इतने में अगस्त्य ऋृषि वहाँ पहुँचे, पर समाधि के कारण उसे ऋृषि के आने की खबर न हुई। राजा को चुपचाप बैठे देख, अगस्त्य ने अपना अपमान समझा और वे शाप देकर चले गये कि हे घमंडी राजा, तू हाथी हो जा। भगवान् की भक्ति से राजा का ज्ञान बना रहा और हाथी होकर भी वह भगवान् की स्तुति कर सका।

गज के पर्य्यायवाची शब्द—हाथी, द्विप, करी, कुञ्जर, दन्ती, सिन्धुर, कुम्भी, द्विरद, मतंग, वितुंड, वारण।

काकभुशुंडि, गरुड़-वैनतेय-मदभंजन

कश्यप मुनि ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के पुत्र थे। इनकी एक पत्नी का नाम विनता था, जिससे पक्षी उत्पन्न हुए। इन्हीं के पुत्र का नाम गरुड़ था। वे इतने पराक्रमी थे कि विष्णु ने उन्हे अपना वाहन बनाया था। उन्होंने बड़े-बड़े दैत्यों और नागों को परास्त किया था।

एक बार मुनि काकभुशुंडि ने जो लोमश ऋृषि के शाप से कौआ हो गये थे, चपलतावश भगवान् राम के हाथ से रोटी छीन ली। इस पर गरुड़

ने उनका पीछा किया। दोनों में घोर युद्ध हुआ। काकभुशुंडि पराजित हुए, तो गरुड़ को बड़ा अभिमान हो गया; लेकिन भगवान् मदभंजक हैं। उन्होंने गरुड़ को काकभुशुंडि रूपी कौए के पास ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजा और गरुड़ को बहुत उपदेश दिया। इन उपदेशों का संग्रह 'गरुड़ पुराण' के नाम से प्रसिद्ध है। शिव ने काकभुशुंडि से सर्वप्रथम रामकथा सुनी थी।

एक बार विष्णु भगवान् ने गरुड़ को हनुमान के बुलाने की आज्ञा दी। सन्देश पाकर हनुमान ने गरुड़ से कह दिया—'आप चलिए, मैं पीछे-पीछे आता हूँ।' पर गरुड़ ने जब अपनी गति का गर्व किया, तो हनुमान ने कहा—'घबराइए नहीं; आपसे पहले ही पहुँचूँगा।'

गरुड़ शीघ्र गति से भगवान् के पास पहुँचे, तो देखते क्या हैं कि वहाँ हनुमान पहले से ही बैठे हैं। इससे गरुड़ का सारा घमंड मिट्टी में मिल गया।

गरुड़ की माता विनता "सुपर्णी" भी कहलाती थी। इससे गरुड़ का नाम सुपर्णेय या "वैनतेय" भी है। सर्पों के लिए अमृत लाते समय गरुड़ को इन्द्र ने अपने वज्र से मारा; किंतु पराक्रमी गरुड़ का बाल भी बाँका नहीं हुआ। तभी गरुड़ ने अपना एक पख गिराकर कहा कि जिस महापुरुष की हड्डियों से तेरा वज्र बना है, उनके सम्मान में मै एक पंख गिराता हूँ। इस पर प्रसन्न होकर, इन्द्र ने गरुड़ से मित्रता कर ली थी।

एक बार कश्यप मुनि यज्ञ कर रहे थे। सब मुनिगण और देवता आदि उनके लिए सामग्री एकत्र करने गये। यज्ञ के लिए लकड़ियों की आवश्यकता थी। इन्द्र ने थोड़े ही काल मे लकड़ियाँ एकत्र कर दीं। उसी समय इन्द्र ने देखा कि अँगूठे के बराबर बड़े बालखिल्यगण भी एक टहनी घसीटने मे बड़ा परिश्रम कर रहे हैं। उन बालखिल्य ऋषियों पर इन्द्र हँसने लगा। तब उन मुनियों ने कुपित होकर कहा कि कश्यप मुनि का जो पुत्र होगा, उसे हम इन्द्र बनायेंगे। कश्यप मुनि ने समझाया कि तुम्हारे वचनों से मुझे अब जो पुत्र होगा, वह पक्षियों का इन्द्र होगा। तब कश्यप की पत्नी विनता के गरुड़ और अरुण दो पुत्र हुए।

गरुड के पर्य्यायवाची शब्द—तार्क्ष्य, वैनतेय, सुपर्ण, नागान्तक, रस्वी, अमृताहरण, पक्षिराज, पन्नगारि, शाल्मलिस्थ।

गणिका—पिंगला, जीवन्ती

पिंगला नाम की एक गणिका (वेश्या) थी। एक बार जब आधी रात तक उसका प्रेमी न आया, तो वह शृंगार किये घंटों उसकी राह देखती रही। अन्त में जब वह न आया, तो उसे बड़ी ग्लानि हुई। वह मन में कहने लगी कि जितनी देर तक मैं इसकी राह देखती रही, उतनी देर तक यदि भगवद्भजन करती, तो मेरा उद्धार ही हो जाता। यह विचार कर उसी दिन से उसने वेश्या-वृत्ति छोड़ दी और सच्चे हृदय से राम-नाम जपने लगी। अन्त में भगवत्कृपा से वह मुक्त हो गई।

एक गणिका जीवन्ती नाम की थी। उसने एक तोता पाल रखा था। वह उसे बहुत प्यार करती थी। एक बार अकस्मात् एक महात्मा उसके घर भिक्षा माँगने गये। उन्होंने वेश्या का तोते से इतना प्रेम देखकर उससे कहा कि इसे 'राम-राम' पढ़ाया करो। वह बोलने लगगा। इस गणिका को तोते के मुख से "राम-राम" शब्द सुनने की ऐसी इच्छा हुई कि जब कभी अवकाश मिलता, उसके सामने "राम-राम" कहने लगती। राम-नाम के प्रभाव से अनजाने में ही भगवान् का नाम लेने से फल यह हुआ कि मृत्यु-समय भी अभ्यासवश वह "राम-राम" कहती रही, जिससे भवसागर से पार हो गई।

गणेश, शनि, एकदन्त

हिन्दुओं के एक प्रधान देवता का सारा शरीर मनुष्य का-सा है, पर सिर हाथी का-सा है। ये भगवान् शंकर के पुत्र हैं। इनके जन्म का समाचार सुन सभी देवता इन्हें देखने गये। सूर्य के पुत्र, क्रूर दृष्टिवाले शनैश्चर इन पर अपनी कुदृष्टि नहीं डालना चाहते थे; परन्तु पार्वती के बहुत कहने

पर अपनी आँख की कोर से उन्होंने इन्हें देख लिया, जिससे गणेश का सिर धड़ से अलग हो गया। इस पर पार्वती रोते-रोते मूर्च्छित हो गई। उन्होंने शनि को शाप दे दिया। उनके शाप से शनि लँगड़ा हो गया। फिर विष्णु भगवान् ने पुष्पभद्रा नदी के तट पर उत्तर की ओर सिर करके सोये हुए गजेन्द्र का मस्तक सुदर्शन चक्र से काट लिया और उसे गणेश के धड़ से जोड़कर उन्हें जीवित कर दिया।



गणेशजी

गणेश जब बालक थे, तब उन्हे दरवाजे पर बैठाकर शिव-पार्वती अन्तःपुर में व्यस्त थे कि परशुराम आ गये। गणेश ने उन्हे अन्दर जाने से रोका। दोनों में लड़ाई हुई, जिससे गणेश का एक दाँत टूट गया। तब से वे "एकदन्त" कहलाये।

एक पुराण के अनुसार एक बार पार्वती ने स्नान करते समय उबटन और शरीर के मैल से एक पुतला बनाकर द्वार पर रक्षक-रूप में बैठा दिया, जिससे स्नान करते समय भीतर शिव न जा सकें। संयोग से जब शिव गये और प्रवेश करने लगे, तो उस पुतले ने उन्हें रोका। तब शिव ने क्रोध में आ उसके सिर को काट डाला। पार्वती जब स्नान करके लौटीं, तो अपने पुत्र के वध पर विलाप करने लगीं। यह देख शिव ने एक हाथी के बच्चे का मस्तक काटकर उस बच्चे को जीवित कर दिया। वह बालक गणेश नाम से प्रसिद्ध हुआ।

एक बार देवताओं से ब्रह्मा ने पूछा कि तुम सब में पहले पूजने योग्य कौन है। इस पर देवता लोग आपस में हुज्जत करने लगे कि पहले हमारी पूजा होना चाहिए। फिर सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि जो संपूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा सबसे पहले कर आये, उसी की पूजा सबसे पहले हो। सब देवता अपने-अपने वाहन पर चढ़कर चल पड़े। विष्णु गरुड़ पर, ब्रह्मा हंस पर, शिव बैल पर, इन्द्र ऐरावत पर और कार्त्तिकेय मयूर पर। गणेश क्या करते, उनका

वाहन तो था चूहा। वे बड़े चिन्तित हुए। तभी नारद आये और कहा—'भगवान् के नाम से ही विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है। तुम राम-नाम लिखकर उसकी अथवा अपने माता-पिता शिव-पार्वती की परिक्रमा कर लो। बस, सारी पृथ्वी की परिक्रमा हो जायगी।' गणेश ने झटपट राम नाम लिखकर उसकी परिक्रमा कर ली।

सब देवता जब लौटे तब उन्होंने देखा कि गणेश सबसे ऊँचे आसन पर विराजमान हैं। तब राम-नाम की महिमा जानकर सबने उन्हे सर्वपूज्य स्वीकार कर लिया। उस समय से गणेश की सर्वप्रथम पूजा होने लगी। पार्वती के पुत्र होने पर भी ये परमात्मा के ही रूप समझे जाते हैं। इनकी गणना पंचदेवों में की जाती है। गणेश शिव के रुद्रगणों के अधि-पति माने जाते हैं, अतः गणपति भगवान् की प्रथम पूजा करने से कार्य निर्विघ्न समाप्त होता है। भगवान् गणपति सभी आराधनाओं एवं मंगल कार्यों मे प्रथम पूज्य माने गये हैं। इनके हाथों में सदैव पाश, अंकुश, पद्म और परशु रहता है।

गणेश के पर्यायवाची शब्द—विनायक, परशुपाणि, आखुग, गजानन, शूर्प-कर्ण, गणपति, एकदन्त, गणाधिप, हेरंब, लंबोदर, विघ्नेश, गौरीसुत, मूषकवाहन, विद्यावारिधि, मोदक-प्रिय, गिरिजानन्दन, विघ्नराज।

शनि के पर्य्यायवाची शब्द—मन्द, अर्कि, सौर्य, कोण, शनैश्चर।

गंगा, शान्तनु, देवव्रत

एक समय देवता और ब्रह्मा देवसभा मे बैठे हुए थे कि गंगा नदी स्त्री के रूप में वहाँ गई। पवन के वेग से गगा के शरीर से वस्त्र उड़ गया। सब देवता तो सिर झुकाकर बैठे रहे; किन्तु एक राजर्षि जो अनेक यज्ञों के उपरान्त स्वर्ग पहुँचे थे, गंगा को बिना किसी संकोच के देखते रहे। तब ब्रह्मा मे उस अशिष्ट राजर्षि को शाप दिया कि तुम यहाँ रहने योग्य नहीं। पुनः पृथ्वी पर जाकर जन्म लो। गंगा को भी पृथ्वी पर जाना

पड़ेगा। वह जब तुम्हारा अप्रिय करेगी, तब तुम उस पर क्रोध करोगे। तभी तुम शाप से मुक्त हो सकोगे।

गंगा शापवश जब ब्रह्मलोक से जा रही थी, तो उसे मार्ग में अष्ट-वसु मिले। उन्हे भी वशिष्ठ से शाप मिला था कि पृथ्वी पर जाकर जन्म लो। उनका दोष यही था कि वशिष्ठ को उन्होंने अभिवादन नहीं किया था। उन आठ वसुओं ने गंगा से प्रार्थना की कि हम तुम्हारे पुत्र होकर जन्म लेंगे। तुम हमें जल में डुबोकर जल्दी ही मार डालना, जिससे हमें मनुष्य योनि से शीघ्र छुटकारा मिल जाय। हम सब शान्तनु राजा के यहाँ जन्म लेंगे। गंगा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर कहा—'मैं तुम्हारा और शान्तनु दोनों का हित करने पृथ्वी पर जा रही हूँ।' पृथ्वी पर रहकर गगा ने अपने सब पुत्रों को जल में डुबो दिया। अन्तिम पुत्र को राजा शान्तनु के कहने से बचा रहने दिया। वही देवव्रत और भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ।



शान्तनु-गंगा

गंगा, सगर, अंशुमान्, असमंजस, कपिल मुनि, जाह्नवी

सूर्यवंश में सगर नाम के एक राजा थे, जो अयोध्या में राज्य करते थे। बड़ी तपस्या के उपरात उनकी पहली रानी केशिनी से एक पुत्र असमंजस और दूसरी रानी सुमति से साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। असमंजस बड़ा क्रूर था। वह घी के कुंड में पले अपने भाइयों को पकड़-पकड़कर पानी में डुबो देता था। न्यायपरायण सगर ने उसे अपने देश से निकाल दिया।

एक समय राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया और अपने पुत्रों को घोड़े की रखवाली के लिए नियुक्त किया। इन्द्र स्वर्ग-राज्य छिन जाने के भय से यज्ञ के घोड़े को चुराकर ले गया और तपस्या करते कपिल मुनि के आश्रम में चुपचाप बाँध आया।

सगर के साठ हजार पुत्र अश्वमेध के घोड़े को ढूँढ़ते, पृथ्वी को खोदते खोदते, योगेश्वर कपिल के पास पहुँचे और इन्हें ही चोर समझकर उन्होंने मुनि को खूब खरी-खोटी सुनाई, जिससे मुनि की हुंकार से सभी भस्म हो गये। फिर राजा सगर ने असमंजस के सुशील और आज्ञाकारी पुत्र अंशुमान् को अपने पुत्रों की खोज में भेजा। वह कपिल मुनि से अनुनय-विनय कर घोड़े को माँग लाया; किन्तु वह अपने चाचा लोगों का उद्धार न कर सका। मार्ग में गरुड़ मिले। उन्होंने बताया कि गंगा के पवित्र जल से इन लोगों का उद्धार होगा। अतएव अंशुमान् अयोध्या लौट गया। इसके पश्चात् तपस्या के द्वारा सगर, अंशुमान् और उसके पुत्र दिलीप ने चेष्टा की कि गंगाजी पृथ्वी पर आवें; परन्तु इस कार्य में किसी को सफलता नहीं मिली।

दिलीप के पुत्र भगीरथ ने गंगा को लाने के लिए भगीरथ प्रयत्न किया और अन्त में उनके तप से प्रसन्न हो, ब्रह्मा ने गंगा के आने का वरदान दिया। शिव ने भगीरथ के तप से प्रसन्न होकर गंगा के वेग को सँभालने के लिए उन्हें सिर पर धारण करना स्वीकार किया। इस प्रकार गंगा पृथ्वी पर आई और सगर के पुत्रों का उद्धार किया। पृथ्वी खुद

जाने से गंगा का पानी भर गया था, जिससे समुद्र का नाम सागर पड़ा। अगस्त्य मुनि ने जिस समुद्र को चुल्लू मे पीकर सुखा दिया था, वह फिर जल से भर गया। भगीरथ के प्रयत्न से गगा पृथ्वी पर आईं, अतएव उनका नाम "भागीरथी" पड़ा।

महाराज भगीरथ जब गगा को अपने रथ के पीछे-पीछे कपिल मुनि के आश्रम तक ला रहे थे, तो मार्ग में ध्यानावस्थित जह्नु ऋषि आसन लगाये बैठे हुए थे। गंगा ने ज्यों ही उनके आश्रम में प्रवेश किया, उन्होंने गगा को चुल्लू मे भरकर पी लिया। तत्पश्चात् भगीरथ के बहुत अनुनय-विनय करने पर ऋषि ने गंगा को जघा से निकाल दिया। तभी से गंगा का एक नाम 'जाह्नवी' भी पड़ गया।

विष्णु भगवान् ने जिस समय वामन रूप धारण कर राजा बलि से तीन पग पृथ्वी का दान माँगा था और अपना शरीर ब्रह्माण्डव्यापी बनाया था, उस समय ब्रह्मा ने उनके चरण धोकर उस जल को अपने कमंडलु मे रख लिया था। वही जल गंगा का आदिमूल है।

गंगा के पर्य्यायवाची शब्द—मदाकिनी, भागीरथी, जाह्नवी, त्रिपथगा, विष्णुपदी, सुरसरि, जह्नुसुता।

गय, अग्निदेव

महाराज गय बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने सौ वर्ष तक हवन से बचा हुआ अन्न खाकर ही जीवन धारण किया था। एक बार अग्निदेव ने प्रसन्न होकर इन्हें वरदान देना चाहा तो इन्होंने अग्निदेव से कहा, मैं समस्त वेद-शास्त्रों को जानकर धर्म से अक्षय धन का अधिकारी हो जाना चाहता हूँ। मै उत्तम सन्तान और धर्म-पालन में मन लगाये रखना चाहता हूँ।

राजा गय ने अभिलषित वस्तुएँ पाकर समस्त शत्रुओं को परास्त कर दिया। वे सौ वर्ष तक ब्राह्मणों को सुवर्ण दान करते रहे। उन्होंने एक अश्वमेध यज्ञ भी किया, जिसमे अतुल संपत्ति दान की। इस प्रकार तप, सत्य, दया और दान मे राजा गय जगत्प्रसिद्ध हो गये।

गालव, विश्वामित्र, धर्मराज, ययाति, गरुड़

महर्षि गालव अपने हठ के लिए प्रसिद्ध हैं। ये विश्वामित्र के पुत्र और शिष्य थे। एक बार धर्मराज ने विश्वामित्र के तपोवल की परीक्षा सुनकर, उनकी परीक्षा लेनी चाही। उन्हें ज्ञात था कि विश्वामित्र और वशिष्ट में आपस में बड़ा वैर है। अतएव उन्होंने वशिष्ट का रूप धारण कर विश्वामित्र के पास जा, भोजन करने की इच्छा प्रकट की।

उस समय भोजन तैयार न था। विश्वामित्र भोजन तैयार करवा स्वयं थाली लेकर धर्मराज के पास पहुँचे, तो वशिष्ट वेशधारी धर्मराज ने कहा—'मै तो अभी अन्य मुनियों के यहाँ भोजन कर चुका हूँ; किन्तु, तुम यहीं खड़े रहो। मैं अभी लौटकर आता हूँ तव खाऊँगा।'



विश्वामित्र और वशिष्ट

विश्वामित्र अतिथि-रूप में आये हुए अपने शत्रु का सम्मान करना ी जानते थे। वे वैसे ही थाली को सिर पर रखे, वृक्ष के समान, वायु ा भक्षण करते हुए खड़े रहे। उस समय उनके प्रिय शिष्य और पुत्र गालव ा उनकी वहुत सेवा की थी। तव सौ वर्ष के उपरान्त धर्मराज पुनः वशिष्ट का रूप धारण कर आये और भोजन किया। विश्वामित्र को धर्म में इतना दृढ़ देख, धर्मराज ने प्रकट होकर आशीर्वाद दिया और विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण वना दिया।

ब्रह्मर्षि हो जाने पर विश्वामित्र ने गालव की सेवा से प्रसन्न होकर उससे कहा—'तुम्हारी गुरुभक्ति देखकर मैं सन्तुष्ट हूँ। अब तुम जहाँ चाहो, जा सकते हो।' तब गालव ने गुरुदक्षिणा देनी चाही। विश्वामित्र के बार बार मना करने पर भी गालव गुरुदक्षिणा देने के लिए आग्रह करता रहा। बहुत हठ करने पर विश्वामित्र ने श्वेत वर्ण के आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे।

गालव चिन्तित होकर अपने मित्र गरुड़ के पास गया। गरुड़ पर बैठकर वह अनेक दिशाओं में घूमता फिरा। गरुड़ उसे अपने मित्र राजा ययाति के पास ले गया। ययाति ने अपनी कन्या "माधवी" देकर कहा—'इस कन्या का विवाह जिस राजा से करो, उससे शुल्क-रूप मे श्यामकर्ण घोडे माँग लेना।' तब गालव ने हर्यश्व राजा को पुत्र प्राप्त करने के लिए माधवी कन्या दी और उसके बदले दो सौ घोड़े प्राप्त किये। पुत्र हो जाने पर माधवी को वापस ले गालव राजा दिवोदास के पास गया और उनसे भी इसी प्रकार दो सौ घोड़े प्राप्त किये। इसी प्रकार उशीनर से भी दो सौ घोड़े ले, किसी प्रकार, बड़ी कठिनाई से ६०० घोड़े एकत्र किये। फिर निराश हो ६०० घोड़े और माधवी कन्या को लेकर विश्वामित्र के निकट पहुँचा और बोला—'आप ये छः सौ घोडे और शेष दो सौ घोड़ों के बदले यह कन्या ग्रहण कीजिए।' विश्वामित्र ने गुरुदक्षिणा में छ. सौ घोड़े और उस कन्या को ग्रहण कर अपने शिष्य गालव को प्रसन्न किया। 'अष्टक' नामक पुत्र होने के बाद विश्वामित्र ने माधवी को लौटा दिया। तब गालव माधवी को उसके पिता ययाति के पास पहुँचा स्वयं जंगल में जा तप करने लगा।

गिरिधर गोपाल, मदभंजन, संवर्तक, ऐरावत

व्रजभूमि मे रहते समय एक दिन बालगोपाल श्रीकृष्ण ने इन्द्र-यज्ञ की तैयारी देख, नन्द बाबा से इसका कारण पूछा। उन्होंने बताया कि इन्द्र मेघो का स्वामी है। ये मेघ जल बरसाते है, जिससे अन्न और तृण उत्पन्न

होते हैं। इससे इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए हम वर्ष में एक वार इन्द्र-यज्ञ किया करते हैं। इस पर कृष्णजी ने व्रजवासियों को समझाया कि इन्द्र की पूजा की अपेक्षा तो गिरिराज "गोवर्धन" की पूजा कीजिए। वही हमारी गौओं को चारा देते हैं। कृष्ण के कहने पर सबने इन्द्र की पूजा न करके गोवर्धन की पूजा की।

वास्तव में भगवान् इन्द्र के घमंड को चूर-चूर कर देना चाहते थे भगवान् का नाम ही है मदभंजन। धर्म के मार्ग में घमंड से बाधा पड़ती है, अतएव सब व्रजवासीगण उनके कहने से इन्द्र-यज्ञ न कर गोवर्धन पर्वत की पूजा करने लगे।

अपनी पूजा बन्द देखकर इन्द्र को वड़ा क्रोध आया। उसको अपने पद का वड़ा घमंड था। उसने अपना अनादर देख "संवर्तक" नाम के प्रलयकालीन मेघों को आज्ञा दी कि तुम अभी व्रज के ऊपर जाकर घोर वर्षा करो। मैं भी अपने वाहन ऐरावत हाथी पर चढ़कर आता हूँ।

जब संसार का प्रलय होता है, तब संवर्तक वादल निरन्तर सौ वर्ष तक मूसलधार पानी वरसाकर पृथ्वी-मंडल को पानी मे डुवा देते हैं। फिर उञ्चास प्रकार के मरुत (पवनों) से आँधी-ओले वरसाने को कहा।

इन्द्र की आज्ञा पाकर व्रज पर ऐसी घनघोर वर्षा हुई कि लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। तब सब व्रजवासी कृष्ण से प्रार्थना करने लगे कि इन्द्र के कोप से हम लोगों को बचाओ। कृष्ण ने अपने योगवल से गिरिराज गोवर्धन को उखाड़ लिया और बाँये हाथ की उँगली पर उसे टेक दिया। सब व्रजवासीगण उस पर्वत के नीचे खड़े हो गये और गोवर्धन ने छत्ररूप हो आँधी, पानी और विजली से उनकी रक्षा की। सात दिन तक भगवान् योगवल से गोवर्धन पर्वत लिये खड़े रहे। अन्त मे इन्द्र स्वयं श्रीकृष्ण की योगमाया का प्रभाव देख विस्मित हो गया। उसने पवन और मेघों को हटा लिया। वस, आँधी-पानी सब बन्द हो गया और सब व्रजवासी मुदित होकर कृष्ण को देवता समझकर पूजने लगे। श्रीकृष्ण ने देखते-देखते खेल ही खेल में गिरिराज को पूर्ववत् उसके

स्थान पर रख दिया। उस समय से उनका नाम गोवर्धनधारी और गिरिधर पड़ गया।

इन्द्र के *पर्य्यायवाची शब्द*—पुरन्दर, शचीपति, देवपति, मेघपति, वज्रधर, पाकशासन, मघवा, पाकारि, विबुधेश, पुरहूत, शक्र, सुरेश, सहस्राक्ष।

मेघ के *पर्य्यायवाची शब्द*—धाराधर, बादल, पयोद, वारिधर, नीरद, पयोधर, जीमूत, वारिद, वलाहक, घन, अभ्र, अंबुद।

बिजली के पर्य्यायवाची शब्द—चंचला, चपला, विद्युत्, यामिनी, सौदामिनी, तड़ित्, शंपा, अशनि, क्षणप्रभा, बीजरी, छटा।

गुणनिधि

गुणनिधि एक ब्राह्मण था। वह ब्राह्मण होते हुए भी चोरी करके निर्वाह करता था। एक रात उसे चोरी करने के लिए कोई भी स्थान न मिला, तो एक शिवालय में जाकर वह शिवालय का घटा ही चुराने का विचार करने लगा। किन्तु घंटा ठीक शिवलिंग के ऊपर बँधा था।

गुणनिधि ने झटपट एक युक्ति सोची। अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए वह शिवलिंग पर पैर रखकर चढ गया और घंटा उतारने लगा। उसी समय साक्षात् शिव उसके सामने प्रकट होकर बोले—"मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने तो आज अपना सर्वस्व मुझ पर चढ़ा दिया।"

गुणनिधि लज्जित होकर, उनके चरणों पर गिर अपने अपराध के लिए क्षमा-याचना करने लगा। तब आशुतोष भगवान् शिव ने उसे कैलाश धाम भेज, परमपद दे दिया।

गुह-निषाद, केवट, सुमंत्र, राम

राम, लक्ष्मण और सीता जब अयोध्या छोड़कर वनवास के लिए जा रहे थे, तो उनका सारथि सुमंत उन्हें रथ पर अयोध्या के निकट गंगाजी तक पहुँचाने गया। उनका रथ घूमता घामता जब संध्या समय शृङ्गवेरपुर

पहुँचा, तो गंगाजी को देखकर वे रथ से उतर पड़े और तीनों ने गंगाजी को प्रणाम किया।

शृंगवेरपुर के निवासी निषादराज गुह ने राम, सीता और लक्ष्मण का आगमन सुना, तो वह भेंट देने के लिए बहँगियों मे फल-मूल लेकर मिलने के लिए चल पड़ा। उसने राम, लक्ष्मण और सीता को प्रणाम कर उन्हे शृंगवेरपुर में अपने यहाँ चलने के लिए निमंत्रित किया; किन्तु श्रीराम को तो वनवास था। उन्होंने गाँव के भीतर निवास करना अनुचित समझा।

गुह ने फिर कुश और कोमल पत्तों का बिछौना बिछा दिया और दोनों में भर-भरकर फल-मूल और जल दिया। रामचन्द्रजी जब विश्राम करने लगे, तो स्वय कमर में तरकस बाँध, धनुष-बाण चढ़ाकर, लक्ष्मण के साथ पहरा देने लगा।

प्रात:काल रामचन्द्रजी ने सुमंत को समझा-बुझाकर वापस अयोध्या भेज दिया और स्वयं लक्ष्मण तथा सीता सहित गंगा के तट पर गये। श्रीराम ने केवट से नाव माँगी, पर भक्तिवश वह उनके चरण-कमल धोकर चरणामृत पीना चाहता था। अतएव बोला—'आपके चरण-कमलों की धूल मनुष्य बना देनेवाली जड़ी है, जिसके छूते ही शिला सुन्दरी स्त्री हो गई थी। मेरी नाव तो काठ की है। यदि वह भी स्त्री हो जायगी, तो मेरी तो जीविका ही मारी जायगी इसलिए मैं पैरों को जब तक धो नहीं लूँगा, पार नहीं उतारूँगा।'

श्रीराम ने मुस्कराकर उसे चरण धोने की आज्ञा दे दी। फिर राम, लक्ष्मण और सीता सखा गुह के साथ वाल्मीकि, अत्रि आदि मुनियों के आश्रम में होते हुए चित्रकूट पहुँचे और वहीं पर्णकुटी बनाकर रहने लगे।

भरत जब चित्रकूट मे श्रीराम से मिलने के लिए चले, तो गुह ने भ्रमवश समझा कि उनके मन मे कपट है। वह धनुष-बाण लेकर उनकी नाव डुबाने दौड़ा; किन्तु भरत का शील और भ्रातृप्रेम देखते ही पैरों पर गिर पड़ा। उसके असीम प्रेम और भक्ति को देखकर मुनिराज वशिष्ट ने उसे रामसखा जानकर हृदय से लगा लिया।

गौतम, अहल्या, शतानन्द, इन्द्र, दंडकारण्य

गौतम ऋषि न्याय-शास्त्र के प्रवर्तक थे। गौतम मुनि ने, उनके मत का खंडन करनेवाले, व्यास मुनि का मुख कभी न देखने की प्रतिज्ञा की थी। पीछे से व्यास मुनि ने जब इन्हें प्रसन्न किया, तो उन्होंने अपने चरणों में नेत्र रखकर इन्हे देखा। उस समय से गौतम 'अक्षपाद' नाम से प्रसिद्ध हो गये।

एक बार पंचवटी में अकाल पड़ा, तो सब ऋषि-मुनि घबराकर गौतम ऋषि के पास पहुँचे। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से उन सबका पालन-पोषण किया। जब पंचवटी में सुकाल हुआ, तो ऋषियों ने अपने जन-स्थान को लौट जाना चाहा; किन्तु गौतम ने उन्हें रोका। तब मुनियों ने एक माया की गौ बनाई और उनकी प्रशसा कर उनके हाथ में दे दी। ऋषि के हाथ मे थमाते ही वह गौ गिरकर मर गई। तब मुनियों ने ऋषि को गौहत्या का पाप लगाया और उनका तिरस्कार करते हुए अपने जनस्थान को लौट गये।

ऋषि को जब इस छल का पता लगा, तो उन्होंने शाप दिया कि जहाँ कहीं तुम लोग निवास करोगे, वह स्थान वन हो जायगा और उसमें राक्षस-गण निवास करने लगेंगे। उनके जनस्थान का नाम दंडक राज्य था। वह दंडकारण्य में परिवर्तित हो गया और उसमें महा भयंकर मायावी राक्षस रहने लगे।

गौतम मुनि का पहला नाम "अंधतमा" था। कारण यह है कि ये जन्म के अंधे थे। इन पर स्वर्ग की कामधेनु "गौ" प्रसन्न हो गई और उसने इनका 'तम' हर लिया, तो इनका नाम गौतम पड़ गया।

एक बार ब्रह्मा ने एक परम सुन्दरी स्त्री बनाई। 'हल' अथवा पाप का भाव न होने से वह "अहल्या" कहलाई। ऋषि और देवता आदि सब उस कन्या पर मुग्ध थे; किन्तु ब्रह्मा तब गौतम मुनि की तपस्या पर प्रसन्न थे। उन्होंने अहल्या गौतम मुनि को देकर कहा कि इस कन्या को हम तुम्हें धरोहर के रूप मे देते हैं। हम जब कहे, तब वापस कर देना। गौतम ने

अनेक वर्ष अहल्या को धरोहर के समान रखा, फिर स्वयं ब्रह्मा के पास उसे वापस करने गये। गौतम का संयम और पवित्र भाव देखकर ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने अहल्या का विवाह गौतम मुनि से ही कर दिया। उनके एक "शतानन्द" नामक पुत्र हुआ, जो राजा जनक का पुरोहित हुआ।

एक वार इन्द्र, गौतम मुनि का वेश धारणकर, इनकी अनुपस्थिति में आया और अहल्या का सतीत्व भंग कर दिया। गौतम मुनि ने जब यह सुना तो उन्होंने अहल्या को शिला होने का शाप दे दिया। तब अहल्या के पिता ब्रह्मा ने अहल्या का सौंदर्य अन्य स्त्रियों को बाँट देया और इन्द्र को शाप दिया कि तुम्हारा पद स्वर्ग में कभी स्थायी न रहेगा। इन्द्र सदैव बदलते रहेंगे। गौतम ने भी इन्द्र को शाप दिया कि तुम्हारे समस्त शरीर में सहस्र भग हो जायँ। फिर क्षमा माँगने पर इन्द्र से कहा कि जब रामचन्द्र शिव का धनुष तोड़ेंगे, तब तुम्हारे सहस्र भग सहस्र नेत्रों में परिणत हो जायँगे। तभी जनकपुर जाते समय रामचन्द्र की पदधूलि का स्पर्श कर अहल्या पाषाण से फिर स्त्री हो जायगी। तत्पश्चात् गौतम हिमालय में तप करने चले गये।

रामचन्द्र जब सीता के स्वयंवर में मिथिलापुरी जा रहे थे, तो मार्ग में उन्होंने अहल्या का उद्धार किया। अहल्या पुनः पवित्र होकर गौतम मुनि के पास चली गई। अपने त्याग, वैराग्य और तप के लिए गौतम मुनि प्रसिद्ध थे।

गौतम मुनि के वंशज शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य और पुत्री कृपी थी। कृपी का विवाह द्रोणाचार्य से हुआ था, जिससे उन्हें अश्वत्थामा नामक पुत्र हुआ।

गोपीचन्द

तिलकचन्द बंगाल के राजा थे। उनकी रानी का नाम मैनादेवी था। निस्संतान होने के कारण रानी ने रत्नाकर का कठिन तप करना प्रारंभ किया। बारह वर्ष के उपरान्त ब्राह्मण-वेश ने रत्नाकर ने प्रकट होकर उसे

पुत्र होने का आशीर्वाद तथा एक अमूल्य रत्नहार दिया। कुछ सम उपरान्त रानी के एक पुत्र हुआ। उसका नाम रखा गया "गोपीचन्द ज्योतिषियों ने बताया कि यह पुत्र सोलहवें वर्ष राजपाट छोड़कर सा बन जायगा।

कुछ दिनों बाद तिलकचन्द के यहाँ से कुछ चोर मैनादेवी का र हार चुराकर ले गये, किन्तु भयभीत हो वे वन में पहुँचे। वहाँ एक मु जालंधरनाथ मौन होकर तप कर रहे थे। उनके गले में वह हार डाल चोर भाग गये।

राजा के सिपाहियों ने जालधरनाथ मुनि को पकड़ लिया और उ चोर समझकर खूब सताया। उन्होंने मुनि को कुएँ में डाल दिया अ ऊपर से धूल और मिट्टी डालकर उस कुएँ को भर दिया; पर मुनि ध्यान न टूटा। राजा तिलकचन्द ने कुएँ को देखा, तो उसी समय जा धरनाथ का मौन छूटा। राजा को शाप वचन सुनाई पड़े कि तू छः मही के अन्दर मर जायगा और तेरे कुल का नाश हो जायगा। तूने मु निरपराध सताया है। राजा सचमुच मर गया। रानी अपने गोपीचन्द के लिए चिन्तित रहती थी। एक दिन उसने सारा वृत्ता अपने पुत्र से कह दिया और उसे उड़द के आटे के तीन बड़े पुतले बना दिये और कहा कि पुतलों को सामने करके कुएँ मे पड़े तपस्वी को प्रस करो, तो तुम चिरंजीवी बन जाओगे। राजा गोपीचन्द ने एक पुतले सामने रखकर कहा—मैं आपका शिष्य हूँ। आपकी शरण आया हूँ तपस्वी ने परिचय पूछा, तो क्रोध में कह बैठे—भस्म हो जा। उड़द पहला पुतला भस्म हो गया। इसी प्रकार तीन बार तिलकचन्द के गोपीचन्द ने तपस्वी से अनुनय-विनय की। पर तीनों बार तपस्वी क्रोध से पुतला भस्म हो गया। फिर तपस्वी का क्रोध शान्त हो गय उसने प्रसन्न होकर कहा—अच्छा जा. राज्य कर। किन्तु राजा

अपना पेट पालने लगा और फिर अपने गुरु के साथ तप करने के लिए गिरिनार चला गया।

घटोत्कच

लाक्षागृह में आग लगाकर जब पाँचों पांडव और कुन्ती सुरंग के मार्ग से भाग निकले, तो रात्रि में एक वन में पहुँचकर एक वृक्ष के नीचे



हिडिम्बा भीमसेन को देखकर उन पर मुग्ध हो गई

सो गये। भीमसेन जागकर पहरा देने लगे। उसी समय हिडिम्बासुर नामक एक नरभक्षी राक्षस ने अपनी बहिन हिडिम्बा को उन्हें मारने के लिए भेजा; किन्तु हिडिम्बा भीमसेन को देखकर उन पर मुग्ध हो गई। देर होने

पर हिडिम्ब स्वयं वहाँ पहुँचा; किन्तु पराक्रमी भीम ने उसे मार डाला। युधिष्ठिर के कहने से भीम ने हिडिम्बा से विवाह कर लिया; किन्तु प्रतिज्ञा की कि पुत्र होने के उपरान्त मैं तुमसे संबंध नहीं रखूँगा। यथा-समय हिडिम्बा के एक विशाल शरीरवाला पुत्र हुआ। राक्षसी-पुत्र होने से वह जन्मते ही युवा हो गया।

हिडिम्बा के बालक के सिर पर बाल नहीं थे। उसका घड़े-सा केशहीन सिर देखकर माता-पिता ने पुत्र का नाम रखा घटोत्कच। बल में वह भीमसेन के समान ही था। भीम से चलते समय घटोत्कच ने कहा, जब भी आपको मेरी आवश्यकता हो, मेरा नाम स्मरण कीजिएगा, मैं आ जाऊँगा।

महाभारत के युद्ध मे घटोत्कच पांडवों की ओर से लड़ा। भीमसेन के मूर्च्छित होने पर घटोत्कच ने क्रोध कर ऐसी माया फैलाई कि कौरव घबरा गये। अश्वत्थामा और भगदत्त से घटोत्कच का भीषण संग्राम हुआ। कर्ण के सम्मुख भी घटोत्कच ने महामाया फैलाई और उसके दिव्यास्त्रों का नाश किया। अलायुध नामक एक राक्षस कौरवों से मिल गया था। वह हिडिम्ब, बक, किर्मीर आदि राक्षसों के वध के कारण पाडवों से क्रुद्ध था। वह भी घटोत्कच से लड़ा और उसके द्वारा मारा गया। अलायुध को मारने के पश्चात् घटोत्कच का कर्ण से पुनः भयंकर युद्ध हुआ। कर्ण ने अपनी अमोघ शक्ति से घटोत्कच को मार डाला। वीर घटोत्कच की मृत्यु से पाडव-सेना दुःखी हो गई, किन्तु कृष्णजी ने प्रसन्न होकर सबको समझाया कि अब कर्ण को जीतना सरल हो गया; क्योंकि इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति, जो उसने अर्जुन के लिए सुरक्षित रखी थी, अब निष्फल हो गई। घटोत्कच तो पापात्मा, ब्राह्मणद्वेषी था। अतः उसके वध पर विषाद मत करो।

चन्द्रमा, बृहस्पति, तारा, गौतम

चन्द्रमा अत्रि मुनि का पुत्र था, किन्तु उसका जन्म दूसरी बार समुद्र से भी हुआ।

समुद्र-मंथन के समय निकले चौदह रत्नों में चन्द्रमा के निकलने से वह समुद्र का पुत्र तथा लक्ष्मी का भाई माना जाता है। समुद्रमंथन के समय शिव ने समुद्र में निकले भयंकर 'कालकूट' विष का पान किया था, जिससे उनका कंठ नीला पड़ गया। उनका नीलकंठ देख विप की तीव्रता को शीतल करने के लिए देवताओं ने उन्हें चन्द्रमा प्रदान किया, जिसको "नीलकंठ" महादेव ने प्रसन्न होकर अपने मस्तक पर धारण किया।

चन्द्रमा के गुरु का नाम वृहस्पति था। एक बार चन्द्रमा ने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली और धन-संपत्ति, प्रतिष्ठा, वल पाकर गर्व से इतना अंधा हो गया कि वृहस्पति की पत्नी तारा से अशिष्ट व्यवहार कर बैठा, जिससे चन्द्रमा को वुध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वृहस्पति वुध को अपना पुत्र समझ, नामकरण करने लगे, तो चन्द्रमा ने कहा कि यह पुत्र तो मेरा है। इस पर गुरु-शिष्य में विवाद होने लगा। चन्द्रमा देवता से असुर हो गया, तो दैत्य सव चन्द्रमा के पक्ष में हो गये। देवता लोग अपने गुरु वृहस्पति के पक्ष में थे। दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। अन्त में देवासुर-संग्राम रोककर ब्रह्मा ने मध्यस्थ हो, वीच-वचाव किया। इससे दोनों पक्षों में सन्धि हो गई और चन्द्रमा को अपना पुत्र वुध मिल गया।

चन्द्रमा या सोम अत्रि-अनुसूया का पुत्र भी कहलाता है। उसका विवाह दक्ष की सत्ताईस कन्याओं से हुआ था। चन्द्रमा का विवाह सूर्य की पुत्री सूर्या और रोहिणी से भी हुआ था। चन्द्रमा का रोहिणी पर विशेप प्रेम तथा अपना अनादर देख, दक्ष की पुत्रियों ने दुःखी होकर पिता से शिकायत की। इस पर रुष्ट हो दक्ष ने चन्द्रमा को शाप दे दिया, जिससे उसको राजयक्ष्मा हो गया। क्षयरोग के कारण चन्द्रमा की कान्ति नष्ट हो गई और वह दिन-प्रतिदिन क्षीण होने लगा। देवताओं ने चन्द्रमा की पीड़ा देख, दक्ष से अनुनय-विनय की, तो उन्होंने कहा कि यदि चन्द्रमा सव पत्नियों पर समान अनुराग रखे और प्रभास तीर्थ में जाकर स्नान करे, तो उसका कलेवर फिर वढ़ जायगा; किन्तु मेरा

शाप अमिट होने से पन्द्रह दिन घटेगा और पन्द्रह दिन बढ़ेगा तत्पश्चात् चन्द्रमा ने वैसा ही किया, जिससे उसे पहले की सी कान्ति फिर प्राप्त हो गई। क्षयरोग की शान्ति के लिए चन्द्रमा ने गोद में हिरण ले लिया, जिससे वह मृगाक नाम से या शशाक नाम से प्रसिद्ध हो गया।

गुरुपत्नी तारा के साथ भोग करने से शापवश चन्द्रमा का शरीर काला पड़ गया, उसी से चन्द्रमा के शरीर पर कलंक दिखलाई पड़ता है। गौतम वेशधारी इन्द्र ने जब अहल्या का सतीत्व नष्ट किया था, तब चन्द्रमा ने इन्द्र की सहायता की थी। इससे गौतम ऋषि ने इन्द्र को तो शाप दिया ही था, साथ में चन्द्रमा को भी अपने कमंडलु और मृगचर्म से मारा था, जिसका दाग उसके शरीर पर पड़ गया।

चन्द्रमा के पर्य्यायवाची शब्द—इन्दु, हिमाशु, मृगाक, सोम, द्विज, अत्रिनेत्रज, सिन्धुनन्दन, उदधिसुत, मयंक, कुमुदिनीनायक, निशाकर, शशधर, सुधाकर, क्षपाकर, बिधु, ओषधीश, कलानिधि, द्विजराज, शर्वरीश, उड़प, उडूडगणपति, क्षपानाथ।

च्यवन, पुलोमा, सुकन्या

भृगु मुनि की पत्नी का नाम पुलोमा था। पुलोमा वैश्वानर दैत्य की पुत्री थी। जब वह गर्भवती थी, तब एक दिन उसे अकेली पाकर पुलोमा नामक राक्षस उनके आश्रम में घुस आया। पहले पुलोमा राक्षस ने वैश्वानर से उसकी पुत्री सुन्दरी पुलोमा को माँगा था, किन्तु पिता ने उसे राक्षस को न देकर भृगु को ब्याह दिया। इसी क्रोध और वैर के कारण वह दैत्य शूकर का रूप धारणकर पुलोमा को लेकर भागा।

दैत्य का दुराचार देखकर, गर्भवती पुलोमा का पुत्र क्रोध से गर्भ से बाहर निकल आया। उस तेजस्वी बालक को देखते ही पुलोमा

भस्म होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। पुलोमा का गर्भ भय और क्रोध से च्यवन (गिरा) हुआ, अतएव उस बालक का नाम "च्यवन" पड़ा।

भृगु मुनि लौटे तो उन्हें ज्ञात हो गया कि पुलोमा राक्षस को अग्निदेव से ज्ञात हुआ था कि पुलोमा मेरी स्त्री है, अतएव उन्होंने अग्निदेव को शाप दिया कि तुम आज से सर्वभक्षी हो जाओ। भृगुपुत्र च्यवन तपस्या में रत रहते थे। तप करते-करते इनके समस्त शरीर को दीमकों के घर (वल्मीक) ने ढक लिया था, केवल दो आँखें ही दिखलाई पड़ती थीं।

एक दिन राजा शर्याति मृगया के लिए वन मे घूम रहे थे कि उनकी पुत्री सुकन्या ने दीमकों का यह टीला देखा। उसने बिना सोचे-समझे, जुगनू की तरह, चमकते दो छेदों में काँटे चुभो दिये। इस पर राजा की सारी सेना का मल-मूत्र रुक गया। तब राजा समझ गये किसी ने शाप दिया है। वल्मीक से रक्त की धारा बहती देख, उन्होंने च्यवन ऋषि से क्षमा माँगी और अपनी पुत्री सुकन्या का विवाह उन्हीं से कर दिया।

एक बार च्यवन ऋषि ने अश्विनीकुमारों को प्रसन्न कर दिया, जिससे इनको वृद्धावस्था के बदले युवावस्था प्राप्त हो गई। ऋषि ने सरोवर में स्नान किया, तो उसमें से तीन युवा पुरुष निकल आये। इस पर सुकन्या बहुत चकराई। उसने स्तुति कर अश्विनीकुमारों से बहुत प्रार्थना की तो दो युवा, जो अश्विनीकुमार ही थे, अन्तर्धान हो गये और पतिव्रता सुकन्या को सुन्दर रूपवान् च्यवन ऋषि मिल गये। कुछ दिनों के उपरान्त सुकन्या के पिता शर्याति अपनी पुत्री को देखने उनके आश्रम में गये, तो वहाँ वृद्ध ऋषि को तो न देखा; किन्तु अपनी पुत्री को एक नवयुवा की सेवा करते देख उसके आचरण पर वे बहुत क्रुद्ध हुए। अन्त मे च्यवन ऋषि के कायाकल्प का समस्त वृत्तान्त सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। च्यवन ऋषि के बहुत सन्तानें हुईं, जो भृगुवंश मे उत्पन्न होने के कारण भार्गव कहलाईं।

च्यवन ऋषि के नाम से ही 'च्यवन' प्राश ओषधि प्रसिद्ध हुई है। एक बार च्यवन ऋषि ने महाराज कुशिक और उनकी रानी से बहुत सेवा

शंकर और पार्वती को देखकर अभिमान से जोर जोर से कहने लगा कि ये जगत् के गुरु कितने निर्लज्ज हैं कि भरी सभा में स्त्री को गोद मे लिये बैठे हैं।

इस अपमान से शकर तो हँसकर चुप हो गये; किन्तु पार्वती इसे सहन न कर सकीं। उन्होंने क्रोध में आकर शाप दिया कि तुम्हें विद्याधर हो जाने का बड़ा अहंकार हो गया है। महादेव का अपमान करने से तुझे राक्षस होना पड़ेगा। तब चित्रकेतु शिव-पार्वती के पैरों पर गिर पड़ा। इसी शाप के कारण चित्रकेतु वृत्रासुर नामक राक्षस बना और इन्द्र के हाथ से मरकर मुक्त हुआ।

चित्रगुप्त

चौदहों यमराजों में से जो यमराज प्रत्येक प्राणी के पाप और पुण्य का लेखा रखते हैं, उनका नाम है चित्रगुप्त। चित्रगुप्त एक राजा थे, जो अपने राज्य में सुप्रबन्ध और हिसाब-किताब रखने में बड़े निपुण समझे जाते थे। यमराज ने उनकी बड़ी प्रशंसा सुनी, तो अपने यहाँ ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता देख, उन्हें पाप और पुण्य का लेखा रखने के लिए बुलवा भेजा; किन्तु ये नहीं गये।

राजा जब एक दिन स्नान करने गये तो यमराज ने उन्हे पकड़ मँगवाया। अन्त में चित्रगुप्त ने उनकी अधीनता मे काम करने की स्वीकृति दे दी। चित्रगुप्त का जन्म ब्रह्मा के शरीर (काय) से हुआ था। काय (शरीर) से उत्पन्न होने के कारण चित्रगुप्त कायस्थ कहलाते थे।

चीर-हरण

व्रजभूमि मे वालकृष्ण का अनुपम शील, शक्ति और सौन्दर्य देखकर वहाँ की सब कुमारी कन्याएँ यमुना मे नहा-धोकर कात्यायनी देवी की पूजा कर प्रार्थना करतीं कि नन्दनन्दन ही हमारे पति हों। लगातार महीने भर तक कृष्ण ने उन्हे इस प्रकार पूजा करते देख, उनके प्रेम की

का भार सौंपा और स्वयं गंडकी नदी के किनारे जाकर एकान्त में ईश्वर का ध्यान करने लगे।

एक बार वन में शेर से डरी हुई एक हिरनी के बच्चे पर इन्हें बड़ी दया आ गई। भरत उसे उठाकर अपने आश्रम में ले आये और उसका इतना दुलार-प्यार करने लगे कि उनका सारा भजन-पूजन छूटने लगा। वह माया-मोह मे फँस गये। वह हिरन का बच्चा बड़ा होकर जब कहीं जंगल मे दूर चला गया, तो भरत बड़े दुःखी हुए और उसी के दुःख मे उनकी मृत्यु हो गई।

अन्तिम समय मृग में ही ध्यान रहने से अगले जन्म मे वे मृग हो गये। मृग होकर भी वे तीर्थ-स्थानों में घूमा करते और भगवान् का भजन करते थे। अतएव मृगयोनि के उपरान्त उन्हें फिर ब्राह्मण के घर जन्म मिला। पर उन्हें याद रहा कि संसार में फँसने के कारण उनकी पिछले जन्म की तपस्या भङ्ग हो गई थी। अतएव इस जन्म में वे संसार के कामों से अलग रहने की चेष्टा करने लगे। वे भगवान् की भक्ति में ऐसे लीन रहते कि अन्धे, बहरे और गूँगों की तरह जड़वत् घूमा करते थे। इसीलिए उनका नाम जड़ भरत पड़ गया। सब लोग इन्हें पागल समझते थे।

एक दिन वे नदी के किनारे घूम रहे थे कि रहुगण नामक राजा पालकी में बैठा हुआ उधर से निकला। मार्ग मे एक कहार बीमार पड़ गया तो कहारों ने, जड़ भरत को पकड़ लिया और उसे कंधे पर पालकी लेकर चलने के लिए बाध्य किया। राह मे जहाँ कहीं चींटी आदि जीव देखते, तो जड़ भरत छलाँग मारते थे। इस कूदाफाँदी में पालकी टेढ़ी हो जाती थी। इस पर राजा बहुत क्रुद्ध हो गया और उसने जड़ भरत को बहुत डाँटा फटकारा। उसे क्या मालूम था कि जड़ भरत परमहंस हैं। तिरस्कार के उत्तर में शान्तचित्त जड़ भरत ने ऐसी ज्ञान की बातें कीं कि राजा दंग रह गया। वह सिंधु और सौवीर देश का राजा किसी महात्मा की खोज में ही उधर से निकला था। वह तुरन्त पालकी से उतरकर जड़ भरत के पैरों पर गिर पड़ा और कृतार्थ

से लड़ने को तैयार हो गया। दोनों मे भयंकर मल्लयुद्ध होने लगा। थोड़ी देर में भीम ने जटासुर को मार डाला।

जटायु, रावण, राम, सीता

महाबलिष्ठ गृध्रराज जटायु सूर्य के सारथि अरुण और उनकी पत्नी श्येनी का पुत्र था। इसके छोटे भाई का नाम सम्पाति था। सीताहरण के समय सीता के क्रन्दन से जटायु का ध्यान रावण की ओर आकृष्ट हुआ। उसने रावण के शरीर में अपने तीक्ष्ण नाखूनोंवाले पंजों से घाव कर दिये। रावण ने अपनी तलवार और बाण-वर्षा से जटायु को क्षत-विक्षत कर दिया। रथ मे बैठी हुई असहाय सीता को बचाने के उद्देश्य से जटायु ने रावण के सारथि का मस्तक अपनी चोंच से काट-कर रथ को चकनाचूर कर दिया। फिर रावण के धनुष को भी तोड़ डाला। तब रावण सीता को गोद में लेकर जटायु पर प्रहार करने लगा।

अन्त मे क्रुद्ध होकर रावण ने जटायु के दोनों पंख और पार्श्व भाग काट डाले। जटायु खून से लथपथ होकर भूमि पर गिर पड़ा। तब रावण विलाप करती हुई और अपने आभूषण फेंकती हुई सीता को बलपूर्वक लंका ले गया।

रामचन्द्र जब सीता को खोजते-खोजते उस स्थान पर पहुँचे, तो मरणासन्न जटायु ने सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। उन्होंने शोकाकुल हो, जटायु को गोद में उठा लिया और उसके शरीर पर हाथ फेरा, परन्तु जटायु की तत्काल मृत्यु हो गई।

जटायु दशरथ का परम मित्र था। अतएव उस पक्षिराज का दाह-संस्कार रामचन्द्र ने, अपने पिता के समान ही समझकर, विधि-पूर्वक किया।

जड़ भरत

राजा नाभि के पुत्र ऋषभदेव के सौ पुत्र थे। सबसे बड़े पुत्र का नाम भरत था। इन भरत ने बहुत दिनो तक राज्य भोगकर पुत्रों को राज्य

का भार सौंपा और स्वयं गंडकी नदी के किनारे जाकर एकान्त में ईश्वर का ध्यान करने लगे।

एक बार वन में शेर से डरी हुई एक हिरनी के बच्चे पर इन्हें बड़ी दया आ गई। भरत उसे उठाकर अपने आश्रम में ले आये और उसका इतना दुलार-प्यार करने लगे कि उनका सारा भजन-पूजन छूटने लगा। वह माया-मोह मे फँस गये। वह हिरन का बच्चा बड़ा होकर जब कहीं जंगल मे दूर चला गया, तो भरत बड़े दुःखी हुए और उसी के दुःख मे उनकी मृत्यु हो गई।

अन्तिम समय मृग में ही ध्यान रहने से अगले जन्म मे वे मृग हो गये। मृग होकर भी वे तीर्थ-स्थानों में घूमा करते और भगवान् का भजन करते थे। अतएव मृगयोनि के उपरान्त उन्हें फिर ब्राह्मण के घर जन्म मिला। पर उन्हे याद रहा कि संसार मे फँसने के कारण उनकी पिछले जन्म की तपस्या भङ्ग हो गई थी। अतएव इस जन्म मे वे संसार के कामों से अलग रहने की चेष्टा करने लगे। वे भगवान् की भक्ति मे ऐसे लीन रहते कि अन्धे, बहरे और गूँगों की तरह जड़वत् घूमा करते थे। इसीलिए उनका नाम जड़ भरत पड़ गया। सब लोग इन्हें पागल समझते थे।

एक दिन वे नदी के किनारे घूम रहे थे कि रहुगण नामक राजा पालकी मे बैठा हुआ उधर से निकला। मार्ग मे एक कहार बीमार पड़ गया तो कहारों ने, जड़ भरत को पकड़ लिया और उसे कंधे पर पालकी लेकर चलने के लिए बाध्य किया। राह मे जहाँ कहीं चींटी आदि जीव देखते, तो जड़ भरत छलाँग मारते थे। इस कूदाफाँदी मे पालकी टेढ़ी हो जाती थी। इस पर राजा बहुत क्रुद्ध हो गया और उसने जड़ भरत को बहुत डाँटा फटकारा। उसे क्या मालूम था कि जड़ भरत परमहंस हैं। तिरस्कार के उत्तर मे शान्तचित्त जड़ भरत ने ऐसी ज्ञान की बातें कीं कि राजा दंग रह गया। वह सिंधु और सौवीर देश का राजा किसी महात्मा की खोज में ही उधर से निकला था। वह तुरन्त पालकी से उतरकर जड़ भरत के पैरों पर गिर पड़ा और कृतार्थ

हो घर लौट गया। फिर समय आने पर भरत शरीर को छोड़कर, मुक्त हो गये।

जयद्रथ-वध, वृद्धक्षत्र, पांडव

चक्रव्यूह में लड़ते-लड़ते जब अभिमन्यु का वध हो गया, तो पाण्डव बड़े दुःखी हो गये। उस समय अभिमन्यु के पिता अर्जुन दक्षिण में सशप्तकों से युद्ध कर रहे थे। वे जब लौटे, तो उन्हें अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार विस्तार से बताया गया कि कौरवों ने कैसा अन्याय किया— दुर्योधन के बहनोई, दुःशला के पति, सिन्धु देश के राजा जयद्रथ ने अपने शिवजी के दिये वरदान के बल से अन्य पाण्डवों को व्यूह में प्रवेश करने से रोक दिया था। इस दशा में असहाय निहत्था अभिमन्यु मारा गया था।

अर्जुन ने क्रोध में भरकर प्रतिज्ञा की कि यदि जयद्रथ कौरवों का आश्रय छोड़कर हमारी शरण में नहीं आ गया तो मैं कल तक उसे अवश्य मार डालूँगा, अन्यथा मैं सूर्यास्त तक अग्नि मे प्रवेश कर प्राण त्याग दूँगा।

पाण्डव लोग जयद्रथ से पहले ही से रुष्ट थे। उसका कारण यह था कि वनवास के समय, काम्यक वन में, द्रौपदी को अकेली देख जयद्रथ ने अनुचित प्रस्ताव किया था तथा उसका बलपूर्वक हरण करना चाहा था किन्तु मार्ग में पाण्डवों ने उससे युद्ध कर द्रौपदी की रक्षा की थी। तब भीम के हाथों जयद्रथ की खूब दुर्गति भी हुई थी। उस समय जयद्रथ ने पाण्डवों का दास होना स्वीकार किया था किन्तु युधिष्ठिर ने दया कर उसे छोड़ दिया था।

पांडवों से पराजित और अपमानित होने पर जयद्रथ को महान् दुःख हुआ था। अतः अपने निवासस्थान पर न जाकर वह हरिद्वार गया और वहाँ शिवजी की शरण हो उग्र तपस्या करने लगा। शिवजी से उसने पाँचों पाण्डवों को जीतने का वर माँगा; किन्तु उन्होंने कहा—'अर्जुन को

ड़कर चारों पांडवों को तुम एक दिन हरा दोगे। अर्जुन तो नारायण तपस्या करनेवाले नर का अवतार है। उसके पास पाशुपत नामक त्यास्त्र है। उसे कोई नहीं हरा सकता।'

इस प्रकार का वर प्राप्त कर जयद्रथ घर लौट गया और चक्रव्यूह के र पर लड़ते समय चारों पांडवों को व्यूह मे प्रवेश करने से रोक दिया।

अभिमन्यु के मारे जाने पर सव्यसाची अर्जुन की प्रतिज्ञा सुनकर जय-थ डर गया। तब भयभीत जयद्रथ को द्रोणाचार्य ने आश्वासन दिया। सकी रक्षा के लिए कौरवों ने शकटव्यूह बनाया। अर्जुन की प्रतिज्ञा नकर श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया कि जल्दी में तुमने बड़ा दुःस्साहस र दिया है। जयद्रथ को मारना सरल काम नहीं है।

दूसरे दिन शकटव्यूह में श्रीकृष्ण ने जयद्रथ की ओर अर्जुन का थ बढ़ाया। लड़ते-लड़ते सूर्यास्त हो गया था। अनेक महारथियों से भीषण संग्राम करते हुए, कौरवों के योद्धाओं पर प्राणान्तक बाण छोड़ते हुए, अर्जुन जयद्रथ के सम्मुख जाकर लड़ने लगे। छः महारथियों के बीच सुरक्षित जयद्रथ को देख, कृष्णजी ने एक उपाय सोचा। सूर्यास्त हो ही रहा था। उन्होंने योगयुक्त होकर सूर्य को ढकने के लिए अंधकार फैला दिया। कौरव समझे, अब अर्जुन अग्नि में प्रवेश करेगा; क्योंकि उसकी बात झूठी हो गई। जयद्रथ असावधान हो, सूर्य की ओर देखने लगा। अर्जुन ने उसी समय वज्रास्त्र को गांडीव पर चढ़ाया और मारने ही जा रहे थे कि श्रीकृष्ण ने कहा कि जयद्रथ के पिता वृद्धक्षत्र ने वरदान प्राप्त किया है कि 'जो कोई जयद्रथ के सिर को पृथ्वी पर गिरायेगा, उसके मस्तक के सौ टुकड़े हो जायँगे'। अतएव श्रीकृष्ण की सम्मति से अर्जुन ने जयद्रथ का मस्तक बाण से काटकर राजा वृद्धक्षत्र की गोद में गिरा दिया। वृद्धक्षत्र सन्ध्योपासना कर रहा था। जप करके ज्यों ही प... ़, तो जयद्रथ का सिर उसकी गोद से पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसके श..रर के सौ टुकड़े हो गये।

दे इस प्रकार जब जयद्रथ का वध हो गया, तो श्रीकृष्ण ने अंधकार हटा दिया। फिर ज्यों का त्यों सूर्य निकल आया। तब अपनी अक्षौ-

हिणी सेना तथा धृतराष्ट्र के दामाद जयद्रथ का वध देखकर कौरव बहु
दुःखी और हताश हो गये।

जय-विजय, सनक आदि दशावतार

जय और विजय विष्णु के वैकुंठधाम के द्वारपाल थे। एक बार ब्र
के बेटे सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार ऋषि भगवान् के दर्श
के लिए गये। ये चारों परमहंस ऋषि पाँच वर्ष के बच्चों के समान न
रहते थे। अतएव जय-विजय ने उन्हें पहचाना नहीं। उन्होंने ऋषि
को अन्दर जाने से रोका तो ऋषियों ने उन्हें शाप दिया कि 'राद
हो जाओ'।

शाप सुनकर जय-विजय ऋषियों के चरणों पर गिर पड़े। भगव
विष्णु ने कहा—'ये मेरे सेवक हैं। ये तीन बार राक्षसरूप में जन्म ले
और मैं बार बार अवतार लेकर इनका उद्धार करूँगा'। वही जय-वि
सत्ययुग में हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु, त्रेतायुग में रावण औ
कुम्भकर्ण तथा द्वापरयुग में शिशुपाल और दन्तवक्र हुए। भगवान् ने वर
नृसिंह, राम एवं कृष्ण रूप में दशावतार लेकर अपने सेवकों
उद्धार किया। पुनः वे पूर्ववत् भगवान् के पार्षद हो गये।

जयन्त, श्रीराम, सीता

जयन्त इन्द्र और शची का पुत्र था। जब मेघनाद से जयन्त
घोर संग्राम हुआ था, तब जयन्त के नाना पुलोमा उस संग्राम से जय
को लेकर डरकर भाग गये थे। जयन्त की स्त्री का नाम कीर्त्ति थ
एक बार जयन्त ने भगवान् राम के पराक्रम की परीक्षा लेनी चाह
वह मूर्ख तो था ही। कौवे का रूप धारणकर सीता के चरण में चं..
मारकर भागा। जब राम ने रुधिर बहता देखा, तो पास ही पड़ी एक
सींक को लेकर धनुप पर चढ़ाया, तो वह सींक भगवान् को क्रोधित जान
अग्निबाण हो जयन्त के पीछे चली।

जयन्त ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि सभी लोकों में भागता फिरा; न्तु राम का वैरी जानकर किसी ने सहायता न की। अन्त में दुःखी कर भागा जा रहा था कि मार्ग में नारद मुनि ने उसे भगवान् राम की ुता समझाई, जिससे भयभीत हो वह भगवान् के ही चरणों में जा ारा। भगवान् ने दया कर उसको छोड़ दिया; किन्तु उस सींक से उसकी ‍ आँख फोड़ दी। यह दंड उन्होंने इसलिए दिया कि दो सुन्दर नेत्र ते हुए भी उसे यह नहीं सूझा कि सीता साक्षात् जगन्माता हैं, इनके ़णों मे चोंच कैसे मारूं! शरीर में नेत्र ही प्रधान हैं, अतएव उसकी ‍ आँख फोड़कर उसके शरीर की सुन्दरता नष्ट कर, उसका गर्व और र्वता दूर कर दी।

जरत्कारु, यायावर, मनसा, आस्तीक

'जरा' का अर्थ है 'जीर्ण-शीर्ण' तथा 'कारु' का अर्थ है दारुण। ‍ ऋषि का शरीर पहले दारुण अर्थात् कठोर और दृढ़ था; किन्तु तप जीर्ण-शीर्ण हो जाने से उनका नाम ही पड़ गया जरत्कारु। जरत्कारु षि बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य धारण करके तपस्या में लगे रहे। विवाह ों किया। कठिन तप करते-करते वे वृद्ध हो गये। उनका नियम था कि ाँ सायंकाल हो जाता, वहीं वे ठहर जाते।

एक दिन यात्रा करते समय उन्होंने देखा कि उनके कुछ पितर लोग ‍ गड्ढे मे, नीचे की ओर मुँह किये, उलटे टँगे हैं। मुँह में खस का नका है, जिसे धीरे-धीरे एक चूहा कुतर रहा है। परिचय पूछने पर ़रों ने कहा—हम लोग "यायावर" नाम के ऋषि हैं। हमारा एकमात्र ाज जरत्कारु है। वह विवाह नहीं करेगा तो हमारा वंश लोप हो यगा। हमारे मुँह का तिनका ही वंश का सहारा है। चूहा काल है जो खाये जा रहा है। जरत्कारु से कहो कि विवाह करे, तो उसकी तान हमारा उद्धार कर हमारा कष्टमोचन करे। 'पु' नामक नरक से र' त्राण करता है।

का संहार कर डाला और सन्तोष की साँस ली कि पृथ्वी का बचा-खुचा भार भी उतर गया। तब बलदेव वहीं समुद्र-किनारे एकाग्रचित्त हो, परमात्म-चिन्तन करते हुए समाधि लगाकर बैठ गये और मनुष्यलोक छोड़ दिया। उसी समय उनके मुख से एक श्वेत नाग निकलकर समुद्र मे चला गया।

बलभद्र के शरीर त्याग के उपरान्त श्रीकृष्ण एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठ गये और पूर्वकाल में गान्धारी ने जो शाप दिया था, उसे याद करने लगे। उस समय वे पद्मासन लगाये बैठे थे। दाहिनी जाँघ पर बायें चरण का लाल तलवा रक्त-कमल के समान चमक रहा था।

उसी समय "जरा" नामक एक बहेलिया, जिसने मूसल के बचे लोहे के टुकड़े से अपने बाण की गाँसी बनाई थी, उधर से आ निकला। दूर से उसे भगवान् के चरणों का लाल तलवा मृग के मुख के समान दिखलाई पड़ा। मृग समझ, उसने उसी बाण से उसे बींध दिया। इस प्रकार मुनियों के शाप को स्वयं स्वीकार कर श्रीकृष्ण ने उनका मान रखा।

बहेलिया जब पास आया, तो योगस्थित चतुर्भुज पीताम्बरधारी भगवान् को देखकर उनके चरणों पर गिर पड़ा। भगवान् ने अभयदान देकर उसे स्वर्गलोक भेज दिया और स्वयं भी परमलोक को प्रस्थान किया।

श्रीकृष्ण का सारथि "दारुक" उनके चरण-चिह्नों से उन्हें ढूँढ़कर उनका स्वधाम-गमन देख चुका था। उसने द्वारकापुरी जाकर वसुदेव और उग्रसेन को सब वृत्तान्त कह सुनाया। भगवान् के विरह में उन्होंने भी शरीर छोड़ दिया। द्वारका मे हाहाकार मच गया। यादवों की स्त्रियाँ सती हो गईं।

भगवान् के न रहने पर समुद्र ने एक ही क्षण में सारी द्वारका डुबा दी। एकमात्र श्रीकृष्ण का निवासस्थान बचा रहा और इस महासंहार के पश्चात् यदुकुल मे केवल अनिरुद्ध और रोचना के पुत्र "वज्रनाभ" ही बच गये। अर्जुन इन्हें और द्वारका की स्त्रियों और सेवकों को हस्तिनापुर ले आये और युधिष्ठिर ने "वज्रनाभ" को मथुरामंडल का राजा बना दिया।

राजा परीक्षित को हस्तिनापुर की गद्दी मिली। अर्जुन श्रीकृष्ण के विरह में अत्यन्त व्याकुल हो, अन्य पांडवों के साथ, हिमालय पर चले गये और वहीं शरीर छोड़ दिया।

जरासन्ध, बृहद्रथ, चंडकौशिक, भीमसेन, प्रवर्षण

मगध देशाधिपति बृहद्रथ निस्सन्तान थे, अतएव वे अपनी दोनों रानियों के साथ चंडकौशिक ऋषि के पास गये और उन्हें प्रसन्न किया। ऋषि को राजा पर दया आ गई। उसी समय जिस वृक्ष के नीचे वे बैठे थे, उससे एक फल उनकी गोद मे गिरा। ऋषि ने उसे अभिमंत्रित किया और राजा को दे दिया। घर जाकर फल को आधा-आधा काटकर दोनों रानियों ने खा लिया; किन्तु जब रानियों के सन्तान हुई, तो दोनों के गर्भ से शिशु शरीर का आधा-आधा भाग उत्पन्न हुआ। आधे भाग मे एक आँख, एक भुजा, एक पैर, आधा पेट, आधा मुँह और आधी कमर



जरा राक्षसी और बालक जरासंध

थी । दोनों रानियों ने डरकर उन आधे-आधे शरीर के टुकड़ों को रनिवास के बाहर फिकवा दिया। उसी स्थान पर "जरा" नाम की एक मांसाहार करनेवाली राक्षसी रहती थी। उसने उन टुकड़ों को उठाया और एक साथ जोड़ दिया। जोड़ते ही वह बालक जीवित हो रोने लगा।

जरा राक्षसी को मालूम था कि वह राजा का पुत्र है। उसे निस्सन्तान राजा पर दया आ गई। उस पुत्र को वह राजा को सोपकर चली गई। बृहद्रथ ने अपने पुत्र का नामकरण करते हुए कहा कि इस बालक को जरा ने जोड़ा (सन्धित) है, इसलिए इसका नाम जरासन्ध होगा। चंडकौशिक ऋषि ने भी सारा वृत्तान्त सुनकर आशीर्वाद दिया कि यह परम प्रतापी होगा।

बड़े होने पर जरासन्ध ने बाहुबल से अनेक राजाओं को जीतकर राजधानी में कैद कर लिया और शिव को प्रसन्न कर अतुल शक्ति प्राप्त कर नाना प्रकार के अत्याचार करना प्रारभ कर दिया। तब पाण्डवों ने उसका वध करना चाहा। अतः यह निश्चित हुआ कि जरासन्ध भीमसेन से कुश्ती लड़े। भीमसेन के पास दैवबल और वायुबल था। अतएव मल्लयुद्ध मे लड़ते-लड़ते उन्होंने जरासन्ध को उठा लिया और सौ बार घुमाकर पृथ्वी पर पटक दिया और दो खण्डों में उसे चीर डाला। इस प्रकार जरासन्ध को मारकर उसके कैदी राजाओं को कैद से छुड़ाया।

भीमसेन से भिड़ने के कई वर्ष पहले मगधराज जरासन्ध ने अठारहवीं बार तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरापुरी पर चढ़ाई कर दी थी। उसी समय यूनान से कालयवन भी, नारद मुनि के कहने से, कृष्ण से लड़ने आया हुआ था। भगवान् न रातोंरात मथुरा के सारे निवासियों को द्वारकापुरी भेज दिया और कालयवन को चतुराई से मारकर जरासन्ध के सामने से बलराम के साथ पैदल भागने लगे। जरासन्ध उन्हें देखकर हँसने लगा। उसने रथ पर चढकर सेना सहित उनका पीछा किया; पर कृष्ण और बलराम एक ऊँचे पर्वत पर चढ गये। इस पर्वत का नाम "प्रवर्षण" था, क्योंकि यहाँ साल भर हर ऋतु में

तब कृष्ण और बलराम ऊँचे पर्वत से नीचे धरती पर कूद पड़े और समुद्र से घिरी हुई द्वारकापुरी मे चले गये। इसीलिए द्वारका के भगवान् रणछोड़ कहलाने लगे।

जरासन्ध ने समझा कि श्रीकृष्ण और बलराम अग्नि में जल गये इसलिए वह अपनी सेना को लौटाकर वापस मगध देश चला गया।

जलन्धर, वृन्दा, शालग्राम, तुलसी

सिन्धुसुत जलन्धर एक दैत्य था। वह बड़ा प्रतापी राजा था। उसने जलन्धरपुर नामक एक नगर भी बसाया था। अमृत-मन्थन के उपरान्त जलन्धर ने देखा कि समुद्र के सब अमूल्य रत्न देवताओं ने ले लिये हैं, तो अपने पिता समुद्रदेव का अपमान समझकर उसने देवलोक पर चढ़ाई कर दी। देवता इस युद्ध मे इस दैत्य से हार गये। तब शिवजी के साथ इस दैत्य का घनघोर युद्ध हुआ। पर यह महाबली दैत्य मारे नहीं मरता था; क्योंकि इसकी पत्नी वृन्दा बड़ी पतिव्रता थी। उसके बल से शिवजी भी उस दैत्य को न जीत सके।

यह कठिनाई देख वैकुण्ठनाथ भगवान् एक साधु का वेष धरकर वृन्दा के निकट गये। वृन्दा उस साधु से युद्ध के समाचार पूछने लगी, तो उसी समय जलन्धर के शरीर के सब अंग वहाँ आकर गिरने लगे। उन्हें देख जलन्धर की सती स्त्री विलाप करने लगी। साधुरूप भगवान् ने कहा— 'तू तो सती है। इसका सब शरीर जोड़ दे। तेरे तेज से यह जी उठेगा।' उसने वैसा ही किया, तो जलन्धर का मृत शरीर जी उठा। वृन्दा तुरन्त उसके पैर दबाने लगी। किन्तु वह तो जलन्धर का कृत्रिम शरीर था। परपुरुष के अंग-स्पर्श से उसका पातिव्रत नष्ट हो गया, जिससे उधर संग्राम मे शिवजी ने जलन्धर को मार डाला। उसके मरते ही साधु और जलन्धर का कृत्रिम शरीर लुप्त हो गया।

वृन्दा ने सारा भेद जानकर कुपित हो भगवान् को शाप दिया कि स्त्री के विरह से तुम भी इसी प्रकार बड़े दुःखी होगे। मेरा पति ही

तुम्हारी स्त्री का हरण करेगा। इसी शाप के कारण रावण द्वारा सीता-हरण हुआ, जिससे रामचन्द्र को सीता-वियोग सहना पड़ा।

वृन्दा सती थी। उसने भगवान् से कहा कि पाप के प्रायश्चित्तस्वरूप आपको शिलारूप होना पड़ेगा, तो भगवान् ने कहा कि मुझे शिला होना स्वीकार है; किन्तु तुम्हें मेरे साथ वृक्ष बनकर शीतलता प्रदान करनी पड़ेगी। अतएव वृन्दा तुलसी के पौधे के सुन्दर रूप में आज भी घर-घर मे पूज्य मानी जाती है और भगवान् चक्र-चिह्नित शालग्राम के रूप मे तुलसीपत्र से पूजे जाते हैं। जलन्धर का नाम "शखचूड़" भी था।

जावालि

ये कश्यप वंशीय एक ऋषि थे। ये राजा दशरथ के गुरु और मंत्रियों में से एक थे। इन्होंने भरत के साथ चित्रकूट जाकर रामचन्द्र को वन से लौट जाने और राज्य करने के लिए बहुत समझाया था। इन मुनि ने अनेक प्रकार से उपदेश देकर राम को वन-गमन से विमुख किया था, किन्तु रामचन्द्र ने पिता के वचनों को न मानना अनुचित समझा और वयोवृद्ध जावालि के समझाने पर भी चौदह वर्षों के लिए वन जाना ही उचित समझा।

तपती, संवरण

भगवान् सूर्य की पुत्री का नाम तपती था। वह छाया की पुत्री और सावित्री देवी की छोटी बहिन थी और तपस्या के कारण तीनों लोकों मे 'तपती' के नाम से विख्यात थी। पुरुवश के राजा ऋक्ष के पुत्र 'सवरण' एक दिन शिकार खेल रहे थे कि उनका घोड़ा मर गया। वन मे पैदल घूमते-घामते उनकी दृष्टि एक सुन्दर कन्या पर पड़ी। राजा उस पर मुग्ध हो गये; किन्तु तपती तत्क्षण अन्तर्धान हो गई। तब राजा मूर्च्छित हो, वहीं गिर गये। घूमते-घामते महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें देखा। सारा वृत्तान्त सुन वे सूर्य के पास जाकर उनकी पुत्री तपती की याचना करने

लगे। भगवान् सूर्य ने उनकी प्रार्थना सुनकर तपती का विवाह राजा संवरण से कर दिया। इन्हीं तपती के गर्भ से राजा कुरु का जन्म हुआ, जिसके कारण कुरु वंश चला। इसीलिए कौरव और पाडव 'तपती-नन्दन' कहलाते थे।

सूर्य के पर्य्यायवाची शब्द—सहस्रांशु, आदित्य, दिवाकर, दिनकर, प्रभाकर, अर्क, मार्त्तंड, रवि, तरणि, भानु, हंस, दिनकर, अंशुमाली, ग्रहपति, मरीचि, निदाघकर, कमलबंधु।

तपस्विनी (स्वयंप्रभा), हेमा, मय

विश्वकर्मा की एक पुत्री का नाम हेमा था। वह शंकर की परम भक्त थी। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर शंकर ने उसे वरदान दिया था कि तुम्हे ब्रह्मा का दिव्यलोक प्राप्त होगा। हेमा जब ब्रह्मलोक जाने लगी, तो उसने स्वयंप्रभा नाम की अपनी एक सखी से कहा कि तुम मेरी इस गुफा में रहकर भगवान् का जप करना।

एक दिन रामचन्द्रजी के दूत सीताजी को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते इस गुफा मे आयँगे, तब तुम उनकी सेवा करना। तुम्हे रामचन्द्रजी के दर्शन होंगे, जिससे परमपद प्राप्त कर तुम मेरे निकट आ जाओगी।

स्वयंप्रभा, तपस्विनी रूप मे, उस वन की गुफा में तप करती रही। जब हनुमान, अंगद आदि वानर सीताजी को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते किष्किन्धा से चले तो मार्ग मे इस तपस्विनी से मिले थे।

जिस वन मे हेमा और उसकी सखी तपस्विनी स्वयंप्रभा रहती थी, वह मय दानव का बनाया हुआ था। उसी वन मे ऋक्षबिल नामक गुफा मे वे रहती थीं। एक दिन मय दानव ने हेमा को देखा, तो वह उस पर आसक्त हो गया। तब इन्द्र ने मय दानव को अपने वज्र से आहत कर वहाँ से भगा दिया था। उस समय से उस वन की रक्षा हेमा और स्वयंप्रभा किया करती थीं। स्वयंप्रभा दिव्य नामक गन्धर्व की पुत्री थी। हेमा और मय दानव की पुत्री का नाम मंदोदरी था।

तक्षक, जनमेजय, आस्तीक

पाताल के आठ नागों मे से एक का नाम तक्षक था। यह कश्यप और कद्रु का पुत्र था। शृंगी ऋषि का शाप पूरा करने के लिए उसने राजा परीक्षित को काटा था। इसी कारण परीक्षित के पुत्र राजा जनमेजय ने इससे बिगड़कर संसार भर के साँपों का नाश करने के लिए सर्पयज्ञ आरम्भ किया था। तक्षक इससे डरकर इन्द्र की शरण मे इन्द्रलोक



जनमेजय का सर्पयज्ञ करना

चला गया। इस पर जनमेजय ने ऋत्विजों को आज्ञा दी कि यदि इन्द्र तक्षक को न छोड़े, तो उसे भी तक्षक के साथ खींच मँगाओ और भस्म कर दो।

ऋत्विजों ने मंत्र पढ़ना प्रारम्भ कर दिया तो इन्द्र भी खिंचने लगे, तब इन्द्र ने तक्षक को छोड़ दिया। तक्षक जब अग्निकुंड के समीप पहुँचा, तो जरत्कारु के पुत्र "आस्तीक" ने जनमेजय से प्रार्थना की और तक्षक के प्राण बच गये।

ताटका, मारीच

ताटका सुकेतु नाम के एक बड़े वीर यक्ष की पुत्री थी। सन्तान न होने के कारण उसने घोर तपस्या की थी, जिसके फलस्वरूप उसे ब्रह्मा से वरदान मिला कि तुम्हे एक रूपवती पुत्री होगी। यह पुत्री ताटका थी। वचपन में वह वड़ी सुन्दरी थी। वह अत्यन्त वलवती भी थी। उसमे एक हजार हाथियों का वल था। उसका विवाह करूष देश के राजा सुन्द के साथ हुआ था।

अगस्त्य ऋषि के शाप से सुन्द की मृत्यु हो गई, तो ताटका क्रोध से पागल हो उन्हें खाने को दौड़ी। उस समय ताटका का पुत्र मारीच भी साथ था। अगस्त्य ने दोनों को राक्षस होने का शाप दे दिया। तव से वह वड़ी भयंकर मायाविनी निशाचरी हो गई। वह ऋषि-मुनियों को नाना प्रकार के दुःख देने लगी। इन राक्षसों का वध करने के लिए विश्वामित्र ऋषि अयोध्या-नरेश दशरथ के वीर पुत्र राम और लक्ष्मण को अपने आश्रम में ले गये। राम ने ताटका की दोनों भुजाएँ काट दीं, जिससे वह गर्जन करती हुई दोनों भाइयो के ऊपर टूट पड़ी। तव रामचन्द्र ने एक वाण से उसका वध कर डाला। यह देखकर ताटका का पुत्र मारीच, और सुवाहु नामक दुराचारी राक्षस, उन्हें खाने दौड़े; किन्तु रामचन्द्र ने उनपर अस्त्र का आघात किया, इससे मारीच सौ योजन की दूरी पर समुद्र के जल मे जा गिरा और सुवाहु वहीं मर गया। जव रावण के कहने से मारीच हेम मृग वनकर पंचवटी गया तव रामचन्द्र ने उसे मार डाला।

तारकासुर, कार्त्तिकेय, स्कन्दकुमार

महर्षि कश्यप के वरदान से उनकी पत्नी दिति को वज्रांग नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके समस्त अंग वज्र के समान सुदृढ़ थे। वह जन्मते ही समस्त शास्त्रों मे पारंगत हो गया। एक दिन माँ की आज्ञा से वह इन्द्र को वाँधकर ले आया, किन्तु पिता कश्यप के कहने से छोड़ दिया।

ब्रह्मा ने वराङ्गी नामक कन्या उत्पन्न कर उसका विवाह वज्राग से कर दिया। तत्पश्चात् वज्राग ने घोर तपस्या की, जिससे उसे महाबली तारक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। तारक ने भी अनेक वर्षों तक उग्र तपस्या कर ब्रह्मा को प्रसन्न कर यह वरदान माँगा कि मेरी मृत्यु केवल सात दिन की अवस्थावाले बालक से हो सके। तत्पश्चात् उस दैत्यपति तारक ने करोड़ों देवताओं को मारकर तीनों लोकों को जीत लिया।

देवताओं ने दु:खी होकर ब्रह्मा से प्रार्थना की। ब्रह्मा ने कहा, इस तारकासुर को केवल सात दिन का बालक मार सकता है और ऐसा वीर बालक केवल महादेवजी का ही हो सकता है। तब देवताओं के प्रयत्न से शिव का विवाह हिमवान् और मैना की पुत्री पार्वती से हुआ।

कुछ काल के उपरान्त कृत्तिका नक्षत्र में पार्वती के पुत्र उत्पन्न हुआ, जो कार्त्तिकेय कहलाया। उसका नाम स्कन्द, कुमार और षडानन भी रखा गया, क्योंकि वह छः मुखवाला जन्म से ही बड़ा तेजस्वी और बलवान् था। यह सुसमाचार सुन सब देवताओं ने जाकर उनकी स्तुति की और अपना संकट कह सुनाया। शीघ्र ही युद्ध की तैयारियाँ हो गईं और दु:सह दुर्जय सात दिन के वीर बालक स्कन्द ने, अपने वाहन मयूर पर बैठ, तारकासुर पर आक्रमण कर दिया। उसने अपनी दिव्य शक्ति नामक अस्त्र का प्रहार कर तारकासुर को मार डाला। तारक को मारकर स्कन्द ने समस्त दानवों का संहार किया और त्रिलोकी को जीत लिया। तब इन्द्र ने प्रसन्न होकर कार्त्तिकेय कुमार को देवताओं का सेनाध्यक्ष बना दिया।

तिलोत्तमा, सुन्द, उपसुन्द

हिरण्यकशिपु के वंश में सुन्द और उपसुन्द नामक दो दैत्य थे। ये दोनों भाई थे। इन दोनों ने तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न कर उनसे वरदान

माँगा कि हम दोनों किसी प्रकार न मर सकें। ब्रह्मा ने कहा, ऐसा वरदान देना तो कठिन है और कोई दूसरा वरदान माँगो। परन्तु सुन्द-उपसुन्द इसी वरदान को प्राप्त करने का हठ करने लगे। अन्त में उन दोनों ने प्रार्थना की कि हम दोनों भाइयों में बड़ा प्रेम है अतएव ऐसा वर दीजिए

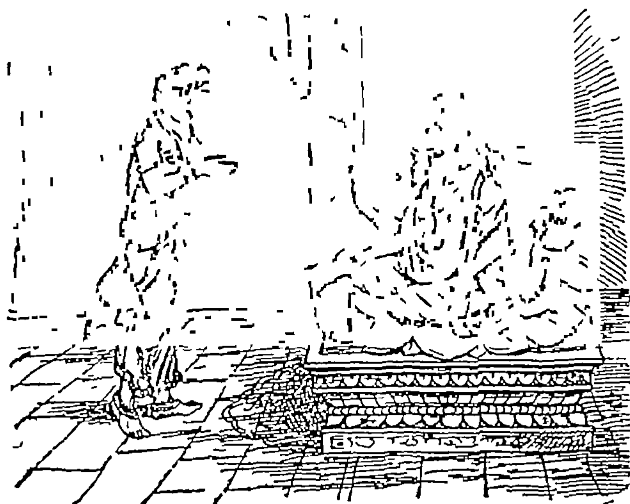


सुन्द और उपसुन्द का ब्रह्मा से वरदान माँगना

कि जब तक हम दोनों के बीच झगड़ा न हो और दोनों एक-दूसरे को मारने पर उतारू न हो जायँ, तब तक अन्य कोई व्यक्ति हमको न मार सके। अतः ब्रह्मा को ऐसा वरदान देना पड़ा।

वरदान प्राप्त कर दोनों दैत्य देवताओं पर मनमाना अत्याचार करने लगे। अत्याचार से पीड़ित और दुःखी देवतागण ब्रह्मा के पास गये। तब उन्होंने सृष्टि की समस्त सुंदर वस्तुओं से तिल-तिल अंश लेकर

विश्वकर्मा द्वारा बनाई एक अनुपम सुंदरी अप्सरा तिलोत्तमा से कहा—तुम जाकर दोनों भाइयों को मोह मे डाल दो।



ब्रह्मा का सुन्द-उपसुन्द को मोहने के लिए तिलोत्तमा को भेजना

तिलोत्तमा दोनों भाइयों के निकट जाकर दोनों से प्रेम का अभिनय करने लगी। अन्त मे इस अप्सरा के लिए दोनों भाइयों में झगड़ा होने लगा और यह झगड़ा यहाँ तक बढ़ा कि दोनों एक-दूसरे को मारने पर उतारू हो गये। इसी से दोनों दैत्यों का नाश हो गया।

तृणावर्त

श्रीकृष्ण वसुदेव और देवकी के पुत्र थे। मथुरा मे इनका जन्म कंस के कारागार मे हुआ था, पर रातों रात वसुदेव ने योगमाया-बल से उन्हें व्रजभूमि के नन्द-यशोदा के घर पहुँचा दिया और उनकी उसी समय उत्पन्न हुई लड़की को लेकर वापस लौट आये। इन्हीं नन्द-यशोदा के यहाँ कृष्ण पाले-पोसे गये।

कृष्णजी जब साल भर के हुए, उन्होंने रोते-रोते पैर उछाले तो पालने के पास रखा शकट उलट गया, जिससे सबको बच्चे की अद्भुत शक्ति पर बड़ा आश्चर्य हुआ। धीरे-धीरे नन्द के इस पुत्र का हाल कंस ने सुना, तो उसने अनेक राक्षसों को कृष्ण के मारने के लिए व्रजभूमि मे भेजा।



कृष्ण द्वारा तृणावर्त का मारा जाना

कंस का भेजा तृणावर्त नामक एक असुर, आँधी-बवंडर का रूप धारण कर, व्रज में गया। आँधी के कारण सारे व्रज मे अंधकार छा गया। धूल और कंकड़ियों की बौछार से सबकी आँखे बंद हो गई। तृणावर्त ने आते ही आँगन में बैठे हुए कृष्ण को उठा लिया और आकाश मे उड़ गया। उसने ऊपर ले जाकर कृष्ण को नीचे पटककर मार डालने का विचार किया था; किन्तु भगवान् दोनों हाथों से उसका गला पकड़कर उसे जोर से दबाने लगे। इससे तृणावर्त का दम घुटने लगा। उसने गला छुड़ाने का बड़ा प्रयत्न किया; किन्तु बेकार हुआ। अन्त मे भगवान् ने उसे गला घोंटकर मार डाला। वह आकाश से पृथ्वी पर गिरा, तो उसके सब अङ्ग चूर-चूर हो गये।

तब व्रजवासियों ने जाकर देखा कि आँधी समाप्त हो गई है। तृ
वर्त राक्षस की लाश पर भगवान् कृष्ण आनन्द से खेल रहे हैं। कृ
को सकुशल देखकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए।

त्रिजटा, अशोकवाटिका, सीता

सीता का हरण कर रावण उन्हें लंका ले गया और इन्द्र के नन्
वन के समान मनोमुग्धकारी अपनी अशोकवाटिका के एक सुन्दर भ
में ठहरा दिया। वहाँ सीताजी तपस्विनी के वेष में तप-उपवास
निरन्तर पति का चिन्तन करती रहती थीं। उनके चारों ओर भयाव
राक्षसियाँ, नाना प्रकार के अस्त्र लेकर, उन्हें डराया-धमकाया करती थं
इन विकट वेषवाली राक्षसियों में तीन जटाओंवाली त्रिजटा न
की राक्षसी थी। वह बड़ी धर्मात्मा, विवेकशील तथा प्रियंवदा थी। उ
राम के चरणों मे प्रीति थी।

एक दिन अन्य राक्षसियों के चले जाने पर त्रिजटा ने सीता
सान्त्वना देते हुए समझाया कि किस प्रकार राम और लक्ष्मण, सुग्र
की सहायता से, उन्हें छुड़ाने का उद्योग कर रहे हैं। त्रिजटा ने अप
स्वप्न का ब्योरा सुनाकर अन्य राक्षसियों से कहा कि सीताजी
सेवा करके अपना कल्याण कर लो।

त्रिजटा ने स्वप्न मे देखा था कि एक वन्दर ने लंका जला दी
और राक्षसों की सारी सेना का संहार हो गया है। रावण नंगे बद
गदहे पर सवार है, उसका सिर मुँड़ा हुआ है और उसकी बीस
भुजाएँ कटी हुई हैं। यह सुनने पर सीता के मन मे आशा बँध गई
पुनः पतिदेव से भेंट हो सकेगी।

त्रिजटा की बातें सुनकर समस्त राक्षसियों का व्यवहार कोमल ह
गया और वे नम्रतापूर्वक सीताजी की सेवा करने लगीं।

सीता के पर्य्यायवाची शब्द—वैदेही, मिथिलेशकुमारी, जानकी, राम
प्यारी, जनकनन्दिनी।

त्रिपुरारि, मय

तारकासुर के मारे जाने पर देवताओं ने दैत्यों को परास्त कर दिया। उस समय तारक के तारात्त, कमलात्त और विद्युन्माली नाम के तीन पुत्र थे। उन्होंने बड़ी भीषण तपस्या कर पितामह ब्रह्मा को प्रसन्न कर उनसे वर माँगा कि हम तीन नगरों मे बैठकर सारी पृथ्वी पर आकाश मार्ग से विचरते रहें और हमारे विमान-सदृश तीनों पुरों को देवता जब एक ही बाण से नष्ट कर सकें, तभी हमारी मृत्यु हो।

ब्रह्मा के 'तथास्तु' कहने पर तीनों दैत्य बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने मय दानव के पास जाकर तीन नगर बनाने को कहा। मतिमान् शिल्पी मय ने अपने तप के प्रभाव से तीन पुर तैयार किये: एक सोने का, दूसरा चाँदी का, तीसरा लोहे का। सोने का स्वर्ग में, चाँदी का अन्तरित्त में और लोहे का पृथ्वी मे। सोने का नगर तारात्त का था, रजतमय कमलात्त का और लोहमय विद्युन्माली का। तारात्त के पुत्र 'हरि' ने कठोर तप कर मुर्दों को जीवित करनेवाली एक बावड़ी बनवाई। धीरे-धीरे त्रिपुरों के स्वामी रात्तस घोर अत्याचार कर देवताओं को सताने लगे। देवता बेचारे असहाय थे। उनके पास नाश से बचने का उपाय ही नहीं था। अतएव ब्रह्मा की सम्मति से वे शिव के पास गये और उनसे सहायता माँगी।

शिव ने विशेष रथ और आयुध खड्ग-बाण-धनुष आदि तैयार करवाये और ब्रह्मा को सारथि बनाया। इस प्रकार नन्दीश्वर भगवान् त्रिशूल-पाणि ने क्रोध में भरकर दिव्य धनुप खींचकर विष्णु, सोम और अग्नि से बना दिव्य बाण छोड़ा। बाण छोड़ते ही तीनों पुर नष्ट हो गये और फिर उन असुरों को भस्म करके पश्चिम सागर में डाल दिया।

दैत्यों को निर्मूल कर भगवान् ने समस्त लोकों का कल्याण किया, इसी से भगवान् शंकर "त्रिपुरारि" कहलाते हैं।

शिव के पर्य्यायवाची शब्द—शंभु, महादेव, नन्दीश्वर, पशुपति, त्रिपुरारि, उमापति, त्रिलोचन, रुद्र, चन्द्रशेखर, विश्वनाथ, गिरीश, ईश।

त्रिशंकु, गालव, विश्वामित्र, सत्यव्रत

सूर्यवंशी राजा त्रय्यारुण के पुत्र का नाम सत्यव्रत (त्रिशंकु) था। सत्यव्रत महाबली, किन्तु बड़ा दुष्ट था। वह ब्राह्मणों की विवाहित स्त्रियों का अपहरण कर लेता था। पुत्र के कुकर्मों का हाल सुनकर राजा त्रय्यारुण ने पुत्र का परित्याग कर दिया। उसको निर्वासित कर वे स्वयं राज्य छोड़कर तपस्या करने चले गये। कोई राजा न होने के कारण राज्य में जब बहुत उत्पात होने लगे, तो त्रय्यारुण ने सत्यव्रत को राज्य सँभालने की आज्ञा दे दी।

राज्य पाकर सत्यव्रत को बड़ा अहंकार हो गया। तब इन्द्र ने उसके राज्य में वर्षा बन्द कर दी। उस समय महर्षि विश्वामित्र तपस्या कर रहे थे। उनकी पत्नी परिवार का भरण-पोषण करने के लिए अत्यन्त चिन्तित थी। अतएव उसने अपने पुत्र के गले में रस्सी डाल दी और सौ गायें लेकर पुत्र को बेच दिया। सत्यव्रत ने दया कर उस पुत्र को छुड़ा लिया और स्वयं उसका पालन-पोषण किया। गले में बंधन पड़ने के कारण विश्वामित्र का पुत्र गालव कहलाया।

एक वार सत्यव्रत ने सदेह स्वर्ग जाने का विचार किया; किन्तु उसके गुरु वशिष्ठ ने उसे यज्ञ करने से रोका। वशिष्ठ मुनि के पुत्रों ने समझाया; किन्तु वह न माना और हठ करता ही रहा। तब वशिष्ठ के पुत्रों ने शाप दिया कि तुम चाडाल हो जाओ। चाडाल होने से सब लोगों ने उसको त्याग दिया। फिर वह वशिष्ठ से द्वेष करनेवाले विश्वामित्र मुनि के निकट गया। विश्वामित्र यज्ञ कराने को तैयार हो गये। जब यज्ञ के लिए सब को निमंत्रण देने लगे, तो वशिष्ठ के पुत्रों ने कहा—यज्ञ करानेवाला चांडाल है और पुरोहित क्षत्रिय-पुत्र। ऐसे यज्ञ मे कौन जायगा ?

यज्ञ को असफल देखकर मुनि ने तपोबल के द्वारा सत्यव्रत को स्वर्ग भेजा। विश्वामित्र की शक्ति से स्वर्ग के द्वार तक तो वह पहुँच गया, किन्तु देवताओं ने उसे धक्का देकर नीचे गिरा दिया। पर विश्वामित्र के

पोबल से वह नीचे पृथ्वी पर न गिरा, अन्तरिक्ष में लटका रहा। इस पर श्वामित्र को बहुत क्रोध आया। उन्होंने कहा कि मैं अपने शिष्य लिए दूसरे स्वर्ग की सृष्टि करूँगा। उन्होंने आकाश में दूसरे ग्रह, क्षत्र आदि की रचना प्रारंभ कर दी। देवतागण उनकी शक्ति को खकर भयभीत हो गये।

अन्त में इन्द्र ने संधि कर यह निश्चित किया कि सत्यव्रत देवताओं समान प्रकाशमान् होकर शून्य में लटकता रहे और नक्षत्र के समान काशमान् हो; परन्तु विश्वामित्र नवीन स्वर्ग की सृष्टि न करें। इस संधि अनुसार त्रिशंकु नाम के प्रसिद्ध सत्यव्रत आकाश में, स्वर्ग और थ्वी के बीच, स्थित रहा। उलटा लटकने से उसके मुँह से लार पृथ्वी र बह चली। वही लार अपवित्र नदी कर्मनाशा नाम से प्रसिद्ध हुई। समें स्नान करने से पुण्य नष्ट हो जाते हैं।

सत्यव्रत ने एक बार वशिष्ठ मुनि की कपिला गौ को मारकर उसका ांस ऋषि-पुत्रों और ब्राह्मणों को खिला दिया था। इस प्रकार जीवन में ीन महापाप (शंकु) करने से वह त्रिशंकु नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसका हला पाप ब्राह्मण पत्नियों का हरण, दूसरा पाप पिता की आज्ञा ालन न कर उनका अपमान और तीसरा पाप गोवध कर मांस-क्षण था।

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र इन्हीं के वंशज थे।

आकाश के पर्य्यायवाची शब्द—व्योम, गगन, अभ्र, अंबर, नभ, ौ, ख, शून्य, अन्तरिक्ष।

दत्तात्रेय

महर्षि अत्रि और अनसूया की उग्र तपस्या के फलस्वरूप विष्णु ागवान् ने दत्तात्रेय नामक अवतार धारण किया और अत्रि-अनसूया के र पुत्र-रूप मे प्रकट हुए। जिस समय दत्तात्रेय का जन्म हुआ, वेद और ेदों की प्रक्रिया तथा यज्ञ सभी नष्टप्राय हो गये थे। चारों वर्णों मे

सकरता आ गई थी। अधर्म बढ़ रहा था। ऐसे समय भगवान् दत्तात्रेय ने वेदों का पुनरुद्धार किया। महर्षि ऋभुक्त से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किय था। वे बाल्यावस्था से ही आत्मचिन्तन करते रहते थे।

एक बार एकान्त की खोज में योगाभ्यास करने के लिए ये तालाव में घुस गये और तीन दिन तक उसके बाहर नहीं निकले। तीन दिन के उपरान्त ये बाहर निकले तो इनके माता-पिता, भाई-बंधु इनके योग के प्रभाव से विस्मित हो इन्हें और भी अधिक घेरकर रहने लगे। तब दत्तात्रेय ने एक दूसरा उपाय सोचा। वे फिर तालाब में घुस गये औ तीन दिन के पश्चात् अनेक अप्सराओं के साथ, हाथ में मदिरा का घड़ा लिये हुए, विचित्र ढंग से बाहर निकले। उन्हें इस रूप में देखकर सब निन्दा करके अलग हो गये। भगवान् की लीला का रहस्य कोई न समझा। तत्पश्चात् ये बड़े भारी तत्त्वज्ञानी हो गये और अलर्क, प्रह्लाद, यदु आदि को इन्होंने उपदेश दिया।

कल्याण की कामना से उन्होंने चौबीस गुरु बनाये। उनके नाम हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भौरा, मधुहारी, हाथी, हिरन, मछली, वेश्या, कुरर पत्ती, बालक, कन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, मकड़ी और भृंगी नामक कीड़ा।

इन्होंने हैहयराज कार्तवीर्य को अजेय बनाने के लिए उसकी दो भुजाओं को एक हजार बना दिया था, जिससे वह 'सहस्रार्जुन' कहलाया।

दत्तात्रेय मुनि सह्य पर्वत की गुफा में रहते थे। एक बार जंभ नामक दैत्य के आक्रमण से स्वर्ग का स्वामी इन्द्र हार गया। हारे हुए दुखी देवता बृहस्पति और वालखिल्य महर्षियों के पास मंत्रणा के लिए गये। बृहस्पति ने उन्हें अत्रिपुत्र दत्तात्रेय के पास जाने को कहा। जिस समय देवगण दत्तात्रेय के निकट पहुँचे, उस समय दत्तात्रेय के पास लक्ष्मीजी बैठी थीं। देवताओं ने सहायता माँगी, तो दत्तात्रेय ने कहा—मैं तो इस नारी के साथ रहने से दूषित हूँ। मैं क्या कर सकता हूँ?

देवताओं ने कहा—ये तो जगत् की माता लक्ष्मी हैं। आप पर हमें विश्वास है। आप ही हमारे कष्ट दूर करें।

दत्तात्रेय ने हँसकर कहा—अच्छा, तो किसी उपाय से दैत्यों को मेरे सामने भेज दो।

दैत्य गये तो लक्ष्मी के रूप पर मुग्ध हो गये। उन्होंने लक्ष्मीजी का हरण करना चाहा। दैत्यसेना ने जाकर लक्ष्मीजी को पालकी में बैठाया और पालकी सिर पर उठा अपने स्थान की ओर चले। तभी दत्तात्रेय ने हँसकर देवताओं से कहा—'बड़ा अच्छा अवसर है। लक्ष्मी दैत्यों के सिर पर चढ़ी हुई हैं। पर-स्त्री के स्पर्श से इनके पुण्य भी नष्ट हो गये हैं। अतएव इस अवसर पर वे निस्तेज हैं। तुम लोग शीघ्र ही उन पर आक्रमण कर दो।' दत्तात्रेय की आज्ञा पाकर देवताओं ने युद्ध किया और दैत्यों की सेना को नष्ट कर दिया। इस प्रकार इन्द्र को पुनः अपना स्वर्ग प्राप्त हो गया।

दक्ष प्रजापति, शिवजी

दक्ष का जन्म सृष्टि के प्रारंभ में, ब्रह्मा के दाहिने अँगूठे से, हुआ था। दक्ष ने ब्रह्मा की आज्ञा से सृष्टि बनाई। दक्ष की बहुत-सी पुत्रियाँ थीं। दक्ष शिवजी से बहुत चिढ़ते थे; क्योंकि दक्ष प्रवृत्तिमार्गी थे, सृष्टि बढ़ाने के पक्ष में थे और शंकर निवृत्तिमार्गी—संहार के पक्ष में थे।

एक दिन शिव ध्यान-मग्न थे। सब देवता उन्हें घेरकर बैठे हुए थे। दक्ष प्रजापति के आने पर सब उठ खड़े हुए; परन्तु शंकर ज्यों के त्यों बैठे रहे। दक्ष ने इसे अपना अपमान समझा। वे बिगड़ उठे और शंकर को शाप दे दिया कि इनको अब से यज्ञ में भाग न मिलेगा। सती को इस शाप की बात न मालूम हो सकी।

प्रजापति के यहाँ यज्ञ की बात सुनकर, शंकर की अनुमति बिना ही, सती पिता के घर चली गईं, किन्तु वहाँ शंकर का भाग न देखकर योगाग्नि में जल गईं। इस पर शंकर के गणों ने यज्ञ ध्वंस कर डाला

और दक्ष का सिर काटकर यज्ञकुंड में डाल दिया। पर शंकर ने बकरे का सिर लगाकर दक्ष को जीवित कर दिया।

दधीचि, विश्वरूप, वृत्रासुर

एक बार देवराज इन्द्र को बड़ा घमंड हो गया। गर्व के कारण उसकी बुद्धि नष्ट हो गई और अपने को त्रिलोकी का स्वामी समझकर उसने कुलगुरु बृहस्पति का अपमान कर दिया। वे रूठ कर अन्यत्र चले गये। दैत्यों ने सुअवसर देखकर, इन्द्र पर चढ़ाई कर दी। इन्द्र डरकर ब्रह्मा के पास गया। उन्होंने विश्वकर्मा त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को पुरोहित बनाकर काम चलाने की सलाह दी। विश्वरूप के, नारायण कवच के प्रभाव से, इन्द्र की जीत हो गई। फिर इन्द्र ने शिल्पी विश्वकर्मा विश्वरूप के पौरोहित्य में एक यज्ञ किया। विश्वरूप चुपके-चुपके दैत्यों को भी आहुति दे दिया करते थे। वे देववंश में उत्पन्न थे, किन्तु माता दानव वंश की थी। यह बात जब इन्द्र को ज्ञात हुई, तो उसने विश्वरूप को मार डाला। इससे इन्द्र को ब्रह्म हत्या लगी। तीन सिर और तीन मुखवाले विश्वरूप की मृत्यु से उसके पिता त्वष्टा ऋषि को बड़ा क्रोध आया और उसने यज्ञ करके वृत्रासुर को उत्पन्न किया। उसने त्वष्टा की आज्ञा से स्वर्ग में जाकर इन्द्र को युद्ध के लिए ललकारा; किन्तु इन्द्र छिप गया। फिर घबराकर वह ब्रह्मा के पास गया। उन्होंने कहा—इस राक्षस की मृत्यु तो केवल दधीचि ऋषि की हड्डियों से बने हुए वज्र से हो सकती है।

दधीचि बड़े परोपकारी भगवद्भक्त थे। इन्द्र ने जाकर उनसे प्रार्थना की और सब हाल कह सुनाया। इस पर दधीचि सहर्ष हड्डियाँ देने को तैयार हो गये। उनकी हड्डियों से वज्र बनाया गया और उससे वृत्रासुर आदि अनेक असुरों का वध किया गया। दधीचि का अपूर्व त्याग देखकर भगवान् ने उन्हें मुक्ति प्रदान कर दी।

दंडकवन, शुक्राचार्य

राजर्षि इच्वाकु के पुत्रों में एक दंडक नाम का उद्दंड बालक था। वह बड़ा क्रूर और दुराचारी था। उसे विन्ध्याचल और नीलगिरि के बीच में राज्य दिया गया। एक दिन वह घूमता-घामता दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य के आश्रम में पहुँचा। वहाँ उनकी ज्येष्ठ पुत्री अरजा को देखकर वह उस पर मुग्ध हो गया और उसके साथ अशिष्ट व्यवहार किया।

अरजा ने सारी बातें अपने पिता से कह दीं, तो शुक्राचार्य ने शाप दिया कि जिस देश का राजा ऐसा हो, उस देश का शीघ्र से शीघ्र नाश हो जाय। सात दिन तक धूल की वर्षा होने से दण्डक का राज्य नष्ट हो गया।

ऋषि की घोषणा से वहाँ के निवासी देश छोड़कर पहले ही चले गये थे। सातवें दिन पशु-पक्षियों रहित सारा राज्य नष्ट भ्रष्ट हो धूलमय हो गया और उसका नाम दण्डकारण्य पड़ गया।

वनवास के समय जब भगवान् रामचन्द्रजी वहाँ पहुँचे तो फिर से वह वन हरा-भरा होकर पवित्र हो गया। यह वन विंध्य पर्वत से गोदावरी नदी के तट तक फैला था। इसी वन में रामचन्द्रजी वनवास के समय बहुत दिनों तक रहे थे। यहीं शूर्पनखा के नाक-कान कटे थे और सीता-हरण हुआ था।

दम्भोद्भव, नर-नारायण

दम्भोद्भव नामक एक चक्रवर्ती राजा था। वह बड़ा अभिमानी था। एक दिन गर्व में अंधा होकर उसने अपने राज्य के कई ब्राह्मणों और क्षत्रियों से कहा—'क्या मेरे समान पृथ्वी पर और भी कोई वीर है?' उसकी गर्वोक्ति सुनकर ब्राह्मणों को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—'हाँ, एक नहीं, दो हैं। वे गन्धमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं। उनके समान तीनों लोकों में कोई नहीं है।'

यह सुनकर चतुरंगिणी सेना लेकर दम्भोद्भव गन्धमादन पर्वत ओर चला। वहाँ पहुँचने पर नर-नारायण ने उसका यथोचित सत्व किया और आने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया कि पृथ्वी पर ब में मेरे समान अन्य कोई नहीं है। मैं अब आपके बल की परीक्षा ले आया हूँ। नर-नारायण ने कुछ सींकें पृथ्वी पर से उठा लीं। दम्भोद्भ ने बाण-वर्षा प्रारंभ ही की थी कि उन सींकों से नर-नारायण भगवान् उसको देखते ही देखते बेध दिया। क्षण भर में वह मूर्च्छि होकर गिर पड़ा। चेतना होने पर वह अत्यन्त लज्जित होकर न नारायण के पैरों पर गिर पड़ा। उसकी आर्त्त विनय सुनकर मदभं भगवान् ने उसे अभयदान देकर कहा—'जाओ, किन्तु अब गर्व मत कर पवित्र बुद्धि से धर्म मार्ग पर चलना।' यह सुनकर, नर-नारायण वन्दना कर दम्भोद्भव अपनी सेना लेकर लौट गया।

दशरथ

अयोध्या के सूर्यवंशी राजा दशरथ ने पुत्रप्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि य किया, तो ब्रह्मा की आज्ञा से अग्निकुंड मे से एक विशालकाय पु प्रकट हुआ। उस पुरुष के हाथ मे खीर से परिपूर्ण एक दिव्य सुवर्ण पात्र था। रानियों के खाने के लिए खीर देकर वह पुरुष अन्तर्धान गया। राजा दशरथ ने खीर का आधा भाग अपनी बड़ी रानी कौशल को दे दिया। फिर बचे हुए आधे का आधा भाग सुमित्रा को दिय तत्पश्चात् जो खीर बची, उसका आधा भाग कैकेयी को और आ भाग सुमित्रा को दे दिया।

यथासमय कौशल्या ने राम को, कैकेयी ने भरत को और सुमि ने लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न दो पुत्रों को जन्म दिया। वशिष्ठ मुनि ने उन सभी संस्कार कराये।

जब विश्वामित्र मुनि राजा दशरथ से राम-लक्ष्मण को, आश्रम विघ्न डालनेवाले राक्षसों को मारने के लिए माँगने गये तो दशरथ, पुत्र-वियोग की आशंका से, दुःखी हो मूर्च्छित हो गये।

श्येनी और अरुण का पुत्र जटायु दशरथ का परम मित्र था। एक बार राजा दशरथ ने शनि पर आक्रमण करने का विचार किया; किन्तु शनि ने ऐसी आँधी उड़ाई कि दशरथ का रथ उलट गया। तब जटायु ने आकर दशरथ की प्राणरक्षा की थी। कैकेयी को वरदान देने से दशरथ को अन्त समय पुत्रवियोग सहना पड़ा। श्रवणकुमार के अंधे माता-पिता ने उन्हे यही शाप दिया था।

दावानल

श्रीकृष्ण ने जिस दिन कालिय-दमन किया, उस दिन संयोग से ब्रजवासी और गौएँ सब वन में ही रह गये थे। बात यह है कि कालिय-दमन करते-करते अँधेरा हो गया था। घर दूर होने के कारण वे ब्रज में नहीं गये। वहीं यमुना के तट पर सो रहे। गर्मी के दिन थे। वन सूख गया था। आधी रात के समय वन मे आग लग गई। चारों ओर से अग्नि की लपटों ने ब्रजवासियों को घेर लिया। वे घबराकर जाग पड़े और श्रीकृष्ण से बचाने के लिए प्रार्थना करने लगे। श्रीकृष्ण ने कहा—'घबराओ नहीं। मै अभी इस आग को बुझाये देता हूँ। तुम लोग आँखें मूँद लो।' इतना कहकर भगवान् उस भयंकर अग्नि को पी गये और पल भर मे अग्नि को बुझा दिया।

ग्वालबालों ने आँखें खोलकर देखा, तो अपने को वन मे पाया। वे बड़े विस्मित हुए और सुबह होते ही अपनी अपनी गौएँ लेकर वृन्दावन लौट गये।

दिति, मरुत्

दिति कश्यप ऋषि की स्त्री और दैत्यों की माता थी। जब इसके सब पुत्र इन्द्र और अन्य देवताओं द्वारा मार डाले गये, तो इसने कश्यप से कहा कि मैं ऐसा पुत्र चाहती हूँ, जो इन्द्र का भी दमन कर सके। कश्यप

ने कहा—इसके लिए तुम्हें सौ वर्ष तक गर्भ धारण करना पड़ेगा और गर्भकाल में बहुत ही पवित्रता-पूर्वक रहना पड़ेगा।

दिति के गर्भ रहा, तो ९९ वर्ष तक वह बहुत पवित्रता-पूर्वक रही। अन्तिम वर्ष वह एक दिन, रात के समय, बिना हाथ-पैर धोये जाकर र रही। इन्द्र तो ताक में था ही। इन्हें अपवित्र अवस्था में पाकर व इनके गर्भ में घुस गया और अपने वज्र से जरायु के सात टुकड़े क डाले। उस समय शिशु इतने जोर से रोया और चिल्लाया कि इन्‍ घबरा गया। तब उसने सात टुकड़ों में से हर एक के फिर सात टुक किये। ये ही ४९ खंड मरुत् नामक पवन हैं। मरुत् से उत्पन्न होने कारण हनुमान् मारुति कहलाते थे।

पवन के पर्य्यायवाची शब्द—वायु, समीर, मारुत्, जगप्राण, अनिल वात, प्रकंपन, प्रभंजन, नभप्राण, मृगवाहन, पवमान।

दिलीप, सुदक्षिणा

इक्ष्वाकुवंशी राजा सगर के पोते तथा रघु के परदादा का नाम दिलीप था। राजा दिलीप एक बार स्वर्ग से मृत्युलोक में अपनी स्त्री सुदक्षिणा से मिलने के लिए आते समय स्वर्गीय गौ सुरभि की पूज करना भूल गये थे। इसलिए गौ ने उन्हें शाप दिया कि जब तक तुम मेरी बेटी नन्दिनी की सेवा न करोगे, तब तक तुम्हें पुत्र न होगा। इस पर नन्दिनी की सेवा करने लगे।

एक बार एक शेर ने नन्दिनी को खाना चाहा। दिलीप ने उसकी रक्षा के लिए अपने-आपको उस शेर के आगे डाल दिया। इससे सुरभि प्रसन्न हो गई और दिलीप की स्त्री सुदक्षिणा के गर्भ से रघु की उत्पत्ति हुई। ये बड़े बुद्धिमान् थे। इन्होंने तीनों लोकों और तीनों अग्नियों को जीत लिया था।

दिवोदास

दिवोदास काशी के राजा थे। इनके पिता का नाम सुदेव था। एक वार इन्द्र ने दिवोदास के शत्रु शंवरासुर का वध करके एक पुरी का निर्माण किया था। उस पुरी का नाम वाराणसी या काशी था।

दिवोदास ने इसी काशी में अपना राज्य स्थापित किया। कुछ दिनों के उपरान्त हैहय वंश के क्षत्रियों ने उस पुरी पर आक्रमण किया। दिवोदास पराजित हो गये, तो वे भरद्वाज मुनि की शरण में गये।

भरद्वाज मुनि की सम्मति से दिवोदास ने एक वीर पुत्र के लिए यज्ञ किया। उस वीर पुत्र की सहायता से दिवोदास ने हैहयगणों को पराजित कर दिया। इनके सुशासन की परीक्षा के लिए शिवजी ने ब्रह्मा को काशी भेजा था। ब्रह्मा ने वहाँ जाकर एक यज्ञ किया और देखा कि परोपकारी दिवोदास के राज्य में सर्वत्र सुख, शान्ति और धर्म का राज्य है।

देवताओं ने इन्हे आकाश से पुष्प तथा रत्न दिये थे, इस कारण इनका नाम दिवोदास पड़ा। विश्वनाथ शिवजी ने वड़ी कुशलता से दिवोदास से काशी नगरी ग्रहण की थी। महर्षि गालव जव गुरु-दक्षिणा के लिए आठ सौ श्यामकर्ण ढूँढ़ रहे थे, तो वे दिवोदास के पास काशी भी गये थे। गालव मुनि ने इन्हे ययाति की पुत्री माधवी देकर दो सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे थे। दिवोदास को जव पुत्र उत्पन्न हुआ, तो उन्होंने माधवी गालव मुनि को वापस कर दी, जिससे वे अन्य राजाओं से और घोड़े भी एकत्र कर सकें।

द्विविद, वलदेव

त्रेतायुग में द्विविद नाम का एक वन्दर सुग्रीव का वड़ा मित्र और मंत्री था। वह वड़ा वली था। वह अपने भाइयों के साथ रामचन्द्रजी की ओर से रावण से लड़ा था। द्विविद वन्दर द्वापर में श्रीकृष्ण के समय भी जीवित था। भौमासुर से उसकी वड़ी मित्रता थी। जव श्रीकृष्ण ने

भौमासुर को मार डाला, तो अपने मित्र का बदला लेने के लिए वा बन्दर द्वारकापुरी मे जाकर बड़ा उपद्रव करने लगा।

द्विविद के शरीर में दस हजार हाथियों का बल था। वह नाना प्रकार के उपद्रव कर द्वारका के निवासियों पर अत्याचार करने लगा। एक दिन रैवतक पर्वत पर बलदेवजी आमोद-प्रमोद कर रहे थे कि द्विविद वहाँ जाकर उत्पात करने लगा। इससे बलदेवजी को क्रोध आ गया। उन्होंने उसे ललकारा। अन्त में युद्ध करके बलदेवजी के हाथ से द्विविद मारा गया।

दुन्दुभि, शिव, व्याघ्रासुर

दुन्दुभि नामक दैत्य प्रह्लाद का मामा था। देवताओं और ब्राह्मणों से वह बहुत द्वेष करता था। उसने ब्राह्मणों को मार डालने का बार-बार उद्योग किया। दुन्दुभि काशी मे जाकर ब्राह्मणों को पकड़कर खा जाता था। वह दिन भर मुनियों का वेश धारण कर ध्यान लगाकर बैठा रहता और रात्रि को व्याघ्र का रूप धारण कर ब्राह्मणों को खा जाता था।

एक बार व्याघ्रासुर काशी के एक शिव-भक्त को मारने जा रहा था कि शिवजी प्रकट हो गये। भगवान् ने उसे बगल में दबाकर पीस डाला। उस समय से शिवजी व्याघ्रेश्वर कहलाने लगे। इसी प्रकार उन्होंने एक गजासुर को मारा था और उसका चर्म निकालकर पहन लिया था।

दुर्वासा, और्व, इन्द्र

एक बार महर्षि अत्रि और उनकी पत्नी अनसूया ने, उत्तम सन्तान की प्राप्ति के लिए, उग्र तपस्या की। अनसूया के पातिव्रत्य से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनो ने इन्हें दर्शन दिये और पुत्ररूप मे इनके घर जन्म लेने का वचन दिया। ब्रह्मा से चन्द्रमा, विष्णु से

दत्तात्रेय और शंकर के अंश से दुर्वासा का जन्म हुआ। महर्षि अत्रि के रजोमय तेज से चन्द्रमा का, सत्वमय तेज से दत्तात्रेय का और तमोमय तेज से दुर्वासा मुनि का जन्म हुआ।

हैहयराज कृतवीर्य बड़ा अत्याचारी राजा था। उसने एक वार अत्रि मुनि का अपमान कर दिया। यह देखकर अत्रि के तृतीय पुत्र दुर्वासा, जो उस समय माता के पेट में ही थे, क्रोध मे भरकर वाहर निकल आये और हैहयराज को तत्काल भस्म करने को तत्पर हो गये।

दुर्वासा मुनि शरीर, दृष्टि, मन और वाणी से वड़े उद्धत और क्रोधी थे। इनके डर से कृतवीर्य के पुत्र कार्तवीर्य ने तप कर दत्तात्रेय को प्रसन्न किया, जिससे उसकी दो भुजाएँ सहस्र भुजाएँ हो गईं। धर्म में दुर्वासा का दृढ़ विश्वास देखकर अत्रि मुनि ने पुत्र का नाम दुर्वासा रखा। उनका विवाह और्व मुनि की पुत्री कंदली से हुआ।

विवाह के समय दुर्वासा ने प्रतिज्ञा की थी कि वे पत्नी के सौ तक अपराध क्षमा करेंगे, अधिक नहीं। प्रतिज्ञा के अनुसार सौ अपराध क्षमा कर, फिर अपराध करने पर उन्होंने क्रोधाग्नि से उसे भस्म कर दिया।

और्व मुनि ने अपनी प्रिय पुत्री की दुर्दशा और मृत्यु से दुःखी होकर दुर्वासा मुनि को शाप दिया कि एक दिन तुम्हारा सारा घमंड चूर हो जायगा। इसी शाप के कारण दुर्वासा मुनि को राजा अम्वरीष के चरणों में गिरकर उनसे क्षमा माँगनी पड़ी।

एक वार दुर्वासा मुनि ने एक अप्सरा के पास स्वर्गीय पुष्पों की एक सुन्दर माला देखी। वह सुगन्धित माला उन्होंने अप्सरा से माँग ली। आगे जाने पर उन्हे मार्ग मे ऐरावत हाथी पर बैठे हुए इन्द्र मिले। इन्द्र ने उन्हे प्रणाम किया, तो प्रसन्न हो दुर्वासा ने वह माला प्रसाद रूप मे उन्हें दे दी। इन्द्र ने वह माला ऐरावत हाथी के मस्तक पर रख दी। ऐरावत उस समय गंध से मदमस्त हो रहा था। उसने सूँड़ से माला उठाकर नीचे गिरा दी और पैरों से कुचल डाली।

अपने प्रसाद का यह अपमान देखकर दुर्वासा ने इन्द्र को शाप दे डाला कि तुम्हारा समस्त ऐश्वर्य और श्री नष्ट हो जाय। इसी शाप के

कारण इन्द्र की लक्ष्मी समुद्र में समा गई। फिर लक्ष्मी समुद्र-मंथन होने पर अन्य रत्नों के साथ निकलीं।

इनके शाप और कार्यों की अनेक कहानियाँ पढ़कर ज्ञात होता है कि वे उग्र स्वभाव के, क्रोधी और बिना सोचे-विचारे शाप देने को तैयार बैठे रहते थे।

दुष्यन्त, मेनका, कण्व, शकुन्तला

महाकवि कालिदास ने महाभारत की कथा को इस प्रकार लिखा है—हस्तिनापुर के राजा पुरुवंशी एति का पुत्र दुष्यन्त अपनी सेना के साथ आखेट खेलने के लिए निकला। वन में घूमते-घूमते वह कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचा। वहाँ कण्व ऋषि की तपस्विनी कन्या शकुन्तला ने उसका अतिथि-सत्कार किया। उसके रूप पर मुग्ध होकर, उसने मुनिकन्या का परिचय पूछा, तो ज्ञात हुआ कि शकुन्तला विश्वामित्र मुनि की पुत्री है। एक बार विश्वामित्र मुनि की तपस्या को भंग करने के लिए इन्द्र ने स्वर्ग की अप्सरा मेनका को भेजा था, जिससे शकुन्तला का जन्म हुआ।

शकुन्तला का लालन-पालन कण्व ऋषि ने किया था। कण्व ऋषि उस समय कहीं बाहर गये हुए थे। दुष्यन्त ने शकुन्तला से गान्धर्व विवाह कर लिया और उसे अपनी अँगूठी पहनाकर राजधानी लौट गया।

एक दिन शकुन्तला, प्रेम में अन्यमनस्का हो, दुष्यन्त के ध्यान में मौन बैठी थी कि दुर्वासा मुनि उधर से आ निकले। शकुन्तला से उत्तर न पाकर उन्होंने अपने को अपमानित समझा और क्रोध में भरकर शाप दिया कि तू जिसकी चिन्ता करती है, वह तुझे भूल जायगा। शकुन्तला की सखियों ने शाप सुना तो मुनि से क्षमा माँगी जिस पर उन्होंने इतना ही कहा कि अच्छा, अँगूठी देखकर उसे सब बातें याद आ जायँगी।

कण्व ऋषि ने शकुन्तला को गर्भवती देखकर, उसे दुष्यन्त के पास भेजने का निश्चय किया। संयोग से मार्ग में एक नदी में चुल्लू से जल पीते समय शकुन्तला की उँगली से अँगूठी जल में गिर गई। वह दुष्यन्त के राज-दरबार में पहुँची तो राजा उसे पहचान न सका, और गर्भवती शकुन्तला का अपमान करने लगा। तब शकुन्तला दुःखी हो विलाप करने लगी, तो मेनका आकाश से प्रकट हुई और शकुन्तला को कश्यप मुनि के आश्रम में ले गई। वहाँ उसे "सर्वदमन" नामक पुत्र हुआ। तत्पश्चात् मछुओं ने जब मछली के पेट से निकालकर अँगूठी राजा को दी, तो उसे सब पुरानी घटना याद आ गई। फिर अकस्मात् एक दिन उसने कश्यप मुनि के आश्रम मे सिंह से खेलते हुए सर्वदमन को देखा, तो उसे पहचान कर शकुन्तला को राजधानी में ले गया।



दुर्वासा मुनि का शकुन्तला को शाप देना

देवकी, कंस, वलदेव, वलि, कृष्ण, योगमाया

यदुवंश में उत्पन्न (कंस के पिता) उग्रसेन के भाई का नाम देवक था। देवक की पुत्री का नाम देवकी था। देवकी का विवाह पांडवों की माता

कुन्ती के भाई वसुदेव से हुआ था। कंस अपनी चचेरी बहिन और वहिनोई को बड़े स्नेह से रथ में बिठाकर सुसराल पहुँचाने जा रहा था कि आकाशवाणी हुई 'मूर्ख, अपनी जिस बहिन को तू, रथ में लिये जा रहा है, उसका आठवाँ पुत्र तेरा काल होगा।' यह सुनते ही कंस रथ को वापस मथुरा ले गया और वसुदेव-देवकी को कारागार में डाल दिया। उनको मारा नहीं, क्योंकि वसुदेव ने देवकी के प्राण बचाने के लिए यह कह दिया कि हमारे जितने बालक होंगे, हम तुम्हें दे देंगे।

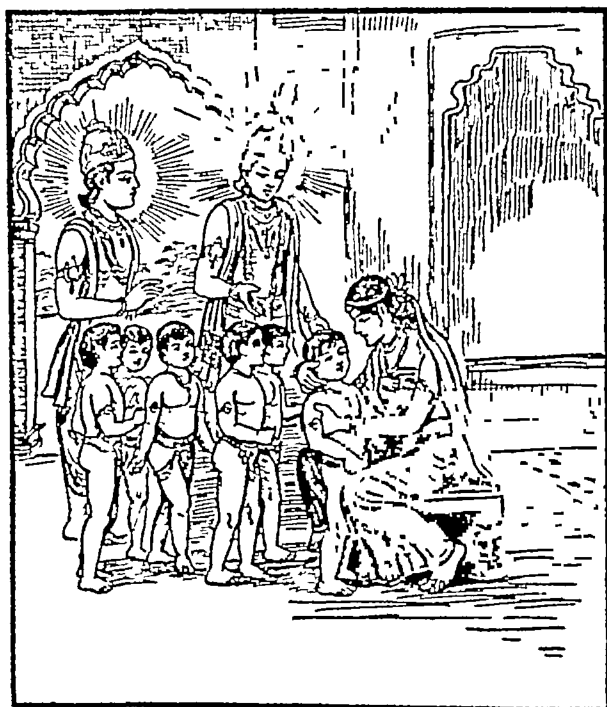
पहला पुत्र उत्पन्न हुआ तो कंस को दया आ गई और वह उसे देवकी-वसुदेव को वापस करने जा ही रहा था कि नारद आ गये। कंस ने वसुदेव से कहा—मुझे डर तो देवकी के आठवें गर्भ से है। इसे तुम ले जाओ। किन्तु नारद ने जब धरती पर आठ लकीरें खींचकर समझाया कि आदि से गिनने पर जैसे अन्त की लकीर आठवीं होती है, वैसे ही अन्त से गिनने पर आदि की लकीर आठवीं होगी। बस, कंस डर गया और उसने उस बच्चे को पत्थर पर पटककर मार डाला।

इसी तरह देवकी के छः बच्चों को उसने मार डाला। सातवाँ लड़का शेषनाग का अवतार था, किन्तु वह योगमाया से वसुदेव की दूसरी स्त्री रोहिणी के पेट मे चला गया, जिससे बलदेव का जन्म हुआ। सातवाँ पुत्र देवकी का मरा हुआ पैदा हुआ। फिर आठवाँ पुत्र श्रीकृष्ण भगवान् के रूप में हुआ, तो सब द्वारपाल, पहरेदार अचेत हो गये। फाटकों के ताले टूट गये। रातोंरात वसुदेव जमुना पार कर गोकुल गये और यशोदा की, उसी समय उत्पन्न, पुत्री से बदल कर वापस लौट आये।

कंस ने जब आठवीं सन्तान के विषय मे सुना, तो दौड़ा आया और झटपट लड़की को ले पत्थर पर पटक दिया। किन्तु वह बालिका तो योगमाया थी। वह अष्टभुजा देवी के रूप मे आकाश में चली गई और जाते समय कह गई कि तुझे मारनेवाला बालक जन्म ले चुका है। मुझे मारने से तुझे क्या लाभ हुआ?

योगमाया के अन्तर्धान होने पर कंस को चिन्ता हो गई। जहाँ भी

डालता। अन्त में कंस श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया। इस घटना के वहुत वर्ष उपरान्त द्वारकाधीश कृष्ण के अनेक चमत्कारों को देवकी ने सुना। सुदामा को ऐश्वर्यप्राप्ति, सान्दीपनि गुरु के पुत्र का यमपुरी से वापस आना आदि सुनकर एक दिन देवकी ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि मैं चाहती हूँ, तुम मेरे उन पुत्रों को ला दो जिन्हें कंस ने मार डाला था।



कृष्ण और वलराम ने देवकी को लाकर छः पुत्र दिये

देवकी की वात सुनकर श्रीकृष्ण और वलराम दोनों ने, योगमाया का आश्रय लेकर सुतल लोक में प्रवेश किया। वहाँ दैत्यराज वलि राज्य कर रहे थे। उन्होंने झट-पट उठकर उनका स्वागत किया। दैत्यराज वलि ने उनकी स्तुति की और अपने योग्य सेवा पूछी। श्रीकृष्ण ने कहा कि स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभृत् और घृणि नाम के छः देवता थे। वे यह देखकर, कि ब्रह्माजी अपनी पुत्री से समागम करने को उद्यत हैं, हँसने लगे। उनके हँसने पर सृष्टि के रहस्य को न समझने के कारण ब्रह्माजी ने शाप दे दिया। शाप के कारण ही पृथ्वी पर उन छः देवताओं को जन्म लेना पड़ा। देवकी से उत्पन्न होने के कारण शीघ्र

ही उनकी मृत्यु हो गई। अब माता देवकी उन पुत्रों के लिए अत्यन्त शोकातुर हो रही हैं, अतः तुम उन्हें ले आओ।

दैत्यराज बलि ने उनकी पूजा की और बालकों को लाकर श्रीकृष्ण के सामने खड़ा कर दिया। श्रीकृष्ण और बलराम ने उन पुत्रों को लाकर देवकी को दे दिया। देवकी वात्सल्य-स्नेह से भर गईं। उन छः देवताओं का शाप से उद्धार हो गया था, अतएव वे देवलोक को चले गये।

कृष्ण के पर्य्यायवाची शब्द—बलवीर, गोवर्धनधारी, गोपाल, गिरिधरगोपाल, श्यामसुन्दर, देवकीनन्दन, गोपीनाथ, माखनचोर, वासुदेव, कंसारि।

बलराम के पर्य्यायवाची शब्द—बलदाऊ, बलदेव, बलराम, हलधर, बलभद्र, बल।

देवव्रत, भीष्म, द्यौ, नन्दिनी, वसु, शरशय्या

कुरुवंशी राजा शान्तनु एक दिन मृगया खेलने गये। जब वे लौट रहे थे, तो गंगा के किनारे उन्होंने गंगा नाम की एक अत्यन्त रूपवती स्त्री को देखा। उस पर मुग्ध होकर उन्होंने उसे अपनी रानी बना लिया। कुछ समय बीतने पर रानी के एक पुत्र हुआ, किन्तु जन्मते ही वह उसे गंगा मे फेंक आई। इसी प्रकार सात पुत्रों को उसने गंगा में बहा दिया। अन्त मे जब आठवें पुत्र को वह फेंकने चली, तो राजा पुत्रशोक मे विह्वल हो, रानी के पीछे-पीछे दौड़े और बच्चे को गंगा में न फेंकने दिया। तब रानी ने कहा—'मै महर्षि जह्नु की कन्या गगा हूँ। महर्षि वशिष्ठ की नन्दिनी गौ का हरण करने के अपराध में वसु नामक आठों देवताओं को मनुष्य योनि मे जन्म लेने का शाप मिला। अतः वे आठों मेरे पास आये और मुझसे प्रार्थना की कि ऐसा कीजिए जिससे बहुत दिनों तक हमे मर्त्यलोक मे न रहना पड़े। इसी कारण मेरे सात पुत्र पुनः देवलोक मे चले गये। यह 'द्यौ' नाम का वसु है। इसी ने गौ का दूध पीकर स्थिर यौवन प्राप्त करने के लिए गौ चुराई

थी। अतः इसे चिरकाल तक मनुष्य-लोक मे रहना पड़ेगा और मै इसका लालन-पालन करूँगी।' इतना कहकर गंगादेवी अपने पुत्र को लेकर अन्तर्धान हो गईं।

एक दिन शान्तनु फिर शिकार खेलने गये, तो देखा कि गंगा नदी का जल वह नहीं रहा है, रुक गया है। विस्मित हो उन्होंने आगे बढ़ कर देखा कि एक मनस्वी बालक ने अपनी बाणवर्षा से गंगा की धारा को रोक रखा है। वह राजा का आठवाँ पुत्र देवव्रत था। गंगा नदी ने उसी समय मानवी रूप धारण करके कहा—यह पुत्र सब विद्याओं में पारंगत हो गया है। अब आप इसे ले जायँ।

देवव्रत युवराज बनकर राजा के पास रहने लगा। कुछ दिन उपरान्त उसे ज्ञात हुआ कि राजा शान्तनु सत्यवती से विवाह करना चाहते हैं; किन्तु उसके भय से नहीं कर पा रहे हैं, तो देवव्रत ने स्वार्थ को तिलाञ्जलि देकर एक भीष्म (विकट) प्रतिज्ञा की कि मैं राज-पाट छोड़कर ब्रह्मचर्य धारण करूँगा—आजन्म विवाह न करूँगा। यही देवव्रत उस दिन से भीष्म कहलाने लगे।

भीष्म ने पिता की मृत्यु के उपरान्त अपने अन्य भाइयों का बड़ा ध्यान रखा। भीष्म के लिए कौरव-पांडव दोनों एक समान थे; किन्तु महाभारत के युद्ध में भीष्म कौरवों की ओर से सेनापति बनकर लड़े। उनका और अर्जुन का घनघोर युद्ध हुआ। कृष्ण को ज्ञात था कि महारथी भीष्म शिखंडी पर प्रहार नहीं करेंगे, क्योंकि शिखंडी पहले जन्म में अम्बा नाम की राजकुमारी था, जिसे भीष्म पितामह अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए हर ले गये थे। अतएव स्त्री पर प्रहार करना अनुचित समझकर, भीष्म ने शिखंडी पर एक भी बाण का प्रहार नहीं किया। अर्जुन ने शिखंडी को सामने कर बाण-वर्षा से उनके शरीर का रोम-रोम बींध डाला और वह छलनी हो रथ से गिर पड़े। बाणों के कारण बाणों की एक शय्या-सी बन गई। दुर्योधन ने चिकित्सकों को बुलाया; किन्तु भीष्म ने शरशय्या पर पड़े-पड़े ही युद्धभूमि मे परलोक-यात्रा करना क्षत्रिय-धर्म समझा। उनका सिर

द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कुंजर, दुर्योधन, कृप, कृपी, शरद्वान्

महर्षि गौतम के पुत्र का नाम था शरद्वान्। उनकी तपस्या तथा धनुर्वेद की निपुणता से इन्द्र बड़ा भयभीत था। उसने जानपदी नामक अप्सरा को उनके तप मे विघ्न डालने के लिए भेजा। शरद्वान् मुनि की तपस्या टूट गई और उनके वीर्य से एक कन्या और एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। संयोगवश राजा शान्तनु मृगया खेलने उस वन से निकले, तो उन्होंने एक बालक और बालिका को देखा। उनकी कृपा से पालन-पोषण होने के कारण उनके नाम कृप और कृपी रखे गये।

शरद्वान् को जब तपोबल से यह ज्ञात हुआ, तो सब प्रकार की धनुर्विद्या और शस्त्र-शास्त्र का ज्ञान उन्होने कृप को सिखा दिया। भीष्म पितामह ने कौरवों और पाडवों को धनुर्वेद सिखलाने का काम पहले कृपाचार्य को ही सौपा था। इसके पश्चात् राजपुत्रों के एक गुरु महर्षि भरद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य भी हुए। द्रोणाचार्य का विवाह कृपाचार्य की बहिन कृपी से हो गया, तो अश्वत्थामा का जन्म हुआ।

कौरवों के यहाँ आने से पहले द्रोणाचार्य के पास एक भी गाय नहीं थी। एक दिन अश्वत्थामा अन्य मुनि-कुमारों को दूध पीते देख, दूध पीने का हठ करने लगा, तो कृपी ने पानी मे चावल पीसकर सफेद पानी दे दिया। इस पर अन्य ऋषिकुमार अश्वत्थामा पर हँसने लगे। निर्धन द्रोण दु:खी होकर अपने बाल्यमित्र द्रुपद के पास गये; किन्तु उनसे अपमानित होने पर आगे चलकर अर्जुन की सहायता से द्रुपद को हराया और उनका आधा राज्य ले लिया। तब से अश्वत्थामा का लालन-पालन राजकुमारों की तरह होने लगा।

अश्वत्थामा ने अपने पिता से अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान प्राप्त किया और अर्जुन के समान दक्ष हो गया। द्रोणाचार्य के बनाये हुए चक्रव्यूह में वीर अभिमन्यु मारा गया था। फिर उन्होंने शकट व्यूह बनाया, जिसमें अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि भी अर्जुन से लडे।

महाभारत युद्ध मे अश्वत्थामा का घटोत्कच से घोर युद्ध हुआ।

द्रोणाचार्य की द्रुपदपुत्रों से शत्रुता थी ही। वे पांचालों का दारुण संहार करने लगे, तो पांडवों ने एक चाल चली। भीमसेन ने मालव-नरेश इन्द्र-वर्मा के हाथी को, जिसका नाम अश्वत्थामा था, मार डाला और शोर मचा दिया कि अश्वत्थामा मारा गया। किन्तु अपने पुत्र का वल और पराक्रम जाननेवाले द्रोणाचार्य ने इस पर विश्वास नहीं किया। तव उन्होंने धर्मात्मा युधिष्ठिर से पूछा। आचार्य जानते थे कि युधिष्ठिर सत्यवादी हैं। इधर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को समझाया कि स्त्रियों के निकट, हास्य में, विवाह, वृत्ति और प्राण-संकट के अवसर पर तथा गौ-ब्राह्मण के रक्षार्थ मिथ्या बोलना शास्त्रानुसार पाप नहीं होता, तो डरते-डरते युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य से कह दिया कि अश्वत्थामा मारा गया है। साथ ही दवी आवाज से कहा—मनुष्य अथवा हाथी (नरो वा कुंजरो वा)। नीति का पालन करते हुए धर्मराज ने सत्य की रक्षा करनी चाही।

द्रोणाचार्य असह्य पुत्रशोक से पीड़ित हो उठे। द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न का जन्म ही द्रोणाचार्य को मारने के लिए हुआ था। महारथी द्रोणाचार्य ने पुत्र-मरण सुनकर, जीवन से निराश हो अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये और धृष्टद्युम्न को अपनी ओर आते देख समाधि लगा प्राण त्याग दिये। तव धृष्टद्युम्न ने, पांडवों के मना करने पर भी, उनका मस्तक काट डाला।

अश्वत्थामा को कृपाचार्य से जव समस्त वृत्तान्त ज्ञात हुआ, तो उसने क्रोधान्ध हो नारायणास्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र के शान्त हो जाने पर उसने आग्नेयास्त्र उठाया; किन्तु अर्जुन के ब्रह्मास्त्र से वह भी नष्ट हो गया। तदनन्तर कर्ण और शल्य नामक कौरवों के सेनापतियों के मारे जाने पर दुर्योधन घवरा कर सरोवर के भीतर जा छिपा; किन्तु पांडवों ने ढूँढ़कर उसे गदायुद्ध के लिए ललकारा। भीम के प्रहार से दुर्योधन की जंघा टूट गई तव घायल दुर्योधन ने अश्वत्थामा को सेनापति वनाया। उसने प्रतिज्ञा की कि रात को सोते हुए पांडवों और पांचालों को मार डालेगा।

अश्वत्थामा शिवजी का भक्त था, अतएव उसने पहले शिवजी की स्तुति की। स्तुति करने से उसके सामने एक प्रज्वलित सुवर्णमयी वेदी

प्रकट हुई। अश्वत्थामा वेदी की अग्निशिखाओं पर आसन लगाकर बैठे गया और हविष्य के बदले अपने शरीर को ही अर्पित कर दिया। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे एक तेज तलवार दी और उसके शरीर में प्रवेश कर गये। अब तेजस्वी अश्वत्थामा ने पांडवों के शिविर में जाकर, शिखंडी, धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को मार डाला फिर मृत्युशय्या पर पड़े दुर्योधन को यह समाचार सुनाया। दुर्योधन ने शान्ति की साँस लेकर प्राण-त्याग दिये।

पुत्रों की हत्या से द्रौपदी बड़ी दुःखी हुई। उसने भीम से अश्वत्थामा का वध करने की प्रार्थना की। अश्वत्थामा दुर्गम वन में भाग गया था। उसने पाडवों के वंशनाश की प्रतिज्ञा कर रखी थी। उसने उत्तरा के गर्भ के बालक को मारने के लिए अस्त्र फेंका; लेकिन कृष्णजी ने कहा कि यदि उत्तरा के मृत बालक होगा, तो मैं उसे जीवित कर दूँगा।

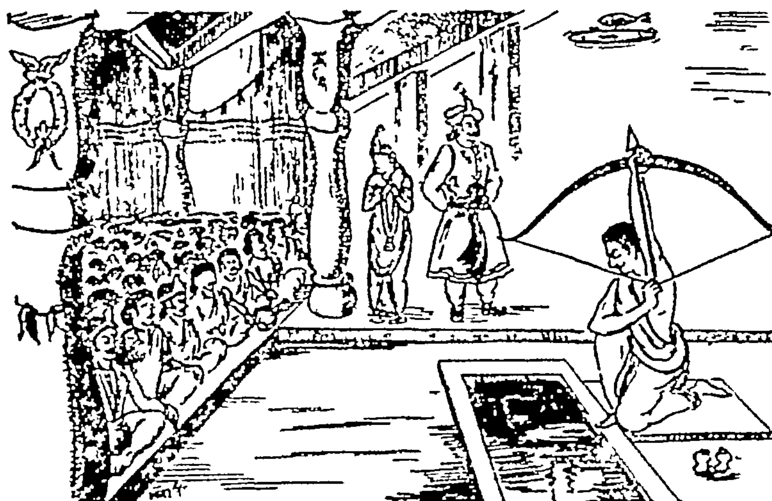
अश्वत्थामा को वन में ढूँढ़कर अर्जुन ने घोर युद्ध किया, तब व्यासजी ने पराजित अश्वत्थामा से कहा—'तुम्हारे सिर पर जो मणि है, वह दे दो तो पाडव तुम्हें प्राणदान दे दें।' मणि के प्रभाव से अश्वत्थामा को शस्त्र-व्याधि, क्षुधा तथा किसी शत्रु से भय नहीं रहता था। उसे पांडवों को वह अमूल्य मणि देनी ही पड़ी। गुरु का पुत्र और ब्राह्मण समझकर, उसे पाडवों ने नहीं मारा। उत्तरा के गर्भ पर अस्त्र फेंकने के कारण अश्वत्थामा को श्रीकृष्ण ने शाप दिया कि तुम तीन हजार वर्ष तक पृथ्वी मे भटकते रहोगे और कोढी होकर दुर्गम वन में पड़े रहोगे। तब क्षात्रधर्म त्यागकर अश्वत्थामा वन मे रहकर शिवजी की उपासना करने लगा।

द्रौपदी, कौरव, पांडव, दुःशासन, द्रुपद, जयद्रथ, दुर्योधन

पाचाल देश के राजा द्रुपद और द्रोण के पिता भारद्वाज मे बड़ी मित्रता थी। द्रोण द्रुपद के गुरु का पुत्र था; किन्तु कारणवश दोनों में वैमनस्य हो गया, जिससे द्रुपद को अपना आधा राज्य द्रोणाचार्य के हवाले कर देना पड़ा।

बदला लेने की प्रबल कामना से द्रुपद ने एक यज्ञ किया। उपयाज

मुनि ने यह यज्ञ करवाया और कहा कि तुम्हे धृष्टद्युम्न नामक पुत्र होगा, जो द्रोण का वध करेगा। एक पुत्री भी होगी, जो कारण-रूप हो, द्रोण का वध करवावेगी। यज्ञ की वेदी से तत्काल धृष्टद्युम्न नामक पुत्र और कृष्णा नामक कन्या निकल आई। यथासमय कृष्णा का स्वयंवर हुआ। द्रुपद उसका विवाह अर्जुन से करना चाहता था; किन्तु उसने सुन रखा था कि पांडव लोग लाक्षागृह में जल गये हैं, अतएव उसने किसी अनुपम वीर से द्रौपदी का विवाह करने के लिए एक रंगशाला बनवाई। ऊपर घूमते हुए चक्र में एक मछली टाँगी गई और घोषणा की कि जो वीर नीचे रखे तरल तेल के पात्र मे प्रतिबिम्ब देखकर ऊपर टँगी मछली की आँखों का अचूक लक्ष्य वेध करेगा, उसी के साथ राजकुमारी कृष्णा का विवाह होगा।



अर्जुन का मछली को वेधना

अनेक राजकुमारों ने प्रयत्न किया, किन्तु सब असफल रहे। फिर कर्ण ने ज्योंही धनुष हाथ मे लिया कि द्रौपदी ने भरी सभा में कह दिया कि मैं सूतपुत्र से विवाह नहीं करूँगी। कर्ण को यह वाक्य बाण की तरह चुभ गया। तत्पश्चात् ब्राह्मण-वेश मे उपस्थित अर्जुन ने मछली को वेध दिया। द्रौपदी ने विजयमाल उसके गले मे डाल दी।

एक ब्राह्मण-पुत्र को विजयी देख, वहाँ उपस्थित क्षत्रियगण अर्जुन और अन्य ब्राह्मण वेशधारी पाडवों पर टूट पड़े; किन्तु पाँचों पाडवों ने उन सबको हराकर भगा दिया। उनकी वीरता से सबने उन्हें पहचान लिया।

द्रौपदी को साथ लेकर पाडव घर पहुँचे, तो माता कुन्ती को बाहर से ही पुकारकर कहा—"माँ, भिक्षा मे आज यह रत्न मिला है।" माता ने बिना देखे ही अन्दर से कह दिया—पाँचों भाई मिल-जुलकर बाँट लो।

आज्ञाकारी अर्जुन माँ के वचनों को मिथ्या नहीं करना चाहता था। अब वेदव्यास और नारद मुनि की सम्मति से द्रौपदी पाँचों पांडवों की पत्नी बनी। वास्तव में द्रौपदी पहले जन्म में एक ऋषि की पुत्री थी। अनुकूल वर न मिलने के कारण उसने घोर तपस्या की थी और भगवान् शकर को प्रसन्न किया था। शिव ने जब वरदान माँगने को कहा, तो घबराहट में वह पाँच बार कह गई कि मै सर्वगुणसंपन्न वर चाहती हूँ। भगवान् शकर ने कहा—'तुमने पाँच बार मुझसे प्रार्थना की है, अतएव अगले जन्म में तुम्हे पाँच पति प्राप्त होंगे।'

विवाह होने के उपरान्त जब पांडव प्रकट हो गये, तो धृतराष्ट्र ने उनको बुलाकर राज्य का आधा भाग उन्हे दे दिया। पाडव इन्द्रप्रस्थ नगर मे राजधानी बनाकर राज्य करने लगे। इन्द्रप्रस्थ में मय नामक शिल्पी ने एक अद्वितीय सभा-भवन बना दिया। उसने महल में जल और स्थल की ऐसी रचना की थी कि यज्ञ मे निमत्रित दुर्योधन जल को तो स्थल और स्थल को जल समझकर अनेक स्थानों पर गिर पड़ा। दुर्योधन को गिरा देख, द्रौपदी ने हँसकर कहा—'अधे (धृतराष्ट्र) के तो अंधे ही होते है।' दुर्योधन अपमानित होकर द्रौपदी से बदला लेने का अवसर ढूँढ़ने लगा। कर्ण द्रौपदी से पहले से ही रुष्ट था। अतएव दोनों ने पाडवों के विरुद्ध षड्यंत्र रचने प्रारभ किये। कर्ण और उसके परममित्र दुर्योधन दोनों ने मामा शकुनि को, जो द्यूत-कला मे निपुण था, पाडवों से जुआ खेलने के लिए कहा। धृतराष्ट्र की ओर से जुए का निमंत्रण गया और पांडव राजपाट, धन-वैभव, यहाँ तक कि

द्रौपदी को भी दाँव पर लगाकर सब कुछ हार बैठे। उसी समय दुःशासन द्रौपदी को भरी सभा में केश पकड़कर खींचता ले आया।

पाडवों के सामने ही दुर्योधन के छोटे भाई पापी दुःशासन ने द्रौपदी को 'दासी' कहा और उसे वस्त्रहीन करना चाहा। तब असहाय द्रौपदी श्रीकृष्ण का स्मरण कर उनसे प्रार्थना करने लगी। भक्तवत्सल भगवान् दौड़े हुए पहुँचे और ऐसा चमत्कार किया कि ज्यों-ज्यों दुःशासन वस्त्र खींचता, त्यों-त्यों वह वस्त्र बढ़ता जाता। खींचते-खींचते दुःशासन थक गया और द्रौपदी की साड़ी का ढेर लग गया। द्रौपदी का अपमान देख, क्रोध से विह्वल भीम ने प्रतिज्ञा की कि मैं रणभूमि में दुःशासन की छाती फाड़कर उसका गर्म रक्त पियूँगा और उसी के रक्त से सने हाथों से द्रौपदी की चोटी बाँधूँगा।

दुर्योधन ने जब द्रौपदी को अपनी जाँघ दिखाकर वहाँ बैठने को बुलाया, तो भीम ने गर्जना की कि यदि इस जाँघ को मैं गदा से चूर-चूर न करूँ, तो मैं पांडु-पुत्र नहीं।

विदुर ने जब धृतराष्ट्र को पूरा ब्योरा सुनाया, तो धृतराष्ट्र ने स्वयं द्रौपदी से क्षमा-याचना की और पाडवों को दासत्व से मुक्त करके हारा हुआ राज्य और धन लौटा दिया। दूसरी बार बुलाने पर पाडव फिर द्यूत में खेले और हार गये। इस बार शर्त्त के अनुसार उन्हे बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास मिला।

वनवास के समय द्रौपदी के अक्षय पात्र मे लगा साग खाकर कृष्ण ने द्रौपदी की लाज रखी, जिससे पाडव लोग दुर्वासा मुनि के शाप से बच गये।

वन मे एक दिन द्रौपदी को अकेली देखकर कौरवों के मित्र और बहिनोई सिंधुराज जयद्रथ ने उसका हरण करना चाहा। तब भीम ने पहुँचकर जयद्रथ को पराजित किया द्रौपदी को बचाया।

अज्ञातवास के समय, सैरंध्री के वेश मे, द्रौपदी ने राजा विराट के यहाँ दासी का काम किया। वहाँ विराट के सेनापति कीचक ने उससे घृणित प्रस्ताव किया; इस पर वह भीम के हाथों मारा गया। तेरह वर्ष

समाप्त होने पर महाभारत का युद्ध छिड़ गया। श्रीकृष्ण की कृपा से द्रौपदी को भीष्म पितामह से सदा सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद मिल गया, जिससे उन्होंने पाडवों को नहीं मारा।

एक दिन द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने सोते हुए द्रौपदी के पुत्रों को मार डाला। अठारह दिन के घनघोर युद्ध के उपरान्त कौरवों की पराजय हो गई। उनके मारे जाने पर द्रौपदी ने अपनी तेरह वर्ष से खुली वेणी बाँधी। पाडवों ने द्रौपदी के साथ तीन अश्वमेध किये। यदुवंश का नाश हो जाने पर, पांडवों ने परीक्षित को हस्तिनापुर का राजा बनाया। वे वल्कल वस्त्र पहनकर द्रौपदी के साथ हिमालय पर्वत की ओर चले गये। द्रौपदी सब के पीछे धीरे-धीरे चल रही थी। वह स्वर्गारोहण के मार्ग मे सबसे पहले गिर पड़ी। उसने जीवन में एक पाप किया था। पाँचों पाडवों की पत्नी होते हुए भी वह अर्जुन को ही सबसे अधिक प्यार करती थी। मृत्यु के उपरान्त, भगवान् की कृपा से, द्रौपदी को स्वर्ग प्राप्त हो गया।

धुन्धु

धुन्धु दैत्य मधु और कैटभ नामक दैत्यों का पुत्र था। उसने एक पैर से खड़े होकर बड़ा कठोर तप किया। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसको वरदान दिया कि देवता, दैत्य, यक्ष, नाग, गंधर्व और राक्षसादि किसी के हाथ उसकी मृत्यु न हो। पिता के वध से धुन्धु विष्णु आदि देवताओं से बड़ा क्रुद्ध था। उसने गर्व से अब उन पर अत्याचार करना प्रारंभ किया।

उतक ऋषि के तप मे विघ्न डालकर वह उन्हे सताने लगा, तो उतंक ऋषि सेना सहित राजा कुवलाश्व को लेकर उसे मारने चले। तब भगवान् ने कुवलाश्व के शरीर मे प्रवेश कर धुन्धु पर आक्रमण किया। दैत्य की क्रोधाग्नि में कुवलाश्व के इक्कीस हजार पुत्र भस्म हो गये। तब क्रोधित हो कुवलाश्व ने दैत्य पर आक्रमण कर दिया। दैत्य के शरीर से जल बहने लगा, तो कुवलाश्व ने उसे पी लिया, और दैत्य के मुख से निक-

लती भयंकर अग्नि ज्वालाओं को उसी जल से बुझा दिया। फिर अपने ब्रह्मास्त्र से दानव को भस्म कर डाला। उस समय से कुवलाश्व "धुन्धुमार" के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

धेनुकासुर, वलदेव

एक दिन वृन्दावन में विहार करते समय कृष्ण और वलभद्र के पास सब ग्वाल-बालों ने जाकर कहा—'यहाँ तालवन मे पके हुए बहुत-से ताड़ के फल हैं। उनका स्वाद और महक दूर से हमे लुभाती है। पर वहाँ एक गधा है, जिसका नाम धेनुकासुर है। वह बड़ा दुष्ट है। जो कोई ताल के फल के लोभ से ताल-वन चला जाता है, उसको धेनुकासुर मार डालता है चलिए। हम लोग मिलकर उस दैत्य को मार डालें।'



वलदेव द्वारा धेनुकासुर का मारा जाना

कृष्ण और वलभद्र तुरन्त तालवन को चल दिये। वलदेव वन के भीतर जाकर, ताड़ वृक्ष को हिला-हिलाकर, फल गिराने लगे। फल बरसते देख धेनुकासुर क्रोध में भरा दौड़कर पहुँचा। उसने जैसे ही एक

दुलत्ती बलदेव को लगाई, वैसे ही बलदेव ने उस वार से बचकर उसके पिछले पैर पकड़ लिये और उसे पृथ्वी पर पटककर मार डाला। तब ग्वाल-बाल निर्भय होकर फल खाने लगे।

ध्रुव, उत्तानपाद, सुनीति, सुरुचि, उत्तम

महाराज उत्तानपाद स्वायंभुव मनु के पुत्र थे। उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं। एक का नाम था सुनीति और दूसरी का सुरुचि। उत्तानपाद सुरुचि से अधिक प्रेम करते थे। एक दिन सुरुचि का लड़का उत्तम राजा की गोद मे खेल रहा था। रानी सुरुचि भी वहीं बैठी थी। उसी समय सुनीति का पंचवर्षीय पुत्र ध्रुव दौड़ा हुआ पहुँचा। छोटे भाई की तरह उसने भी पिता की गोद में बैठना चाहा। इस पर सुरुचि ने उसे झिड़कते हुए कहा—'ध्रुव बड़े हो तो क्या? तुम्हारे भाग्य मे राजा की गोदी में खेलना नहीं बदा है। तुम थोड़े ही राजसिंहासन पर बैठोगे। जाकर तपस्या करो कि मेरे गर्भ से तुम उत्पन्न हो, तभी तुम पिता की गोदी मे बैठ सकोगे।' इस पर राजा ने भी कुछ न कहा।

इस घटना से ध्रुव को बड़ा दुःख हुआ। वह रोता हुआ अपनी माता सुनीति के पास गया। माता ने उसे भगवान् की आराधना करने को कहा, जिससे उसकी अभिलाषा पूरी हो। माता का आशीर्वाद लेकर ध्रुव वन में तपस्या करने चला गया। वहाँ देवर्षि नारद ने दर्शन देकर उसे उपदेश दिया। ध्रुव मथुरा के पास जाकर नाम का जप करता हुआ घोर तपस्या मे लीन हो गया। भगवान् ने उसे दर्शन देकर वरदान दिया और वह अचल स्थान दिया, जो किसी तपस्वी को प्राप्त नहीं हुआ। छत्तीस हजार वर्ष तक उसने पिता द्वारा प्राप्त राज्य पर शासन किया।

एक बार ध्रुव का छोटा भाई उत्तम मृगया खेलने गया, तो वहाँ यक्ष के हाथ से मारा गया। उसकी माता सुरुचि उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एक वन मे पहुँची, तो दावाग्नि से जलकर मर गई। भाई का बदला लेने के

लिए ध्रुव ने यक्षों की राजधानी अलकापुरी पर चढ़ाई की थी। तब कुबेर ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि भगवान् में तुम्हारी भक्ति अचल बनी रहे।

ध्रुव के दो पुत्र उत्कल और वत्सर थे। वत्सर को राज्यभार सौंप वह तप करने गये, तब भगवान् विमान लेकर पहुँचे। तब ध्रुव ने अचल और अविनाशी ध्रुव पद पर आरोहण किया।

धौम्य, आरुणि, उपमन्यु, वेद

धौम्य ऋषि बड़े तपस्वी थे। उनके पास तीन विद्यार्थी पढ़ते थे, जिनका नाम उपमन्यु, आरुणि और वेद था। एक दिन उन्होंने अपने शिष्य आरुणि से कहा कि खेत के पानी को जाकर बाँध दो। गुरु की आज्ञा पाकर वह खेत पर गया; किन्तु मेड़ न बाँध सका। मिट्टी रखता, तो पानी के जोर से वह जाती। अन्त में वह थककर, पानी के बीचो बीच लेट गया, जिससे पानी रुक गया।

शाम तक आरुणि घर न पहुँचा तो गुरु ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पानी के निकट पहुँचे और शिष्य की गुरुभक्ति देख बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि आज से तू उद्दालक नाम से प्रसिद्ध होगा।

एक बार गुरु ने उपमन्यु की परीक्षा लेनी चाही। धौम्य ऋषि ने उससे कहा कि आजकल तू बहुत मोटा-ताजा दिखता है। भिक्षा में जो कुछ मिले, मुझे दे जाया कर। अब उपमन्यु एक बार की भिक्षा गुरु को देकर दूसरी बार अपने लिए भिक्षा माँग लाता; इसका भेद जानकर गुरु ने इसका भी निषेध कर दिया। फिर उससे एक दिन पूछा कि तू अब क्या खाता है? उपमन्यु बोला, अब मैं भिक्षा नहीं माँगता। गौएँ चराने जाता हूँ, तो वहाँ दूध पी लेता हूँ। गुरु ने यह सुनकर, दूध पीने को भी मना कर दिया। कुछ दिन बाद उन्होंने फिर पूछा, तो उपमन्यु बोला कि दूध नहीं पीता, किन्तु बछड़ों के मुँह से जो फेन गिरता है, उसी को पी लेता हूँ। अन्त में उपमन्यु ने भूख से व्याकुल हो आक के

पत्ते खाने शुरू किये, जिससे वह अंधा हो गया और एक कुएँ में गिर पड़ा। तब धौम्य ऋषि ने उसे कुएँ से निकालकर देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों से दवा कराई, जिससे उसकी आँखें ठीक हो गईं।

तीसरा शिष्य वेद भी बहुत दिनों तक आश्रम में रहकर, गुरु की सेवा-शुश्रूषा करता रहा। इस प्रकार धौम्य ऋषि के तीनों शिष्य गुरु-सेवा कर सफल-मनोरथ हुए।

नमुचि, इन्द्र

वृत्रासुर का वध करने के लिए वज्र बनाने को जब दधीचि मुनि अपनी हड्डियाँ दे दीं, तो देवताओं और दानवों में युद्ध की तैयारिय होने लगीं। युद्धभूमि में पहले नमुचि नामक दैत्य इन्द्र से युद्ध करने लिए गया। इन्द्र ने वज्र से आघात किया; किन्तु वज्र के आघात से नमुचि का बाल भी बाँका न हुआ। तब इन्द्र ने गदा मारी, किन्तु वह भी चूर-चूर हो गई। फिर शूल से मारा, तो शूल के सैकड़ों टुकड़े हो गये। इस प इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह चिन्तामग्न हो गया। इन्द्र की य अवस्था देखकर, नमुचि हँस पड़ा। तभी आकाशवाणी हुई कि यह दैत्य किसी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से नहीं मारा जा सकता। इसने घोर तप क ब्रह्मा से यह वरदान माँग लिया है कि मैं न शुष्क पदार्थ से, न आर्द्र पदार्थ से और न किसी अस्त्र से मारा जाऊँ। अतएव तुम इसे समुद्र के फे से मारो। तब इन्द्र समुद्र के तट से फेन ले आया। वह फेन न तो आ था, न शुष्क। उस फेन से इन्द्र ने प्रहार किया, तो नमुचि मूर्च्छित ह गिर पड़ा और इन्द्र को कटु वचन सुनाता हुआ मर गया।

नर-नारायण, उर्वशी

नर और नारायण दो ऋषि थे, जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं। दक्ष प्रजापति की एक कन्या का नाम था मूर्ति। वह धर्म की पत्नी थी। उसके गर्भ से भगवान् ने नर-नारायण नामक दो पुत्रों के रूप में

अवतार लिया। इसी रूप में उन्होंने कर्मबंधन से छुड़ानेवाला—आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार करानेवाला—उपदेश दिया था। उन्होंने बदरिकाश्रम में जाकर घोर तपस्या की, तो इन्द्र ने अनेक अप्सराओं को कामदेव सहित भेजा; पर नर-नारायण इन्द्र की कुचाल को समझते थे। नर-नारायण ने उनकी ओर क्रोध से देखा, तो वे सब शाप के भय से काँपने लगे। तब ऋषियों ने हँसकर, उन्हें अभयदान दिया और अपने योगबल से अनेक सुन्दर रमणियाँ प्रकट करके दिखलाईं और अपना विष्णुरूप दिखाया, जिससे इन्द्र के अनुचर लज्जित हो गये। अब भगवान् ने उन्हे स्वर्ग के लिए एक स्त्री ले लेने को कहा। इन्द्र के अनुचरों ने उर्वशी को लिया, जो स्वर्गलोक की परम सुन्दरी सर्वश्रेष्ठ अप्सरा मानी गई। भगवान् नर-नारायण के बल और प्रभाव का वर्णन सुनकर इन्द्र लज्जित हो गया।

द्वापर मे नारायण ने तो श्रीकृष्ण और नर ने अर्जुन के रूप में अवतार लिया था। बदरिकाश्रम हिमालय पर एक तीर्थ है। वही इनका आश्रम है। वहीं पर नर रूप अर्जुन ने तप किया था।

विष्णु भगवान् के पर्य्यायवाची शब्द—मुरारि, पुरुषोत्तम, चक्रपाणि, शार्ङ्गधर, माधव, केशव, चक्री, पीताम्बर, मधुसूदन, श्रीपति, गोविन्द, गदाधर, हरि, दामोदर, नारायण, कृष्ण, वामन, चतुर्भुज।

विष्णु भगवान् के शंख का नाम पांचजन्य, चक्र का नाम सुदर्शन, गदा का नाम कौमोदकी, तलवार का नाम 'नंदक', धनुष का नाम शार्ङ्ग और वाहन का नाम वैनतेय गरुड़ है।

नल, दमयन्ती, ऋतुपर्ण, बाहुक

नल निषध देश के राजा वीरसेन का पुत्र था। विदर्भ देश के राजा भीम के दमयन्ती नाम की पुत्री थी। दोनों को, एक दूसरे के रूप और गुण की प्रशंसा सुनकर, विवाह करने की इच्छा हुई। एक बार राजा नल ने हंस पकड़ा, किन्तु जब हंस ने उनका दूत बनना स्वीकार किया, तो उसे छोड़ दिया। वह सीधा विदर्भ नगर पहुँचकर, दमयन्ती के निकट जा,

राजा नल की प्रशंसा करने लगा। दमयन्ती तो पहले ही नल को वर चुकी थी, अब उसने स्वीकृति दे दी।

कुछ दिनों बाद दमयन्ती का स्वयवर हुआ, तो अग्नि, वरुण, इन्द्र, और यमराज आदि ने राजा नल को अपना दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजा; लेकिन दमयन्ती ने कहा कि मैं तो राजा नल को वरण कर चुकी हूँ। तब स्वयंवर में सब देवताओं ने नल जैसा रूप बना लिया।



जुए के खेल में राजा नल का पुष्कर से हारना

दमयन्ती जब मंडप मे गई, तो उसने नल की सूरत के पाँच पुरुषों को देखा; लेकिन दमयन्ती ने असली नल के गले मे जयमाल डाल दी। पाँच देवताओं में शनि और कलि भी थे। उन दोनों ने राजा नल को सफल-मनोरथ देख, उस पर रोष किया, जिसके कारण आगे चलकर उसका सारा राज-पाट खो गया। दोनों का विवाह हो गया।

राजा नल को जुआ खेलने का व्यसन था। एक दिन उसके भाई पुष्कर ने उससे जुआ खेलने को कहा। राजा नल जुए मे सारा राज-पाट हार गया। वह एक वस्त्र पहन, दमयन्ती को साथ ले, अपनी राजधानी छोड़कर जंगल की ओर चल दिया।

राजा पुष्कर ने घोषणा कर दी कि जो कोई नल को आश्रय देगा, वह

मेरे हाथ से मारा जायगा। जंगल में भूखे-प्यासे नल ने एक चिड़िया को पकड़ने के लिए अपनी धोती फेंकी; किन्तु चिड़िया धोती समेत उड़ गई। दमयन्ती नल को छोड़कर अपने पिता के यहाँ भी नहीं गई।

एक दिन नल दमयन्ती की आधी साड़ी फाड़, उसे पहनकर दमयन्ती को अकेली सोते छोड़ चला गया। जागने पर अकेली दमयन्ती बहुत रोई-चिल्लाई; किन्तु वन में कौन सुनता ? रास्ते में एक अजगर ने उसे पकड़ लिया, फिर एक बहेलिये ने सताया; अन्त में पति को खोजती-खोजती वह अपने पिता राजा भीम के यहाँ कुंडिनपुर पहुँची।

उधर राजा नल को मार्ग में कर्कोटक नामक सर्प ने काट खाया, जिससे वह कुरूप हो गया। घूमते-घूमते अयोध्या पहुँचकर नल ने राजा ऋतुपर्ण का सारथि होना स्वीकार किया। नल ने उन्हें अश्वविद्या सिखाई और स्वयं उनसे द्यूत विद्या सीखी।

दमयन्ती के माता-पिता ने नल की खोज के लिए एक युक्ति की। उन्होंने ऋतुपर्ण के यहाँ के नये सारथि बाहुक का वर्णन सुन रखा था। कुछ सन्देह होने पर उन्होंने कहलवाया कि दमयन्ती दुबारा अपना स्वयंवर करना चाहती है; किन्तु सूर्य निकलने के पहले ही किसी राजा को वरेगी। राजा ऋतुपर्ण ने वहाँ पहुँचना चाहा तो नल ने उनको सूर्य निकलने के पहले ही पहुँचा दिया। कुरूप होने के कारण नल को कोई पहचान न सका किन्तु सारथि की कई प्रकार परीक्षा करने पर सब को निश्चय हो गया कि वही राजा नल है। दमयन्ती ने सब हाल नल को बतलाया कि दूसरा स्वयंवर तो केवल आपको बुलाने के लिए बहाना था। दमयन्ती ने नल को समझाया कि यदि वास्तव में स्वयंवर होता, तो अन्य राजागण भी आये होते। नल कुछ दिन ससुराल मे रहकर फिर अपने देश वापस चला गया और इस बार भाई पुष्कर से जुआ खेलकर जीत गया। उसने अपना राज्य ले लिया। भाई को भी कुछ राज्य देकर उसको क्षमा कर दिया।

राजा नल की बहुत प्रशंसा हुई। जहाँ कहीं वह रहा, उसने अपना

धर्म नहीं छोड़ा। धर्मात्मा होने के कारण विपत्तियों पर विपत्तियाँ आ किन्तु राजा ने उनको दृढ़ता से सहन किया।

नल, नील, सेतुबंध

नल और नील दोनों भाई बड़े नटखट थे। ये विश्वकर्मा के वानर-रूप पुत्र थे। ये ऋषियों के आश्रम में रहते थे और उनकी देव-मूर्त्तियाँ उठाकर जल में फेंक देते थे। कुछ दिन तो ऋषियों ने इन्हें वानर समझकर, स्नेहवश कुछ नहीं कहा, किन्तु जब इनका उपद्रव बहुत बढ़ गया तो शाप के रूप में आशीर्वाद दिया कि इनके हाथ का स्पर्श पाकर कोई वस्तु जल में न डूबे। उस समय से जो मूर्त्ति ये फेंकते, जल में ही तैरती रहती और मुनि लोग उठा लाते।

सेतुबंधन के समय यही शाप आशीर्वाद सिद्ध हो गया। समुद्र में अपने हाथ से पत्थर फेंक-फेंककर इन्होंने सेतु बनाया और इस प्रकार भगवान् रामचन्द्र की सेवा की।

यह पुल "सेतुबंध" कहलाता है। सेतुबंध रामेश्वर हिन्दुओं के चार मुख्य धामों मे से एक माना जाता है।

विभीषण को लंका का राजा बनाकर रामचन्द्रजी पुनः एक बार पुष्पक विमान मे बैठ, भरत के साथ लंकापुरी गये और विभीषण को उपदेश देकर जब लौटने लगे, तो विभीषण ने कहा—'यदि लंका का पुल ज्यों का त्यों बना रहेगा, तो पृथ्वी के सभी लोग आकर हमें तंग किया करेंगे।'

विभीषण की बात सुनकर भगवान् राम ने सेतु को तोड़ डाला, जिससे लंका का संबध भारत से टूट गया। इस सेतु को देखने से ज्ञात हो जाता है कि विश्वकर्मा के पुत्र नल-नील अपने पिता के समान ही शिल्पी थे।

नहुष, अगस्त्य

चन्द्रवंशी राजा पुरुरवा और उर्वशी से उत्पन्न आयु के पुत्र का नाम नहुष था। वह अयोध्या का बड़ा प्रतापी राजा था। एक बार जब वृत्रासुर के मारने के कारण इन्द्र को ब्रह्म-हत्या लगी और वह स्वर्ग से भागकर मानस-सरोवर में जा अनेक वर्षों तक मृणालतन्तु मे छिपा रहा, तब सौ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण करनेवाले राजा नहुष की योग्यता देखकर देवताओं ने उसे इन्द्रत्व प्रदान कर इन्द्रासन पर बैठा दिया।

शतक्रतु नहुष स्वर्ग पर शासन करने लगा, तो उसे बड़ा अभिमान हो गया। मदान्ध होकर उसने इन्द्र की पत्नी शची से अनुचित प्रस्ताव किया। इन्द्राणी बहुत दिनों तक टालती रही, किन्तु इसका अत्याचार बढ़ता गया। अन्त मे देवगुरु बृहस्पति ने इन्द्राणी को सलाह दी, जिससे उसने नहुष को कहलवा दिया कि तुम सप्तर्षियों की अपूर्व सवारी पर चढ़कर आओ, तो मैं तुम्हे वरण कर लूँगी।

ऐश्वर्य और काम के मद से अंधा होने के कारण अविवेकी नहुष ने सप्तर्षियों को बुलवा भेजा और पालकी में बैठकर उन्हें उसको उठाने की आज्ञा दी। सप्तर्षि जितना धीरे-धीरे जाते थे, नहुष उतना ही उतावला होकर चिल्लाता था—"सर्प-सर्प" अर्थात् चलो-चलो। नहुष की डाँट जब असह्य हो गई, तो सप्तर्षियों में से अगस्त्य मुनि ने शाप दिया कि तू बार बार "सर्प-सर्प" कहता है तो जा, सर्प हो जा।

नहुष उसी क्षण सर्प होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब तक इन्द्र ने ब्रह्म-हत्या का प्रायश्चित्त कर लिया और पुनः अपने पद पर बैठ गया।

शाप के पश्चात् नहुष ने अगस्त्य से क्षमा माँगी, तो उन्होंने कहा—जो व्यक्ति तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे सकेगा, उसी के द्वारा तुम्हारी मुक्ति होगी। सर्प रूप नहुष ने वनवास के समय भीम को पकड़ लिया, तब युधिष्ठिर ने नहुष के प्रश्नों का उत्तर देकर भीम और नहुष दोनों को मुक्त कर दिया। नहुष के पुत्र का नाम ययाति था।

इन्द्राणी के पर्यायवाची शब्द — माहेन्द्री, शची, इन्द्रवधू, पलोमजा, शतावरी, ऐन्द्री, जयवाहिनी।

नारद, विश्वमोहिनी, कामदेव

नारद मुनि भगवान् के परम भक्त माने जाते हैं। अखंड ब्रह्मचर्य धारण कर नारद मुनि वीणा पर भगवान् के नाम, गुण और लीलाओं का कीर्त्तन करते हुए त्रिलोक में विचरण किया करते थे। देवर्षि नारद पहले जन्म में दासी-पुत्र थे। उनकी माता आश्रम में रहकर ऋषि-मुनियों की सेवा-टहल किया करती थी। माता के साथ आश्रम में रहकर भगवल्लीला-संबंधी बातचीत सुनते-सुनते, ऋषियों की कृपा से, नारद को धर्म में रुचि हो गई और जप-तप करने से पहला शरीर छूट गया। अन्तःकरण शुद्ध हो जाने से फिर ये ब्रह्मा के पुत्र होकर उत्पन्न हुए।

हरिभक्त नारद की प्रतिभा बहुमुखी थी। देवर्षि नारद वेदान्त, योग, ज्योतिष, वैद्यक, गणित, संगीत आदि अनेक विद्याओं के आचार्य और मर्मज्ञ थे। इन्हे भगवान् का "मन" माना जाता है। भक्ति के प्रधान आचार्य होकर नारद मुनि भगवान् की भक्ति फैलाने में योग देते थे। प्रह्लाद, ध्रुव, अम्बरीष इत्यादि महान् भक्तों को इन्होंने भक्तिमार्ग में प्रवृत्त किया।

भ्रमण-प्रेमी नारद मुनि की गति समस्त लोकों में अबाधित थी। वे एक जगह नहीं ठहरते थे। कारण यह है कि एक बार दक्ष प्रजापति ने अपने पुत्रों को, सृष्टि रचने के लिए, तप करने की आज्ञा दी। जब वे तप करने लगे, तो नारद मुनि ने उन्हे योग का उपदेश दे दिया, जिससे वे घरबार त्यागकर संन्यासी बन गये। जब दक्ष ने यह सुना कि मेरे पुत्र, आज्ञा भंगकर, नारद का उपदेश सुनकर नष्ट हो गये, तो दक्ष ने बड़ क्रोध से नारद को शाप दिया कि मेरा अमंगल करने के कारण तुम ढाई ढाई घड़ी से अधिक कहीं नहीं ठहर पाओगे। तुम लोक-परलोक मे घूमते फिरोगे। कहीं ठिकाना न मिलेगा।

नारद मुनि कलहप्रिय भी थे। इधर की उधर लगाकर दो व्यक्तियों में झगड़ा कराने मे ये बहुत निपुण थे। नारद शब्द का अर्थ है जल

देनेवाला। अनावृष्टि होने से देश मे सूखा पड़ा था। इनके जन्म लेने से वर्षा होने लगी, तो लोगों ने इनको नार (जल) देनेवाला समझ नारद नाम रख दिया।

हिमाचल की एक पवित्र गुफा में भगवान् का स्मरण करने से एक वार नारदजी की समाधि लग गई। उनको समाधि में देखकर, देवराज इन्द्र डर गया। अतएव उसने कामदेव से प्रार्थना की—'तुम नारद की समाधि भंग कर दो। कहीं तप करके नारद मुनि मेरे लोक का राज्य न छीन लें।' तव कामदेव तथा उसके साथियों ने नारद के समीप जाकर अनेक क्रीड़ाएँ कीं; किंतु जव उसकी माया का प्रभाव नारद मुनि पर न पड़ा तो वह डर गया कि जिसके रक्षक स्वयं भगवान् है, भला उसकी मर्यादा कौन दवा सकता है ? अतएव हार मानकर उसने नारदजी से क्षमा-याचना की। वह नारदजी की वड़ाई करता लौट गया।

समाधि टूटने पर कामदेव का लौटना सुन, नारदजी के मन में अहंकार भर गया कि मैंने कामदेव को जीत लिया। वे शिवजी के पास गये और उन्हें सारी लीला सुनाई। शिवजी ने उन्हे उपदेश दिया कि यह प्रसंग अव और किसी से मत कहना। पर नारद को यह सलाह अच्छी नहीं लगी। शिवजी के मना करने पर भी उन्होंने सव लीला एक दिन भगवान् को सुना दी। भगवान् ने उनके अभिमान का उन्मूलन करने के लिए अपनी माया को प्रेरणा दी।

थोड़े ही दिनों वाद नारद मुनि घूमते-घूमते शीलनिधि राजा के राज्य मे जा पहुँचे। राजा के विश्वमोहिनी नामक एक रूपवती कन्या थी। उस कन्या का स्वयंवर हो रहा था और अनेक राजा वहाँ मौजूद थे। नारद का आगमन सुनकर राजा ने उनकी वड़ी आवभगत की। पर राजकन्या का रूप देखने से नारद मुनि का सारा वैराग्य लोप हो गया और वे उस राजकुमारी को वरण करने का उपाय सोचने लगे। उन्होंने सवसे पहले भगवान् की स्तुति करके उनको प्रसन्न किया और उनका हरिरूप माँगा। भगवान् ने कहा—'मैं तुम्हारा हित अवश्य करूँगा' और अन्तर्धान हो गये। भगवान् की गूढ़ वातें न समझ, अपनी

पहला ब्राह्मण अपनी गाय को सारे राज्य में सब स्थानों पर ढूँढ़ता रहा। कई वर्षों की खोज के पश्चात् उसने अपनी गाय एक ब्राह्मण के घर देखी। ब्राह्मण ने अपने रखे हुए नाम "शबला" से पुकारा, तो वह स्वर को पहचानकर उसके पीछे हो ली। इस पर गौ का स्वामी दूसरा ब्राह्मण घबराकर उसके पीछे दौड़ा। दोनों एक-दूसरे को झूठा समझकर विवाद करने लगे। अन्त में वे न्याय कराने के लिए राजा नृग के निकट पहुँचे। किन्तु राजा के सामने बहुत दिनों तक न पहुँच सके।

जब राजा के सामने जाने की आज्ञा उन दोनों ब्राह्मणों को मिली, तो उनका क्रोध बहुत बढ़ गया था। क्रोध में दोनों ब्राह्मण अपनी-अपनी कह रहे थे। राजा हतबुद्धि-सा कभी एक ब्राह्मण की ओर, तो कभी दूसरे की ओर देखता रहा। दोनों ने कुपित होकर राजा को शाप दिया—'तुम अपनी गर्दन गिरगिट के समान कभी इधर, तो कभी उधर घुमा रहे हो और कुछ बोलते नहीं। इसलिए जाओ, तुम्हें गिरगिट-योनि प्राप्त हो। तुम इतने दिन छिपकर बैठे रहे और हमारे सामने नहीं आये, तो सैकड़ों वर्षों तक अंधकार में—किसी कुएँ या गड्ढे में—पड़े रहोगे। कृष्ण भगवान् ही तुम्हारा उद्धार करेंगे।'

राजा नृग गिरगिट होकर द्वारकापुरी के एक कुएँ में पड़ा रहा। एक दिन यादवकुल के लड़के खेल रहे थे। उनकी गेंद उस कुएँ में जा गिरी। कुएँ में लड़कों ने झाँका, तो उस विशालकाय गिरगिट को देखकर विस्मित हो, श्रीकृष्ण से कहा। श्रीकृष्ण ने उसे निकालकर उसका उद्धार किया। तब वह दिव्य शरीर प्राप्तकर वैकुण्ठ चला गया।

पतंजलि

ये मुनि महर्षि अंगिरा के वंशज थे। ये अनन्त भगवान् के अवतार माने जाते हैं, इसलिए इनका नाम फणीन्द्र भी है। अपने पिता के गुरु कौथुम से वेदाध्ययन किया था।

महर्षि पतंजलि ने योग-शास्त्र की रचना की थी। ये योग के आचार्य

थे। इन्होंने ही योगसूत्रों का प्रणयन किया था और पाणिनि के व्याकरण पर महाभाष्य लिखा था। किसी-किसी के मत से पाणिनि-भाष्यकार और योगसूत्रकार पतंजलि दोनों एक व्यक्ति नहीं हैं।

परशुराम, जमदग्नि, रेणुका, अलर्क, कार्त्तवीर्य

परशुराम हैहय वंश के नाश के लिए भगवान् के अवतार माने जाते हैं। ये भृगुवंश में उत्पन्न हुए थे। ये महर्षि जमदग्नि और रेणुका के पुत्र थे। गाधि की पत्नी द्वारा एक चरु के उलट-फेर कर देने से जमदग्नि मुनि का जन्म हुआ था। इसी कारण ब्राह्मण वंश मे उत्पन्न होकर भी क्षत्रिय की तरह आचरण करनेवाले परशुराम जमदग्नि के पुत्र हुए। परशुराम के चार भाई और थे।

एक दिन रेणुका यमुना नदी में स्नान करने गई, तो वहाँ कश्यप-पुत्र गंधर्वराज चित्ररथ को जलक्रीड़ा करते देखकर स्वयं भी वैसी ही क्रीड़ा करने की इच्छा करने लगी। महातेजस्वी मुनि ने योग द्वारा उसके मन की अवस्था जान ली। उन्होंने अपने चारों पुत्रों को आज्ञा दी कि इस पापिनी का सिर काट डालो। उन पुत्रों ने माँ के स्नेहवश आज्ञा न मानी, तो मुनि ने उन्हें मौन देख क्रोधित होकर शाप दिया, जिससे वे पशु-पक्षियों के समान मूक जड़बुद्धि हो गये। थोड़ी देर में सबसे छोटे पुत्र परशुराम आये। उन्होंने आज्ञा पाकर माता का मस्तक अपने फरसे से काट डाला। क्रोध शान्त होने पर जमदग्नि ने परशुराम से वर माँगने को कहा, तो परशुराम ने दो वर माँगे। पहला तो यह कि चारों भाई और माँ जीवित हो जायँ और दूसरा यह कि उन्हे इस घटना की स्मृति न रहे। जमदग्नि ने सबको जीवित कर दिया।

इन्हीं परशुराम ने अपने पिता के हत्यारे (कृतवीर्य के पुत्र) हैहयराज सहस्रबाहु को तथा उसके अनेक पुत्रों को मार डाला और इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियरहित कर डाला। उनके रक्त से पाँच सरोवर भर दिये, तब महर्षि ऋचीक ने उन्हे इस घोर कर्म से रोका। परशुराम ने क्षत्रियों

का संहार बन्द कर सारी पृथ्वी ब्राह्मणों को दान कर दी। ये ब्राह्मण होकर क्षत्रिय-कर्म करने से 'भूमिहार' के नाम से प्रसिद्ध हुए। तत्पश्चात् परशुराम महेन्द्र पर्वत पर रहने को चले गये।

मिथिला में राजा जनक के यहाँ जब रामचन्द्रजी ने शिवजी का धनुष तोड़ डाला, तो परशुराम बहुत क्रुद्ध हुए। वे राम-लक्ष्मण से युद्ध करने को तत्पर हो गये थे। उन्होंने विष्णु का धनुष श्रीराम को देकर उसे चढ़ाने को कहा। उस धनुष को जब रामचन्द्रजी ने खींचा, तो परशुराम का संदेह दूर हो गया और प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा करते हुए वन मे चले गये।

कौरवों और पाडवो के गुरु द्रोणाचार्य ने अस्त्र-शस्त्र की विद्या परशु-राम से ही सीखी थी।

एक बार एक राक्षस, जिसका नाम अलर्क था, भृगु की पत्नी को हरण कर भागा। इस पर भृगु मुनि ने उसे शाप दिया कि पृथ्वी पर कीड़ा होकर जन्म ले। परशुराम के दर्शन से तेरा उद्धार होगा। यह वही अलर्क नाम का कीड़ा था, जिसने कर्ण को काटा था, पर कर्ण ने परशुराम के जाग जाने के भय से उसे नहीं मारा। रक्त से गीले होने पर परशुराम जब जाग पड़े तब उन्होंने इस अलर्क कीड़े का उद्धार किया।

परीक्षित, कलियुग, शमीक

एक बार अर्जुन के पोते और अभिमन्यु के पुत्र महाराज परीक्षित् शिकार खेलते-खेलते ऐसे वन मे जा पहुँचे, जहाँ एक काला कलूटा व्यक्ति एक गाय और लँगड़े बैल को मारता हुआ खदेड़ रहा था। पूछने पर मालूम हुआ कि गाय पृथ्वी है और लँगड़ा बैल धर्म है। वह काला व्यक्ति कलियुग था। राजा ने ज्यों ही कलि को मारने के लिए तलवार निकाली, त्यो ही वह गिड़गिड़ा कर पैरों पर गिर पड़ा। शरणागत समझकर उसे राजा ने छोड़ दिया; किन्तु उसने रहने के लिए राजा से चौदह स्थान माँग लिये, जिनमे एक सुवर्ण भी था।

राजा जब लौट रहे थे, तो प्यास के मारे व्याकुल हो, एक ध्यानावस्थित मौनी शमीक ऋषि के पास पहुँचे। शमीक ऋषि ने जब कुछ उत्तर न दिया तब राजा ने उन्हें पाखंडी समझकर उनके गले में एक मरा हुआ साँप डाल दिया और चल दिये। मुनि के पुत्र शृंगी ने आश्रम में पहुँचकर जब यह बात जानी, तब उसने क्रुद्ध होकर यह शाप दिया कि वह मदांध राजा, साँप के काटने से, सातवें दिन मर जाय। वास्तव में उस दिन राजा परीक्षित् सिर पर सुवर्ण का मुकुट पहने हुए थे और सुवर्ण में कलि का निवास होने से उनकी बुद्धि मारी गई थी। सातवें दिन तक्षक के काटने से परीक्षित की मृत्यु हो गई। किन्तु वे अपने पुत्र जनमेजय को राज्य देकर इन सातों दिन गंगातट पर बैठकर जप-तप-नियम करते रहे। घूमते-घामते शुकदेवजी वहीं पर पहुँचे, तो उन्होंने सारा वृत्तान्त जानकर उन्हें सात दिन मे श्रीमद्भागवत सुनाया। इन सात दिनों में परीक्षित् भगवान् के परम भक्त हो गये।

पृथु, वेन, पृथ्वी

प्राचीन काल मे, ध्रुव के वंश में, अंग नाम के राजा का एक पुत्र वेणु (वेन) था। वह बड़ा दुष्ट राजा था। उसने अपने को ही ईश्वर घोषित किया और वेद-पुराण की रीति, यज्ञ, जप-तप, व्रत सब बन्द करा दिये। ऋषि-मुनियों ने उसे बहुत समझाया; परन्तु उनकी सब ज्ञानचर्चा निष्फल हो गई। अन्त मे ऋषियों ने प्रजा के कल्याण के लिए उसे शाप दिया कि तुम्हारी मृत्यु हो जाय। फिर उसको निर्वंश देखकर उसके सुरक्षित रखे हुए शव को मथा। उसकी जाँघ से एक काला-कलूटा बौना पुरुष निकला, जिसने दक्षिण मे राज्य किया और जिसकी सन्तान भील और निषाद कहलाई। दुबारा मन्थन करने पर उसकी भुजा से राजा पृथु का जन्म हुआ।

पृथु बड़ा धर्मात्मा राजा था। स्वयं सनत्कुमार जाकर उसे उपदेश दिया करते थे। उसने एक महान् यज्ञ किया। जब भगवान् ने प्रकट

कृष्ण ने प्रलम्बासुर को देखकर अपने दल को हरा दिया। अब कृष्ण के दलवाले दूसरे दलवालों को चढ़ी चढ़ाकर ले जाने लगे। भगवान् कृष्ण ने बलदेव को उस दैत्य के कंधे पर चढ़ने को कहा। वह दैत्य बलदेव को जब ले जा रहा था, तो बलदेव का भार सँभाल न सका। वे आखिर शेषनाग के अवतार थे। अब असुर अपने भयानक लम्बे राक्षसी रूप में प्रकट हो गया। उसे देख बलदेव ने उसके सिर पर कसकर घूँसा मारा, जिससे उसका सिर फूट गया और वह बेहोश हो, पृथ्वी पर गिरकर मर गया।

पांडव, धृतराष्ट्र, कुन्ती, माद्री

महाराजा भरत के वंश में शान्तनु नामक राजा हो गये हैं। उनके देवव्रत, चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक तीन पुत्र थे। उनमें से देवव्रत ने अपने पिता से आजन्म ब्रह्मचारी और राज्य न लेने की विकट प्रतिज्ञा कर रक्खी थी। चित्राङ्गद युद्ध में मारा गया। शान्तनु की मृत्यु के बाद विचित्रवीर्य गद्दी पर बैठा। विचित्रवीर्य के तीन पुत्र थे—धृतराष्ट्र, पाडु और विदुर। बड़े भाई धृतराष्ट्र अंधे होने के कारण गद्दी पर न बैठ सके। धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी, पति के समान रहने के लिए, अपनी आँखों पर पट्टी बाँधे रहती थी।

पांडु के दो रानियाँ थीं—कुन्ती और माद्री। कुन्ती के तीन पुत्र थे—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन और माद्री के दो—नकुल और सहदेव। यही पाँचों भाई पाडव नाम से प्रसिद्ध हुए। पाडु को शाप था कि वह पत्नियों से भोग न कर सकेगा। वह बहुत ही जल्दी मर गया। माद्री उसके साथ सती हो गई।

पाडु के बाद धृतराष्ट्र गद्दी पर बैठे, क्योंकि विदुर तो दासी के पुत्र होने से गद्दी पर न बैठ सकते थे। धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए। जो कौरव के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनमे दुर्योधन सबसे बड़ा था। पाडवों और कौरवो में जो अट्ठारह दिन तक घमासान युद्ध हुआ था, वह महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है।

पुष्पक, कुबेर, रावण

पुष्पक सूर्य के समान तेजोमय एक विमान था। पुलस्त्य के पुत्र मुनि विश्रवा का एक पुत्र वैश्रवण के नाम से विख्यात हुआ। उसने हजारों वर्षों तक तप कर ब्रह्माजी को प्रसन्न किया। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे लोकपाल बना दिया और देवताओं की अपार धनराशि का कोषाध्यक्ष बना दिया। तभी ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर वैश्रवण कुबेर को मय दानव का बनाया सुन्दर पुष्पक विमान दिया था।

रावण ने भी, अपने भाई कुबेर का अनुकरण कर, घोर तप किया। रावण बड़ा पापी और दुराचारी था। तप के द्वारा अतुल बल प्राप्त कर उसने कुबेर को युद्ध में हरा दिया और उससे पुष्पक विमान छीन लिया। यह विमान इच्छाचारी, स्फटिक शिला के समान श्वेत, अन्दर से चित्र-विचित्र और रत्नजटित था। उस विमान मे स्वर्ण के स्तंभ और वैदूर्य मणि के द्वार लगे थे, उसके अन्दर सभी ऋतुओं में फल देनेवाले वृक्ष भी लगे थे। वह विमान इच्छानुसार छोटा या बड़ा भी हो जाता था। उस विमान को स्वयं ब्रह्मा ने बनवाया था। उस विमान मे सभी ऋतुओं में आराम मिल सकता था। कहीं-कहीं उसके सात और कहीं-कहीं तीन खंड थे। उसकी आकृति हंस की जोड़ी-सी लगती थी।

रामचन्द्रजी ने रावण का वध कर जब लंका जीती, तब इसी विमान पर चढ़कर वे अयोध्या लौटे थे। रामचन्द्रजी ने पुष्पक विमान कुबेर को लौटा दिया था, किन्तु कुबेर की आज्ञा से पुष्पक विमान पुनः रामचन्द्रजी की सेवा के लिए पहुँच गया।

पुष्पदन्त

एक गन्धर्वराज पुष्पदन्त था। वह किसी राजा के उद्यान में जाकर नित्य चोरी से पुष्प तोड़ लिया करता था। राजा ने चोर पकड़ने का बहुत उद्योग किया; किन्तु वह सफल नहीं हुआ। अन्त में उसने यह निश्चय किया कि वह चोर कोई साधारण चोर नहीं हो सकता, अन्यथा

इतने प्रबंध करने पर वह अवश्य ही पकड़ा जाता। दृष्टिगोचर न होने के कारण राजा ने यह अनुमान किया कि कदाचित् चोर में अन्तर्धान शक्ति भी है।

एक रात को राजा ने अपनी वाटिका में शिवजी पर चढे हुए पुष्प और माला इत्यादि इस विचार से फैला दिये कि यदि अज्ञानवश चोर इनको लाँघ जायगा तो, कुठित शक्ति हो जाने से, पकड़ लिया जायगा। जैसा राजा ने सोचा था, वैसा ही हुआ। पुष्पदन्त शक्तिरहित हो गया और पकड़ा गया। वह समझ गया कि यह दुर्दशा किस कारण हुई। तव अपनी शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए उसने जगत्प्रसिद्ध 'शिव-महिम्नः स्तोत्र' की रचना की।

प्रद्युम्न, शम्बरासुर, मायावती

शंकर की तपस्या में विघ्न डालनेवाला कामदेव जब उनके तीसरे नेत्र की अग्नि से जलकर मर गया, तो उसने रुक्मिणी के गर्भ से जन्म लिया अब उसका नाम पड़ा प्रद्युम्न। उसी काल में कामदेव का शत्रु शम्बरासुर नामक एक मायावी राक्षस था। उसे मालूम था कि प्रद्युम्न कामदेव का अवतार है। अतः उसने नवजात शिशु को उठा कर समुद्र में फेंक दिया। समुद्र की एक मछली उस बालक को निगल गई। शंवरासुर के राज्य के कुछ मछुओं ने उस मछली को पकड़कर शंवरासुर की एक दासी के हाथ राजमहल मे वेच दिया।

मायावती नाम की दासी ने मछली चीरी, तो उसके भीतर परम सुन्दर वालक को देखकर आश्चर्य मे पड़ गई। इसी समय घूमते-घामते वहाँ नारद जा निकले। उन्होने मायावती से कहा कि यही वालक तुम्हारा पति है। वह दासी वास्तव मे रति थी। वड़े होने पर प्रद्युम्न को सव वृत्तान्त ज्ञात हुआ, तो उन्होंने शम्बरासुर को मारकर अपने माता-पिता के पास जाना चाहा। मायावती ने सव मायाओं को मिटानेवाली "महामाया" नाम की

विद्या प्रद्युम्न को सिखा दी। उस माया का प्रयोग कर प्रद्युम्न ने राक्षस को मार डाला।



प्रद्युम्न द्वारा शम्बरासुर का मारा जाना

मायावती आकाश में उड़ सकती थी। वह प्रद्युम्न को अपनी पीठ पर बैठाकर द्वारकापुरी पहुँची तो सब को भ्रम हो गया कि कृष्ण गरुड़ पर चले आ रहे हैं। प्रद्युम्न भी अपने पिता कृष्ण के समान ही सुन्दर थे। उसी समय नारदजी वहाँ पहुँचे। उन्होंने बताया कि प्रद्युम्न उनका ही खोया हुआ पुत्र है। कृष्ण-रुक्मिणी प्रद्युम्न-मायावती को पाकर बड़े आनन्द से द्वारका में रहने लगे।

प्रह्लाद, हिरण्यकशिपु, कयाधू, नृसिंह, होलिका

दिति के गर्भ से कश्यप मुनि के दो पुत्र हुए, जो हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के नाम से प्रसिद्ध दैत्य हुए। वराह अवतार में हिरण्याक्ष की मृत्यु हो जाने पर, भाई की मृत्यु से, हिरण्यकशिपु बड़ा दुःखी होकर तपस्या करने चला गया। देवताओं को अवसर मिला। उन्होंने दैत्यों पर चढ़ाई कर दी और उन्हें हराकर हिरण्यकशिपु की स्त्री कयाधू को हरकर ले चले। वह उस समय गर्भवती थी। मार्ग में देवर्षि नारद मिले। उन्होंने उसे अनेक उपदेश दिये, जिन्हे कयाधू तो भूल गई; परन्तु गर्भ मे स्थित बालक ने उन उपदेशों को याद कर लिया। यही बालक भक्त प्रह्लाद के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ।

हिरण्यकशिपु तपस्या से बड़ी शक्ति प्राप्त करके लौटा और देवताओं को जीतकर त्रिलोकी का स्वामी बन गया। प्रह्लाद गुरुकुल में पढ़ने जाने और राम नाम की महिमा का प्रचार करने लगा। गुरुओं से ताड़ना मिली, पिता से दंड मिला, किन्तु सब निरर्थक हुआ। वह राम नाम रटता ही रहा। अन्त में हिरण्यकशिपु अपने पुत्र का ही शत्रु बन बैठा। उसे काले नागों से डसाया गया, विष दिया गया, पहाड़ पर से गिराया गया, समुद्र में डुबाया गया, किन्तु उसका बाल भी बाँका न हुआ। फिर पुरोहितों ने "कृत्या" नामक राक्षसी को उत्पन्न किया; किन्तु उससे पुरोहितों की ही मृत्यु हो गई। प्रह्लाद की बुआ होलिका, कभी आग में जलती नहीं थी, उसे गोद में लेकर बैठी कि प्रह्लाद जल जाय; किन्तु वह स्वयं जल गई। प्रह्लाद ज्यों का त्यों अग्नि से निकल आया।

अन्त में हारकर हिरण्यकशिपु, जो स्वयं अपने को भगवान् समझता था, खड्ग लेकर दौड़ा और प्रह्लाद से बोला—'तेरे भगवान् कहाँ है?' प्रह्लाद ने कहा—'वे सर्वत्र हैं। तुम्हारे खड्ग में भी और इस खंभे में भी हैं।' हिरण्यकशिपु ने क्रुद्ध होकर पूछा—'इस खंभे में भी?' प्रह्लाद ने कहा—'हाँ।' इस पर हिरण्यकशिपु ने खंभे पर एक घूँसा मारा। घूँसे की भयंकर ध्वनि के साथ खंभा फट गया, और उसमें से नृसिंह भगवान्

प्रकट हुए। उन्होंने हिरण्यकशिपु को मारकर उसका उद्धार किया और भक्त प्रह्लाद को राज्य सौंप दिया।

प्रियव्रत

प्रियव्रत राजा उत्तानपाद के भाई और ध्रुव के चाचा थे। वे बड़े ज्ञानी थे और संसार में फँसना नहीं चाहते थे। अतएव उन्होंने न तो ब्याह किया और न राजगद्दी पर बैठना अंगीकार किया। वास्तव में वे नारदजी के उपदेशों से प्रभावित थे। जब ब्रह्मा को यह ज्ञात हुआ, तो वे स्वयं प्रियव्रत को समझाने आये। ब्रह्मा ने सारी सृष्टि उत्पन्न की, तो उसे वह नष्ट नहीं होने देना चाहते थे। उसे बढ़ाना चाहते थे। अतएव उन्होंने समझाया कि संसार के बंधन से डरना नहीं चाहिए। राजा जनक जैसे तपस्वी भी गृहस्थ थे। अतएव संसार में रहते हुए—संसार के सब काम करते हुए—मन को जीतना चाहिए। इस उपदेश को सुनकर प्रियव्रत ने दो विवाह किये, जिससे सात तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए।

प्रियव्रत को, सूर्यास्त होने पर, अंधकार अच्छा नहीं लगता था। उन्होंने विचार किया कि मैं अपने तेज से रात को भी दिन बना दूँगा। भगवान् की आराधना तथा तपश्चर्या के कारण उनका तेज सूर्य से कम नहीं था। प्रियव्रत ने एक बहुत बड़ा रथ बनवाया। इसमें दो के स्थान पर एक ही पहिया था। उसी में बैठकर ये सूर्य के रथ के पीछे-पीछे वेग से पृथ्वी की परिक्रमा करने लगे। उन्होंने सात ही चक्कर लगाये थे कि ब्रह्मा ने आकर रोक दिया और कहा—'प्रकाश करना सूर्य का काम है, तुम्हारा नहीं। फिर चौबीसों घंटे दिन रहने से प्राणियों का नाश हो जायगा।'

प्रियव्रत का एक पहियेवाला रथ सात बार पृथ्वी-मंडल पर घूमा। उसके पहिये से सात लीकें बन गईं। वे ही सात समुद्र बन गये। बीच की धरती के सात द्वीप हो गये। उन सात द्वीपों के नाम हैं—जंबू,

प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर। प्रियव्रत ने इन सातों द्वीपों में अपने सातों प्रतापी पुत्रों को राजा बनाकर भेज दिया।

पाणिनि

यह एक प्रसिद्ध मुनि थे, जिन्होंने अष्टाध्यायी नामक प्रसिद्ध संस्कृत व्याकरण ग्रंथ की रचना की। जब इन्होंने सुव्यवस्थित शब्द-शास्त्र बनाने का निश्चय किया, तब शंकर की आराधना प्रारंभ की। भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर इन्हें विद्या प्रदान की। घर आकर पाणिनि ने शंकर से पढ़ी हुई विद्या को पुस्तक-रूप में निबद्ध किया। एक बार ये जगल में बैठे हुए शिष्यों को पढ़ा रहे थे। इतने में एक जंगली हाथी आकर इनके और शिष्यों के बीच से होकर निकल गया। कहते हैं, यदि गुरु और शिष्य के बीच हाथी निकल जाय, तो बारह वर्ष का अनध्याय हो जाता है। तब बारह वर्ष तक गुरु को अपने शिष्यों को नहीं पढ़ाना चाहिए। इसी कारण बारह वर्ष के लिए शिष्यों का पढ़ाना छोड़, इन्होंने अपने प्रसिद्ध व्याकरण की रचना कर ली।

पारिजात और कल्पवृक्ष

यह देववृक्ष स्वर्गलोक मे, इन्द्र के नन्दन कानन में, है। यह समुद्र-मंथन के समय, चौदह रत्नों के साथ, समुद्र से निकला था। इसे कल्पवृक्ष भी कहते हैं। इसके फूल में हम इच्छानुसार कोई सुगंधि सूँघ सकते हैं। नरकासुर नामक राक्षस को मारकर जब श्रीकृष्ण और सत्य-भामा गरुड़ पर सवार हो, देवताओं की माता अदिति को उनके दिव्य कुंडल वापस करने गये, तो स्वर्ग मे इन्द्र ने उन दोनों का आदरपूर्वक पूजन किया। इन्द्र ने उन्हे अपना नन्दन वन दिखाया। एक स्थान पर भगवान् श्रीकृष्ण ने पारिजात का वृक्ष देखा, जो परम सुगन्धित और मजरियों से सुशोभित सुवर्ण के समान जगमगा रहा था। सत्यभामा उस वृक्ष पर मुग्ध हो गई और श्रीकृष्ण से अपने घर के आँगन मे उसे लगाने का हठ करने लगीं। भगवान् ने कल्पवृक्ष उखाड़कर गरुड़ पर रख

लिया किन्तु वन के रक्षकों ने कहा कि पारिजात पर इन्द्र की पत्नी शची का अधिकार है। फिर भी सत्यभामा न मानी। तब शची ने इन्द्र को श्रीकृष्ण से लड़ने के लिए भेजा। इन्द्र के वज्र और श्रीकृष्ण के चक्र को देखकर तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। थोड़ी देर में ही इन्द्र की सेना भागने लगी। तब सत्यभामा ने पारिजात लौटाकर कहा कि वे केवल शची के गर्व को तोड़ना चाहती थीं; किन्तु इन्द्र ने पारिजात को द्वारकापुरी ले जाने का अनुरोध किया और कहा कि जब उसका पूरा भोग कर आप मर्त्यलोक छोड़ देंगे, तब यह पृथ्वी पर न रहेगा। पुनः यहाँ वापस आ जायगा।

पारिजात सत्यभामा के आँगन में भूलोक पर लग गया, तो उसके फूलों की सुगंधि कोसों तक पृथ्वी को सुरभित करती थी। उसके नीचे खड़े होने पर पूर्व जन्म की बातें याद आ जाती थीं और समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती थीं। सत्यभामा को यह वृक्ष इसलिए प्रिय था कि एक बार नारदजी स्वर्ग से पारिजात-पुष्प ले आये और रानी रुक्मिणी को दे गये। सत्यभामा सौतियाडाह से उस पुष्प को लेना चाहती थीं, अतएव श्रीकृष्ण से रूठ गईं। इसीलिए श्रीकृष्ण ने उन्हें स्वर्ग ले जाकर नन्दन वन में घुमाया था।

कल्पवृक्ष के पर्य्यायवाची शब्द—सुरतरु, देववृक्ष, मन्दार, पारिजात, हरिचन्दन।

पुनर्मूषक

गंगा-किनारे एक वन में एक मुनि रहते थे। उनकी कुटी में एक चूहा भी रहता था। धीरे-धीरे वह चूहा मुनि से बहुत हिल गया। एक दिन मुनि ने दया करके उसे मनुष्य की तरह बोलने की शक्ति दे दी। कुछ दिनों के उपरान्त हाथ जोड़कर चूहे ने प्रार्थना की—'हे मुनि, मेरी रक्षा करें। आश्रम में एक बिल्ली आ गई है जो मुझे झपटने की ताक में सदैव रहती है।' उसे भयभीत देखकर मुनि ने उसे बिल्ली बना दिया। बिल्ली सुखपूर्वक रहने लगी। किन्तु कुछ दिनों बाद वह मुनि से बोली कि

मुझे कुत्तों से बहुत डर लगता है। मुनि ने उसे कुत्ता बना दिया। कुत्ता वन मे इधर-उधर घूमा करता। वन में वह एक दिन एक सिंह से बहुत डर गया, तो मुनि ने दयाकर उसे सिंह बना दिया। सिंह बनते ही वह मुनि को ही खाने दौड़ा। ऋषि ने तत्काल "पुनर्मूषको भव" कहकर उसे फिर चूहा बना दिया।

पुष्कर

पुष्कर एक तीर्थ स्थान का नाम है। एक बार ब्रह्मा हाथ में कमल लिये यज्ञ करने की इच्छा से एक सुन्दर पर्वत-प्रदेश में गये। कमल उनके हाथ से गिर पड़ा। उसके गिरने पर ऐसा शब्द हुआ कि सब देवता काँप उठे। यह कमल—विष्णु की नाभि से जो कमल उत्पन्न हुआ था, उसी का एक अंग था।

उस समय वज्रनाभ नाम का एक असुर था, जो बालकों का घातक था। रसातल में तप करके उसने अतुल शक्ति प्राप्त कर ली थी। वह लोगों का संहार करने के लिए पृथ्वी पर आना ही चाहता था कि ब्रह्मा ने वह कमल गिराकर उसे मार डाला। उस पद्म के गिरने के कारण उस स्थान का नाम पुष्कर पड़ गया और वह स्थान परम पुण्यप्रद महातीर्थ बन गया। राजा नल के दुष्ट भाई का नाम भी पुष्कर था।

पुरूरवा, उर्वशी

चन्द्रमा के पुत्र का नाम था 'बुध'। उसकी पत्नी 'इला' के गर्भ से पुरूरवा का जन्म हुआ। एक बार इन्द्र की सभा मे नारदजी पुरूरवा के गुणों का गान कर रहे थे। उन्हें सुनकर उर्वशी पुरूरवा पर आसक्त हो गई। वह सुरसुन्दरी पुरूरवा के पास आकर विहार करने लगी। राजा पुरूरवा से उसने दो शर्तें कर लीं। एक तो उसे धरोहर के रूप मे दो भेड़ के बच्चे दिए और कहा—इनकी रक्षा पुत्रवत् करना। दूसरी शर्त यह रखी कि मै तुम्हें कभी वस्त्रहीन न देखूँ। राजा ने उसकी दोनों शर्तें स्वीकार कर लीं। राजा उसके साथ आनन्द-विहार करने लगा।

उर्वशी को मित्रावरुण के शाप के कारण पृथ्वी पर आना पड़ा था, अतएव इन्द्र को उर्वशी के बिना स्वर्ग फीका जान पड़ने लगा। उसने गन्धर्वों को सिखा-पढ़ा कर पुरूरवा के निकट भेजा। वे गन्धर्व आधी रात के समय, राजा के पास धरोहर रखी, भेड़ों को चुराकर ले भागे। उर्वशी अपनी भेड़ों को लुटते देखकर चिल्लाने लगी। राजा उस समय वस्त्रहीन लेटा था। वह तत्काल तलवार लेकर दौड़ा और गंधर्वों से भेड़ों को बचा कर ले आया। किन्तु उर्वशी ने उसे वस्त्रहीन देख लिया। इससे वह उसे छोड़कर चली गई। राजा उसके विरह में उन्मत्त हो सरस्वती नदी के तीर पर घूमने लगा। तब उर्वशी पुरूरवा के पुत्र "आयु" को लेकर लौट आई। इसी प्रकार वह पाँच वार आई और पुरूरवा के पाँच पुत्र हुए। पुनः जब वह छोड़कर चली गई, तब पुरूरवा को अपने विषयी जीवन पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। अपनी मूढ़ता, आसक्ति, विस्मृति और मोह पर वह अपने को धिक्कारने लगा। ज्ञानोदय होने पर उसका सारा मोह चला गया और अन्त में उसने परम पद प्राप्त किया।

पूतना

पूतना राक्षसी किसी जन्म में एक अप्सरा थी। भगवान् वामन का वालस्वरूप देखकर वात्सल्य-स्नेहवश इसके मन में आया कि मैं इस वालक को पुत्र मानकर दूध पिलाऊँ। अन्तर्यामी भगवान् उसकी मनोवाञ्छा जान गये। वह पूतना के नाम से किसी घोर पाप के कारण राक्षसी हो गई। भगवान् जब व्रजभूमि में नंद और यशोदा के यहाँ कृष्णरूप में थे, तब कंस की आज्ञा से पूतना जहाँ भी कोई बच्चा होने की खबर पाती, वहीं पहुँचकर उसे विषमय दूध पिलाकर मार डालती थी। पूतना जब व्रज में पहुँची, तो राक्षसी माया से वह एक सुन्दर स्त्री बनकर नन्द के घर गई।

नन्द के यहाँ गाना-बजाना हो रहा था। पूतना ने तुरन्त जाकर वालकृष्ण को उठा लिया और गोद में लेकर उन्हें अपना दूध पिलाने

लगी। भगवान् कृष्ण ने दोनों हाथों से उसके स्तन पकड़कर दूध के साथ उसके प्राण भी खींचना प्रारंभ कर दिया। वह हाय-हाय करके कृष्ण को अलग करने की चेष्टा करने लगी, पर बच कैसे सकती थी ? उसकी आँखें बाहर निकल आईं और वह कृष्ण को लिये हुए बाहर भागी। कुछ दूर जाकर वह गिर पड़ी और राक्षसी रूप मे ज्यों की त्यों प्रकट हो गई। जब तक उसके शरीर में प्राण रहे, श्रीकृष्ण ने नहीं छोड़ा।

सब ब्रजवासियों ने आश्चर्य में पड़कर श्रीकृष्ण की इस लीला को देखा और कुल्हाड़ियों से पूतना की देह के टुकड़े-टुकड़े कर जला दिये। भगवान् को दूध पिलाने के कारण पूतना तर गई। बकासुर की बहिन होने के कारण इसका नाम "बकी" भी था।

पूतना-वध के उपरान्त यदुवंशियों के कुल-पुरोहित गर्गाचार्य ने जाकर नन्द-यशोदा के दोनों पुत्रों का, एकान्त मे, चुपचाप नामकरण संस्कार किया, जिससे कंस को ज्ञात न हो कि वे वसुदेव के पुत्र हैं। तत्पश्चात् उनके भद्द देख उनकी लीलाओं का वर्णन वृद्ध नन्द-यशोदा से कर दिया।

पौंड्रक

करूष देश के राजा का नाम पौंड्रक था। उसे यह सनक सवार थी कि मैं ही नारायण का अवतार वासुदेव हूँ। उसने काठ के दो हाथ लगाकर अपने को चतुर्भुज विष्णु बना लिया था और अपनी सवारी के लिए एक काठ का गरुड़ भी बनवा लिया था। उसने कृष्ण के पास दूत द्वारा संदेश भेजा कि मेरी महिमा अपरम्पार है। तुम अपने को वासुदेव कहलाना छोड़ दो। तुम मेरी शरण में आकर क्षमा माँगो, अन्यथा मुझसे युद्ध करो।

दूत के मुख से यह संदेश सुनकर सब यादव जोर-जोर से हँसने लगे। कृष्ण ने भी उसकी अनर्गल बातों पर ध्यान नहीं दिया और एक बड़ी सेना लेकर करूष देश पहुँच गये। पौंड्रक भी काशी-नरेश आदि अपने मित्रों को बुलाकर एक बड़ी सेना एकत्र कर चुका था। भगवान् कृष्णचन्द्र ने देखा कि पौंड्रक ठीक उनके जैसा ही वेष बनाये हुए है।

वैसे ही शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष हाथ में लिये गले में वनमाला पहने है। उनके जैसा ही उसका वाहन भी था। नट के समान नकल करनेवाले पौंड्रक को देखकर श्रीकृष्ण बहुत हँसे। थोड़ी देर युद्ध करने के बाद पौंड्रक भगवान् के हाथ से मारा गया। उसके मित्र काशी के राजा को भी भगवान् ने मार गिराया। इस प्रकार विजय पाकर श्रीकृष्ण द्वारकापुरी लौट गये।

वक, वकासुर, भीम, कृष्ण

असुर देवताओं के शत्रु थे और राक्षस मनुष्यों के। कंस का भेजा हुआ वकासुर, बगुले के रूप में कृष्ण को मारने के लिए, व्रजभूमि मे गया था। एक दिन ग्वाल-बाल अपने बछड़ों को पानी पिलाने के लिए जल के निकट गये, तो देखा कि वहाँ एक वृक्ष के नीचे बड़ा भारी राक्षस बैठा हुआ है। बालकों ने इतना बड़ा बगुला पहले कभी नहीं देखा था। वे डरकर श्रीकृष्ण को बुला लाये। कृष्ण को देखते ही वकासुर चोंच फैलाकर दौड़ पड़ा। उसने चोंच उठाकर कृष्ण को निगलना चाहा; किंतु



कृष्ण द्वारा वकासुर का मारा जाना

कृष्ण ने फुर्ती से चोंच के नीचेवाले भाग को पैर से दबा लिया और ऊपरी भाग को दोनों हाथों से कसकर पकड़ लिया। अन्य ग्वाल-बाल उसके वृहत् मुख के भीतर घुस गये और उसे बीच से फाड़ डाला। इस तरह बकासुर मार डाला गया। राजा नन्द समझ गये कि यह बालक अवश्य दिव्य शक्ति लेकर जन्मा है। पूतना इसी बकासुर की बहिन बकी थी।

लाक्षागृह की घटना के उपरान्त पाँचों पांडव, अपनी माता कुन्ती के साथ, अनेक वनों मे घूमते-घामते एकचक्रा नगरी में एक ब्राह्मण के घर



भीम के हाथों मारा गया बक और भयभीत राक्षस

जा ठहरे। वहाँ वे भिक्षा माँगकर निर्वाह करते थे। एक दिन ब्राह्मण के घर उन्होंने रोना-धोना सुना तो कारण पूछा। ब्राह्मणी ने बतलाया कि

इस नगर में राक्षसों का राजा बक रहता है, जो बारी-बारी से प्रत्येक घर से अन्न और एक व्यक्ति का भोजन करता है और अस्वीकार करने पर वह दुष्ट सारे कुटुम्ब को खा जाता है। ब्राह्मण के एक पुत्र और एक कन्या थी, इसलिए वे चिन्ता कर रहे थे कि किसको भेजें। तब कुन्ती ने कहा कि आप चिन्ता न करें। मेरे पाँच बेटे हैं। उनमें वृकोदर भीम तो इतना बलवान् है कि वह अवश्य उस राक्षस को मार डालेगा।

भीम ने उस राक्षस को पटक-पटककर यमपुरी भेज दिया। बक के मारे जाने की खबर सुनकर, वन से अन्य राक्षस दौड़े आये; पर वे भीम को देखकर भयभीत हो गये। तब भीमसेन ने उनसे प्रतिज्ञा करवाई कि अब कभी मनुष्यों को मत सताना। बक के मरने से एकचक्रा नगरी के निवासी सुख से रहने लगे।

असुर के पर्य्यायवाची शब्द—दनुज, दानव, रजनीचर, निशाचर, मनुजाद, दैत्य, राक्षस, तमीचर, निशिचर, इन्द्रारि।

बलि, वामनावतार

महादानी बलि प्रह्लाद के पुत्र विरोचन के पुत्र थे। बलि पूर्व जन्म में एक महापापी जुआड़ी था। शिवजी का पूजन करने के कारण, मृत्यु के उपरान्त, चित्रगुप्त ने उसे तीन घड़ी के लिए इन्द्र का पद दिया, तो इन्द्र दुःखी हो, अपना पद छोड़कर चला गया। तब जुआड़ी ने सिंहासन पर बैठते ही दान करना प्रारंभ किया। "ऐरावत" हाथी अगस्त्य मुनि को और "उच्चैःश्रवा" घोड़ा विश्वामित्र को दे दिया। 'कामधेनु' महर्षि वशिष्ठ को और "चिन्तामणि रत्न" गालव मुनि को समर्पित कर दिया। "कल्प-वृक्ष" कौण्डिन्य मुनि को दिया ही था कि तीन घड़ियाँ समाप्त हो गईं। इन्द्र ने आकर देखा कि उसका सारा ऐश्वर्य नष्ट हो गया, तो बड़ी कठिनाई से मुनियों से समस्त वस्तुओं को वापस लिया। तत्पश्चात् वह जुआड़ी विरोचन के घर जन्म लेगा, यह सुनकर इन्द्र—ब्राह्मण का वेश

धारण कर—विरोचन के पास पहुँचा और दान मे उसका मस्तक माँगा। महादानी विरोचन ने प्रसन्नतापूर्वक अपना मस्तक काटकर दे दिया। पर तब तक विरोचन के बलि नामक पुत्र हो चुका था। बलि बड़ा पराक्रमी हुआ। उसने विश्वजित् नामक यज्ञ किया, जिससे इन्द्र बहुत भयभीत हो गया। बलि का शासन तीनों लोकों मे व्याप्त देखकर दुखी और चिन्तित इन्द्र की माता अदिति ने विष्णु भगवान् की स्तुति की, जिससे भगवान् ने अदिति के पुत्र होकर जन्म लेना स्वीकार किया।

बलि अपने गुरु शुक्राचार्य की सम्मति से सौवाँ अश्वमेध यज्ञ कर रहा था कि भगवान् विष्णु, वामनावतार लेकर, एक ब्रह्मचारी बौने के वेश मे यज्ञभूमि मे पहुँचे और राजा बलि के दान का गुणगान करते हुए उन्होंने तीन पग भूमि दान मे माँगी। शुक्राचार्य गुरु ने बलि को मना किया; किन्तु बलि नहीं माना, तो शुक्राचार्य ने उसे शाप दे दिया कि तेरी राज्यलक्ष्मी नष्ट हो जाय। उसी समय शुक्राचार्य की आँख में सींक चुभ गई, जिसके कारण वे काने हो गये। जब वह कुपित हो, अपने आश्रम को चले गये, तो विरोचन-पुत्र बलि ने अपने अतिथि वामन की पूजा कर भूमि दान मे दी। तब भगवान् ने अपना विराट् रूप धारणकर एक पग से पृथ्वी, दूसरे से स्वर्ग और तीसरे से पाताल नाप लिया। इसी समय ब्रह्मा ने भगवान् के चरण धोकर अपने कमडलु में चरणामृत भर लिया, जिससे बाद में गगाजी पृथ्वी पर प्रकट हुईं।

त्रिलोकों को नापने के उपरान्त वामन भगवान् ने आधा पग भूमि दक्षिणा-स्वरूप माँगी। तब महादानी बलि ने अपनी पीठ सामने कर समस्त शरीर उनके चरणो पर—नापने के लिए—समर्पित कर दिया। भक्त पर प्रसन्न हो भगवान् ने उसके सिर पर अपने चरण रखकर उसे इन्द्र से भी अधिक सुख भोगने के स्थान सुतल लोक मे भेज दिया और स्वयं वहाँ उनके द्वारपाल बन गये। तदनन्तर इन्द्र को पुनः अपना राज्य स्वर्ग मे प्राप्त हो गया और समस्त देवता प्रसन्न हो गये। ये उससमय से "बलिदान" शब्द, राजा बलि की दानशीलता को देखकर ही, प्रचलित

हो गया। वलिदान का अर्थ है सर्वस्व दान, जैसा कि राजा बलि ने किया था।

वर्वरीक, भीम

घटोत्कच की उत्पत्ति के उपरान्त उसकी माता हिडिम्बा वन में तपस्या करने चली गई, तव घटोत्कच एक वार पांडवों से मिलने गया। वहाँ श्रीकृष्ण ने उसे प्राग्ज्योतिषपुर के 'मुर' नामक दैत्य की पुत्री "कामकटंकटा" से विवाह करने को कहा। मुर की पुत्री की प्रतिज्ञा थी कि जो कोई उसे निरुत्तर कर देगा और उसी के समान वलवान् होगा, उससे विवाह करेगी। घटोत्कच प्राग्ज्योतिषपुर गया। उसने मुर की पुत्री को वल से जीत लाया। यथासमय उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। घुँघराले वर्वराकार केश होने के कारण उस पुत्र का नाम रखा गया "वर्वरीक।" वड़े होने पर वर्वरीक अपने पिता को लेकर द्वारकापुरी गया। उसने कृष्णजी से उपदेश ग्रहण किया। श्रीकृष्ण की सम्मति से वर्वरीक ने तीर्थ स्थान गुप्तक्षेत्र में जाकर 'दुर्गा' की आराधना की। आराधना के समय विघ्न डालनेवाले अनेक राक्षसों को वर्वरीक ने मार डाला। एक वार 'पलाशी' नामक दैत्य, संन्यासी का रूप धारणकर, आया; किन्तु वर्वरीक ने उसे भी पहचानकर यमलोक भेज दिया। पलाशी की मृत्यु से नागराज वासुकि वहुत प्रसन्न हुए।

कुछ समय उपरान्त जुए में सव कुछ हारकर पांडव उस तीर्थस्थान मे पहुँचे और देवी के कुण्ड मे स्नान करने लगे। वर्वरीक पांडवों को नहीं पहचानता था। जल को अपवित्र करने के कारण वह भीम से युद्ध करने लगा। जव घोर संग्राम होने लगा, तव शिवजी ने प्रकट होकर कहा—'हे वर्वरीक, तुम अपने पितामह से ही युद्ध कर रहे हो। तुम्हारे पिता इन्हीं भीमसेन के पुत्र हैं।' यह सुनकर वर्वरीक भीमसेन के पैरों मे गिर क्षमा-याचना करने लगा।

महाभारत के युद्ध के पूर्व एक बार युधिष्ठिर ने सब महारथियों से पूछा—'कौन कितने समय में कौरवों का संहार कर सकता है?' अर्जुन ने बड़े गर्व से कहा कि मै सेना सहित कौरवों को एक दिन मे नष्ट कर सकता हूँ। इस पर बर्बरीक ने हँसकर कहा कि मै तो एक ही मुहूर्त्त मे सब कौरवों को यमलोक पहुँचा दूँगा। देवी के दिये बाणों से मे सब कौरवों के मर्म स्थान का निरीक्षण कर चुका हूँ। तब कृष्ण ने उसकी गर्वोक्ति सुन, उस पर कुपित हो, सुदर्शन चक्र से उसका मस्तक काट डाला।

बर्बरीक पूर्व जन्म मे सूर्यवर्चा नामक एक यक्ष था, जिसने अहंकार-वश ब्रह्मा के सम्मुख कह दिया कि पृथ्वी का भार तो मैं ही दूर करूँगा। तब ब्रह्मा ने शाप दिया कि जब पृथ्वी का भार उतारने को विष्णु भगवान् अवतार लेंगे, तब तुम पृथ्वी पर जन्म लोगे और गर्वोक्ति करने पर तुम्हारा मस्तक काटकर भगवान् तुम्हारा उद्धार करेंगे।

बाणासुर

राजा बलि के सौ पुत्रों मे से एक सहस्रबाहु था। इसके एक हजार हाथ थे। पहले यह परम शैव था, किन्तु श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करते-करते जब इसके चार हाथ रह गये, तब यह भगवद्भक्त हो गया। इसकी पुत्री उषा प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को ब्याही गई थी। लेकिन इसके कारण 'बाण' को श्रीकृष्ण से लड़ना पड़ा। 'बाण' ने अनिरुद्ध को चुपके-चुपके उषा के साथ प्रेम करने के अपराध पर कैद कर लिया था। इसकी राजधानी का नाम शोणितपुरी था। यह नगरी पाताल में थी। इसने शिवजी को प्रसन्न कर वर प्राप्त कर लिया था, जिससे देवता लोग इसके साथ अनुचरों के समान रहते थे। युद्ध के समय स्वयं महादेवजी बाणासुर की सहायता करने आये थे। भक्त के लिए शिवजी ने कृष्ण के साथ घनघोर संग्राम किया। अन्त मे शिवजी ने कहा कि

बाणासुर मेरा भक्त है, उसे अभयदान दीजिए। तब भगवान् ने कहा— बाणासुर मेरे भक्त प्रह्लाद का प्रपौत्र है। मैं उसे कभी न मारता। दंड देने के लिए भुजा काटे देता हूँ, केवल चार भुजाएँ छोड़ दूँगा।

बाण के *पर्य्यायवाची* शब्द—शर, विशिख, आशुग, शिलीमुख, नाराच, इषु, तीर।

बालखिल्य

ब्रह्मा के रोएँ से उत्पन्न बालखिल्य महर्षि क्रतु और सन्नति के पुत्र कहलाते हैं। साठ हजार ऋषियों का समूह बालखिल्य कहलाता था। ये ऋषि आकार में अँगूठे के बराबर थे। ये ही भगवान् सूर्य के रथ के आगे-आगे उनकी ओर मुँह करके स्तुति करते हुए चलते थे। इन्हीं की तपस्याशक्ति को सूर्य ने धारण किया।

एक बार बालखिल्य ऋषि तपस्या करते-करते अत्यन्त दुर्बल हो गये। वे जब कश्यप ऋषि के लिए समिधा ला रहे थे, तो थककर गाय के खुर से बने हुए गड्ढे में गिर पड़े, मानो समुद्र में गिर गये हों। उन्होंने भगवान् की स्तुति की, तब भगवान् ने उनका उद्धार किया।

बालि, सुग्रीव, मतंग, दुन्दुभी, ऋक्षराज

ऋष्यमूक पर्वत पर बन्दरों का राजा सुग्रीव, अपने मंत्री हनुमान के साथ, रहता था। वह पहले किष्किन्धापुरी में रहता था। सुग्रीव के बड़े भाई का नाम बालि था। वह बड़ा शूरवीर था। सुग्रीव धर्मात्मा और बालि बड़ा पापी था, इसलिए दोनों मे सदा अनबन रहती थी। दोनों में कई बार घोर युद्ध हुआ। अन्त में सुग्रीव हार गया। बालि ने सुग्रीव को किष्किन्धापुरी से निकाल दिया। और उसकी स्त्री "रुमा" को छीन लिया सुग्रीव बेचारा बालि के डर से ऋष्यमूक पर्वत पर जा छिपा।

राम और लक्ष्मण सीता को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब इस पर्वत के पास पहुँचे, तो सुग्रीव से मित्रता हो गई। रामचन्द्रजी ने प्रतिज्ञा की कि वालि को मारकर मैं सुग्रीव को उसकी स्त्री और किष्किन्धा का राज्य दिला दूँगा और सुग्रीव ने प्रतिज्ञा की कि मैं अपने बन्दरों को चारों ओर भेजकर सीताजी की खबर मँगा दूँगा। इस प्रकार दोनों की मित्रता पक्की हो गई।



ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव, हनुमान् तथा जामवन्त

वालि को यह वरदान मिला था कि जो कोई आमने-सामने उससे लड़ेगा, उसका आधा बल वालि में आ जायगा। इसलिए सुग्रीव और वालि का जब युद्ध हुआ, तो रामचन्द्रजी एक वृक्ष की ओट में छिप गये। सुग्रीव जब हारने ही वाला था, तब रामचन्द्रजी ने बाण से वालि को मार डाला। सुग्रीव को स्त्री, राज्य और किष्किन्धापुरी फिर प्राप्त हो गई। वालि का पुत्र अंगद युवराज बन गया। वालि की पत्नी तारा को व्याकुल देखकर भगवान् ने ज्ञानोपदेश दिया जिससे उसे परम भक्ति का वरदान मिला।

एक बार वालि को मतंग ऋषि ने शाप दिया था। मय दैत्य के दो पुत्र थे—मायावी और दुन्दुभी। दुन्दुभी बड़ा बलवान् था। उसने एक बार समुद्र की थाह ली तो समुद्र उसकी कमर तक आया। हिमाचल के पास गया, तो उसे ऊपर उठा लिया। इस पर हिमाचल ने उससे कहा—'तुम पंपापुर जाओ, वहाँ वालि नामक वानर बड़ा बलवान् है। उससे जाकर लड़ो, तब हम तुम्हारा बल जाने।' वह "वालि-वालि" चिल्लाता पंपापुर आया। दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा। वालि ने उसे घूँसा मारा और उसकी दो फाँक करके एक उत्तर और दूसरी दक्षिण दिशा में फेंक दी। इस घटना से मतंग ऋषि के आश्रम के निकट से रक्त की नदी बहने लगी।

मतंग ऋषि ने जब सब वृत्तान्त सुना तो क्रोध में आ शाप दिया कि इस ऋष्यमूक पर्वत को देखते ही वालि मर जायगा। इसीलिए वालि से शत्रुता होने पर सुग्रीव, हनुमान् आदि इसी पर्वत पर जाकर छिपे थे।

वालि इन्द्र-पुत्र था। एक बार मेरु पर्वत पर तपस्या करते समय ब्रह्मा की आँखों से एक आँसू गिरा। उस आँसू से ऋक्षराज नामक बन्दर उत्पन्न हुआ। ऋक्षराज ने एक दिन पानी में अपनी छाया देखी, तो उसमें कूद पड़ा। पानी में गिरते ही ब्रह्मा की आज्ञा से उसने एक सुन्दर स्त्री का रूप धारण किया। उसी समय इन्द्र और सूर्य उस रूपवती स्त्री को देखकर मुग्ध हो गये। इन्द्र ने अपना तेज उसके मस्तक पर और सूर्य ने अपना तेज उसके गले में डाल दिया। इस प्रकार उस स्त्री से, इन्द्र के वीर्य से "वालि" और सूर्य के वीर्य से "सुग्रीव" नामक दो बन्दर उत्पन्न हुए। कुछ दिनों उपरान्त ब्रह्मा की आज्ञा से पुनः बन्दर बनकर ऋक्षराज किष्किन्धा में राज्य करने लगा।

वालि और सुग्रीव में पहले बड़ा प्रेम था। एक दिन मयासुर के पुत्र मायावी नामक राक्षस ने, आधी रात को, नगर द्वार पर जाकर वालि को युद्ध के लिए ललकारा। वालि दौड़ पड़ा और सुग्रीव को पन्द्रह दिन तक प्रतीक्षा करने को कह, दैत्य के पीछे-पीछे एक गुफा

मे घुस गया। सुग्रीव एक महीने तक बैठा रहा। अन्त में गुफा के अन्दर से रक्त की धारा बहती देख उसने समझा कि बालि मर गया। उसने गुफा के द्वार को बन्द कर अपने को राजा घोषित कर दिया। बालि जब गुफा से निकला, तो उसने भ्रमवश समझा कि यह सब सुग्रीव का षड्यंत्र था। वह सुग्रीव पर टूट पड़ा और उसे मारकर भगा दिया।

बेहुला (विपुला), मनसा

चम्पक नगरी मे चन्द्रधर नामक एक धनी वैश्य था। वह शैव था और वासुकि नाग की बहिन मनसा देवी से इसका बड़ा विरोध था। इसी विरोध के कारण मनसा देवी ने चन्द्रधर के छः पुत्रों को विषधर नागों से डसवाकर मरवा डाला। सातवें पुत्र लक्ष्मीन्द्र का विवाह विपुला (बेहुला) नामक कन्या से हुआ तो दोनों को चन्द्रधर ने लोहे के, एक विशेष रूप से बनाये, मकान में रखा, कारण कि ज्योतिषियों ने बता दिया था कि विवाह की प्रथम रात्रि में ही सर्प के काटने से लक्ष्मीन्द्र की मृत्यु हो जायगी।

मनसा देवी ने भवन-निर्माताओ में से एक शिल्पी को, दीवार में एक सूक्ष्म छिद्र बनाने को, कह दिया। विवाह के दिन मनसा द्वारा भेजी एक नागिन उसी छिद्र से गई और लक्ष्मीन्द्र को डस आई। प्रातःकाल हाहाकार मच गया। बेहुला ने साँप के काटे अपने पति के शव को जलाने नहीं दिया। केले के स्तंभों की एक नौका-सी बनवाकर उसमें बेहुला, पति के शव को गोद मे ले, बैठ गई। नदी की तरंगें उसे दूर बहा ले गईं।

महीनों व्यतीत हो गये। शव मे कीड़े पड़ने लगे। अस्थि-पंजर-मात्र अवशिष्ट रह गया; किन्तु बेहुला अन्न-जल के बिना नौका मे बहती रही। एक दिन बहते-बहते नाव किनारे जा लगी तो बेहुला ने नेता नाम की एक धोबिन को कपड़े धोते हुए देखा। धोबिन का बच्चा रो पड़ा, तो उसने तुरन्त बच्चे को मार डाला। फिर कपड़े धोकर चलने लगी, तो उसने बच्चे को पुनः जीवित कर लिया। धोबिन वास्तव मे मनसादेवी की भेजी हुई

सहेली थी। वेहुला के कठोर तप से उसका मन पिघल गया। नेता वेहुला को साथ लेकर अपने लोक गई। पति की अस्थियाँ वक्षःस्थल से चिपकाये हुए वेहुला को मनसादेवी ने देखा, तो वह दया से द्रवित हो गई। उसने उन अस्थियों को स्पर्श किया, तो लक्ष्मीन्द्र जीवित हो गये। वेहुला और लक्ष्मीन्द्र पुनः चम्पक नगरी में जाकर सुख से राज्य करने लगे।

ब्रह्मा, सरस्वती, गायत्री

ब्रह्म के तीन सगुण रूपों में से सृष्टि की रचना करनेवाला रूप ब्रह्मा है। इन्हें सृष्टिकर्ता, विधाता और पितामह भी कहते हैं। समुद्र में भगवान् जब योगनिद्रा मे शयन करने लगे, तो उनकी नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ। उससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई।

ब्रह्मा के चार मुख माने जाते हैं। कहते हैं, एक वार ब्रह्मा के शरीर से एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई तो वे उस पर मोहित होकर ताकने लगे। वह उनके चारों ओर घूमने लगी। जिधर वह जाती, उधर देखने के लिए ब्रह्मा के एक सिर उत्पन्न हो जाता। अतएव चारों दिशाओं मे देखने के लिए ब्रह्मा के चार मुँह हो गये। इनके दस मानस-पुत्र हुए—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद। सृष्टि उत्पन्न करने के कारण ये दस प्रजापति भी कहलाते हैं। मनुष्य के शुभाशुभ फल या भाग्य को, गर्भ के समय स्थिर करनेवाले, विधाता ब्रह्मा ही माने जाते हैं। ब्रह्मा की स्त्री विद्या की देवी सरस्वती और सावित्री हैं। ब्रह्मा की अनेक पत्नियों में सावित्री अथवा गायत्री भी प्रसिद्ध है। एक वार एक यज्ञ के समय ब्रह्मा ने सरस्वती को बुलवा भेजा; किन्तु उस समय सरस्वती किसी काम में व्यस्त थीं। यज्ञ के अनुष्ठान के समय पत्नी का होना अनिवार्य था, अतएव उन्होंने पृथ्वी की एक गोपकन्या गायत्री से विवाह कर यज्ञ पूरा कर लिया। गायत्री वेदमाता और पूज्य कहलाने लगीं। उनके नाम का एक मन्त्र प्रसिद्ध हो गया।

सरस्वती ने जब इस विवाह के विषय में सुना, तो क्रोध कर ब्रह्मा को शाप दिया कि पृथ्वी पर तुम्हारी कोई पूजा न करेगा। ब्रह्मा और सरस्वती का वाहन हंस है।

ब्रह्मा के पर्य्यायवाची शब्द—स्वयंभू, विरञ्चि, पितामह, विधाता, विधि, विधना, चतुरानन।

सरस्वती के पर्य्यायवाची शब्द—ब्राह्मी, भारती, भाषा, महाश्वेता, वाणी, शारदा, गिरा, वीणापाणि, वागीशा, वागेश्वरी।

भरद्वाज

भरद्वाज मुनि भगवान् बृहस्पति के भाई उतथ्य के पुत्र थे। रामायण की कथा का प्रचार इन्हीं के द्वारा हुआ। ये गंगा-यमुना के किनारे प्रयागराज में रहते थे। इनका आश्रम बहुत प्रसिद्ध था। याज्ञवल्क्य मुनि से ये रामकथा सुनते थे। भगवान् श्रीराम वनवास के समय सर्वप्रथम इन्हीं के आश्रम मे आये थे। पर अयोध्या को निकट जान, चित्रकूट चले गये। इनकी एक पुत्री याज्ञवल्क्य को ब्याही थी। दूसरी पुत्री कुवेर की माता थी, जो विश्रवा की पत्नी थी।

भरद्वाज अद्वितीय रामानुरागी थे। इनके पुत्र का नाम द्रोणाचार्य था। एक बार भ्रमवश इन्होंने अपने मित्र "रैभ्य" को शाप दे दिया था, पर पीछे से पछताकर स्वयं जल मरे; किन्तु रैभ्य के पुत्र अर्वावसु ने अपने प्रभाव से इन्हें फिर जिला दिया। ये राजा दिवोदास के पुरोहित थे।

भस्मासुर, शंकर

शकुनि दानव का लड़का वृकासुर था। वह तप करना चाहता था, अतएव उसने राह मे जाते हुए नारद मुनि को प्रणाम कर पूछा कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनमे जल्दी प्रसन्न होनेवाला कौन है? मुझे बता दो, तो मैं तप मे उन्हीं की आराधना करूँगा। नारद ने शिवजी का आशुतोष

नाम बतलाकर कहा—शिवजी ही जल्दी प्रसन्न होते हैं। तुम उन्हीं की आराधना करो।

वृकासुर ने केदार तीर्थ में जाकर शिव को प्रसन्न करने के लिए अपने शरीर का मांस काट-काटकर अग्नि मे होम करना प्रारंभ कर दिया। सात दिन के उपरान्त भी जब शंकर ने दर्शन नहीं दिये, तो वह तलवार लेकर अपना सिर काटकर आहुति देने को तैयार हो गया। उसी समय शंकर ने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया और प्रसन्न होकर कहा—'वरदान माँगो।' तब उस पापी असुर ने यह वरदान माँगा कि मैं जिसके सिर पर हाथ रख दूँ, वही राख का ढेर हो जाय। शंकर को लाचार हो 'तथास्तु' कहना पड़ा।

उस दुष्ट असुर ने पार्वती को लेने के लिए सबसे पहले शिवजी के सिर पर ही अपना हाथ रखना चाहा। उसे अपनी ओर आते देख, शंकरजी घबराकर दौड़े। भागते-भागते शिवजी विष्णुलोक पहुँचे तो सर्वज्ञ भगवान् विष्णु ने ब्रह्मचारी का रूप धारणकर भस्मासुर के सामने जा उससे मित्रता कर झूठमूठ कहा—भला, शिवजी क्या वरदान देंगे? भंग पीकर वे सदा मतवाले बने घूमते रहते हैं। कालकूट विष पीने से उनका मस्तक खराब हो गया है। मुझे तो विश्वास नहीं होता?

ब्रह्मचारी ने वृकासुर को बातों में बहलाकर परीक्षा के लिए उसका हाथ उसी के सिर पर रखवा दिया। जैसे ही उसने अपना हाथ अपने सिर पर रखा वह भस्म हो राख का ढेर हो गया। तब से वह भस्मासुर कहलाने लगा। इस प्रकार विष्णु भगवान् ने शिवजी को संकट से बचाया। इसीलिए भगवान् 'संकटमोचन' कहलाते हैं।

भरत

कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न, अयोध्या के, राजा दशरथ के पुत्र का नाम भरत था। ये रामचन्द्रजी के छोटे भाई थे। इनका विवाह जनक-पुत्री माण्डवी से हुआ था। ये प्राय: शत्रुघ्न के साथ अपने ननिहाल में मामा के पास रहते थे और दशरथ की मृत्यु के उपरान्त अयोध्या आये थे।

दशरथ का श्राद्ध आदि इन्होंने ही किया। अपने लिए राज्य तथा पूज्य भाई राम के वनवास का समाचार सुनकर, इन्होंने अपनी माता की बहुत निन्दा की। राम के प्रति इनके हृदय में असीम श्रद्धा थी।

पिता का श्राद्ध आदि करने के उपरान्त रामचन्द्रजी को वापस अयोध्या लाने के लिए ये चित्रकूट गये थे। जब रामचन्द्रजी ने लौटना अस्वीकार किया, तो उनकी चरण-पादुकाएँ लेते आये और उन्हें ही राजा समझ, अयोध्या का राजकाज संभालते रहे। इनके दो पुत्र थे—तक्ष और पुष्कर। इन्होंने गंधर्व देश के राजा शैलूष के साथ युद्ध किया और उसे परास्त करके उसका राज्य अपने दोनों पुत्रों को बाँट दिया। तत्पश्चात् रामचन्द्रजी के साथ स्वर्ग चले गये।

दुष्यन्त-शकुन्तला के पुत्र का नाम भी भरत था। आकाशवाणी सुनकर शकुन्तला के पुत्र "सर्वदमन" का भरण-पोषण जब दुष्यन्त ने किया, तो उसका नाम उन्होंने "भरत" रखा। बड़े होने पर वह बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने अनेक अश्वमेध और राजसूय यज्ञ किये थे।

भानुप्रताप, कालकेतु, रावण

भानुप्रताप कैकय देश के राजा सत्यकेतु का पुत्र था। एक दिन वह शिकार खेलने गया। उसे जंगल में एक सूअर देख पड़ा। उसका पीछा करते-करते भानुप्रताप वन में खो गया। भटकते-भटकते वन में उसे एक तपस्वी का आश्रम मिला। राजा ने वहीं निकट के एक तालाब से जल पीकर प्यास बुझाई और तपस्वी से बातें करके रात बिता दी। तपस्वी ने अपने मित्र कालकेतु राक्षस को बुलाया और क्षण भर में राजा को उसकी राजधानी पहुँचा दिया और उसके घोड़े को घुड़साल में बाँध दिया। फिर भानुप्रताप के पुरोहित को उठाकर पर्वत की गुफा में बन्द कर आया और स्वयं पुरोहित का वेश बना लिया।

कपटी मुनि के तपोबल से भानुप्रताप बहुत प्रभावित हुआ। उसने ब्राह्मणों को भोजन का निमन्त्रण दिया। पुरोहित ने अनेक प्रकार के मांस में मनुष्य का मांस भी पकवाया। जब ब्राह्मण भोजन करने के लिए बैठे

और राजा स्वयं परोसने जा रहा था, तब आकाशवाणी हुई कि 'ब्राह्मणो, तुम लोग यह अन्न मत खाओ। इसमें मनुष्य का मांस है।' ब्राह्मण लोग आकाशवाणी सुनकर क्रुद्ध हो गये और राजा को शाप दे बैठे कि तुम परिवार सहित राक्षस हो जाओ। वही राजा भानुप्रताप मरने पर दूसरे जन्म में रावण हुआ।

भृगु

भृगु मुनि ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से थे। ये अपनी तपस्या के लिए विख्यात थे। इनका विवाह दक्ष प्रजापति की पुत्री ख्याति से हुआ था, जिससे उनके धाता और विधाता नाम के दो पुत्र और लक्ष्मी नामक पुत्री हुई।

किसी-किसी मन्वन्तर में भृगु की गणना सप्तर्षियों में होती है। महर्षि च्यवन इन्हीं के पुत्र थे। एक समय सरस्वती नदी के किनारे बहुत से ऋषिगण बैठे हुए बात कर रहे थे कि यह विवाद छिड़ गया कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश में कौन बड़ा है। भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ होने पर ब्रह्मा के पुत्र भृगु को तीनों देवों की परीक्षा लेने के लिए भेजा गया। सर्व-प्रथम वे ब्रह्मलोक में ब्रह्मा की सभा में चुपके से जा बैठे। न दंडवत् की, न स्तुति की। अपने पुत्र की इस अशिष्टता से ब्रह्मा को मन में बड़ा क्रोध आया, पर तत्क्षण अपना पुत्र समझकर उन्हे क्षमा कर दिया। उन्हे रजोगुण से परिपूर्ण देख, भृगु मुनि कैलाश पर्वत पर अपने बड़े भाई रुद्रदेव शिवजी के पास गये। अपने छोटे भाई को देख, शिवजी बड़े प्रेम से खड़े हो गये और आलिङ्गन करने के लिए आगे बढ़े, तो भृगु मुनि बैठ गये। यह देख, शिवजी क्रोधित हो त्रिशूल उठाकर मारने दौड़े, पर पार्वती ने बचा लिया। महादेवजी को भी तमोगुणी देख उन्हे शाप दिया कि तुम्हारी लिंग-पूजा हो। फिर वे वैकुण्ठ पहुँचे।

भगवान् का द्वार तो सबके लिए खुला रहता है। भृगु सीधे अन्दर पहुँचे, तो देखा कि विष्णु भगवान् शयन कर रहे है और लक्ष्मी उनके पैर दबा रही हैं। भृगुजी ने निडर हो, उनकी छाती में एक लात

मारी तो वे नींद मे चौंक उठे। भृगुजी को देख विष्णु भगवान् चरणों में गिर पडे और झटपट उनके चरण दबाने लगे। क्षमा-याचना करते हुए वे बोले—क्षमा कीजिए। मेरा हृदय बड़ा कठोर है। आपके कोमल चरणों में अवश्य चोट आ गई होगी।

यह सुन भृगुजी ने लौटकर सत्त्वगुणी भगवान् की महत्ता का वृत्तान्त सब ऋषियों को सुनाया। तमोगुणी शिवजी को उन्होंने शाप दिया था कि तुम्हारी पूजा लिंगरूप में हो। ब्रह्मा को रजोगुणी देखकर शाप दिया कि तुम्हारी पूजा कोई न करे। विष्णु भगवान् को सर्वश्रेष्ठ देव घोषित कर भृगु मुनि ने उन्हीं को पूज्य बताया।

विष्णु भगवान् के वक्षःस्थल पर भृगु मुनि के चरण-प्रहार का अमिट चिह्न बन गया, जो "श्रीवत्स", "भृगुरेखा" और "भृगुलता" कहलाता है। भृगु की पुत्री लक्ष्मी ने जब पति का अपमान देखा तो भृगु से रुष्ट होकर शाप दिया कि मैं ब्राह्मणों के घर जाने मे अब संकोच किया करूँगी। परशुराम भृगु वंश मे उत्पन्न हुए थे। भृगु मुनि के आशीर्वाद से ही परशुराम के पिता जमदग्नि की उत्पत्ति हुई थी।

भृगुसंहिता नामक एक फलित ज्योतिष का ग्रन्थ भृगु मुनि का ही लिखा हुआ है।

भीम, घटोत्कच, जतुगृह, विराट

भीम युधिष्ठिर से छोटे और अर्जुन से बडे भाई थे। यह बहुत ही वीर और बलवान् थे। जन्म के समय जब ये माता की गोद से एक पत्थर पर गिर पड़े तो पत्थर टुकड़े-टुकडे हो गया था। इनका और दुर्योधन का जन्म एक ही दिन हुआ था। दुर्योधन इनसे सदैव ईर्ष्या करता था। एक दिन उसने इन्हें धोखे से विष खिला दिया और जब ये वन में मूर्च्छित हो गये, तो लतादि की रस्सी बनाकर इन्हें बाँधा और जल में फेंक दिया। जल मे नागों के डसने के कारण इनका पहला विष उतर गया तब नागराज ने इन्हें अमृत पिलाकर, इनमे दस हजार हाथियों का बल उत्पन्न करके, वापस घर भेज दिया।

कई बार अपने परम सखा कर्ण और अपने मामा शकुनि के द्वारा दुर्योधन ने इनकी हत्या करानी चाही। दुर्योधन के मित्र विरोचन द्वारा निर्मित जतुगृह जल गया, पर सब पांडव बच गये।

जतुगृह से जल्दी-जल्दी भागने के लिए भीम माता कुन्ती को कन्धे पर, नकुल-सहदेव को गोद में, अर्जुन और युधिष्ठिर को दोनों भुजाओं पर बैठाकर वायुवेग से वन में दौड़े थे।

भीम गदायुद्ध में पारंगत थे। जतुगृह के जलने पर वन में हिडिम्ब की बहन हिडिम्बा से भीम ने विवाह किया, जिससे घटोत्कच नामक पुत्र हुआ। जब युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया, तो भीम दिग्विजय के लिए गये थे। दुर्योधन ने जब द्रौपदी का भरी सभा में अपमान किया, तो भीम ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं दुर्योधन की जाँघ तोड़ डालूँगा और दुःशासन से लड़कर उसका खून पिऊँगा।

अज्ञातवास के समय में "वल्लव" नाम से सूपकार बनकर भीमसेन विराट के घर में रहे थे। जब कीचक ने द्रौपदी से छेड़-छाड़ की, तब भीम ने ही उसे मारा। कुरुक्षेत्र में सब कौरवों का नाश कर उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

महाप्रस्थान के समय ये भी युधिष्ठिर के साथ थे। सहदेव, नकुल और अर्जुन तीनों के मर जाने के उपरान्त इनकी मृत्यु हुई। ये वृकोदर भी कहलाते थे। एक बार भीमसेन ने सात हाथियों को आकाश में फेंक दिया था, जो आज तक वायुमंडल मे ही घूमते रहते हैं। वे लौटकर पृथ्वी पर नहीं आये।

कुम्भकर्ण के पुत्र का भी नाम "भीम" था। वह रावण की सेना का सेनापति था।

भौमासुर, कृष्ण, सत्यभामा, मुर

भूमि का पुत्र भौमासुर प्राग्ज्योतिषपुर का स्वामी बड़ा बली था। वह इन्द्र को हराकर इन्द्र की माता अदिति के कुंडल और इन्द्र का छत्र तथा मन्दर शिखर नामक महामूल्य मणि छीन लाया था। वह छत्र

असल में जल के राजा वरुण का था। वरुण ने इन्द्र को भेंट कर दिया था। इन्द्र ने जब देखा कि वह भौमासुर को हरा नहीं सकता, तो उसने श्रीकृष्ण के आगे जाकर अपना दुखड़ा रोया कि भौमासुर ने मेरा और मेरी माता का बड़ा अपमान किया है। आप मेरी सहायता कीजिए।

श्रीकृष्ण इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार कर, गरुड़ पर बैठ, भौमासुर के प्राग्ज्योतिषपुर नामक नगर की ओर प्रस्थान कर ही रहे थे कि उनकी पत्नी सत्यभामा ने कहा—'मैं भी साथ चलकर आपकी सहायता करूँगी।' श्रीकृष्ण ने उन्हें भी अपने पास गरुड़ पर बैठा लिया। भौमासुर का नगर पहाड़ों, खाइयों तथा किले से घिरा था। कृष्णजी ने अपनी कौमोदकी नामक गदा से पहाड़ के घेरे को तोड़-फोड़ डाला और अपने शार्ङ्ग नामक धनुष से सेना का संहार किया। फिर सुदर्शन चक्र से खाई सुखा दी और नन्दक नामक तलवार से अग्नि का घेरा नष्ट कर डाला। नगर के भीतर जाकर उन्होंने अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया। उसका भीषण शब्द सुनकर 'मुर' नाम का राक्षस, जो पुरी की रक्षा करता था, निकल आया। श्रीकृष्ण ने चक्र से उसके पाँचों सिर काट डाले और उसके सात पुत्रों को भी मार डाला। तब भौमासुर अपने पर्वताकार हाथी पर चढ़कर बाहर निकला और भयानक युद्ध छिड़ गया।

गरुड़ ने अपनी चोंच तथा नखों के प्रहार से भौमासुर के हाथी को क्षत-विक्षत कर डाला। वह हाथी भौमासुर को लेकर भागा। असुर ने किसी तरह हाथी को रोककर गरुड़ को एक बर्छी मारी और पैना त्रिशूल श्रीकृष्ण के ऊपर फेंका। तब श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट डाला। भौमासुर के मरने पर इन्द्र बड़ा प्रसन्न हुआ। श्रीकृष्ण ने भौमासुर के पुत्र भगदत्त को, जिसे पृथ्वी लेकर आई थी, अभयदान दिया और गद्दी पर बिठा दिया। पृथ्वी ने इन्द्र की माता अदिति के कुंडल, इन्द्र का छत्र और मन्दर शिखर नाम का मणि लाकर भगवान् को वापस कर दी। फिर श्रीकृष्ण पृथ्वी देवी की स्तुति करने पर भगदत्त के साथ भौमासुर के अन्तःपुर में गये। दुष्ट भौमासुर मनुष्य, देवता, असुर आदि की अनेक सुन्दरी कन्याओं को बलपूर्वक हर ले गया था।

वे सोलह हजार एक सौ थीं। सब उसके विशाल भवन मे वन्दी थीं। श्रीकृष्ण ने उन सबको वन्दीगृह से छुड़ाकर स्वतंत्र किया; पर वे अब श्रीकृष्ण को छोड़कर कहाँ जातीं ? अतएव श्रीकृष्ण ने उन्हें पालकियों में विठाकर अपनी द्वारकापुरी में भेज दिया। फिर इन्द्र की वस्तुएँ वापस करने, सत्यभामा के साथ, इन्द्रलोक जाकर समस्त वस्तुएँ लौटा दीं। सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिए वहाँ से कल्पवृक्ष उखाड़कर सत्यभामा की वाटिका मे लगा दिया। फिर भौमासुर की सोलह हजार एक सौ राजकुमारियों के साथ विवाह कर लिया।

भौम के पर्य्यायवाची शब्द—भौम, कुज, क्षितिज, क्षमाज, असृज, भूमिसुत, भूमिनन्दन।

मंकणक

सरस्वती नदी के किनारे मंकणक नाम के एक परम तपस्वी ब्राह्मण रहते थे। एक वार कुश लाते समय कुश की नोक उनके हाथ में गड़ गई और रक्त वहने लगा। उसे देख वे इतने प्रसन्न हुए कि भावावेश मे नाचने लगे। उनकी तपस्या के प्रभाव से स्थावर, जंगम संपूर्ण जगत् उनके नृत्य की गति में गति मिलाकर नृत्य करने लगा। उनके तेज से सभी मोहित हो गये। तव इन्द्र आदि देवताओं ने घवराकर ब्रह्मा से प्रार्थना की कि इनका नृत्य वन्द होना चाहिए; किन्तु मंकणक रुद्र के भक्त थे, अतएव उन्होंने रुद्र से कहा। रुद्र, विप्र के वेश में, उनके पास गये और नृत्य का कारण पूछा। उसने कहा—'मेरे हाथ से रक्त वह रहा है इसी से मैं हर्षोन्मत्त होकर नाच रहा हूँ।' रुद्रदेव ने उसे नृत्य वन्द करने को कहा और अपनी उँगलियों के अग्र भाग से अँगूठे को दवाया, तो उसमें से वर्फ के समान श्वेत वर्ण का भस्म निकलने लगा। तव मंकणक घवराकर उनके चरणों पर गिर पड़ा और उन्हें पहचानकर, क्षमा-याचना करने लगा। महादेवजी ने प्रसन्न होकर कहा—'मेरी इच्छा से नृत्य वन्द कर

देने से मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। अब मैं सरस्वती नदी के किनारे तुम्हारे साथ सदैव निवास करूँगा।'

भक्तवत्सल आशुतोष शिव मंकणक को आशीर्वाद देकर चले गये।

मन्थरा, कैकेयी, सरस्वती, शत्रुघ्न

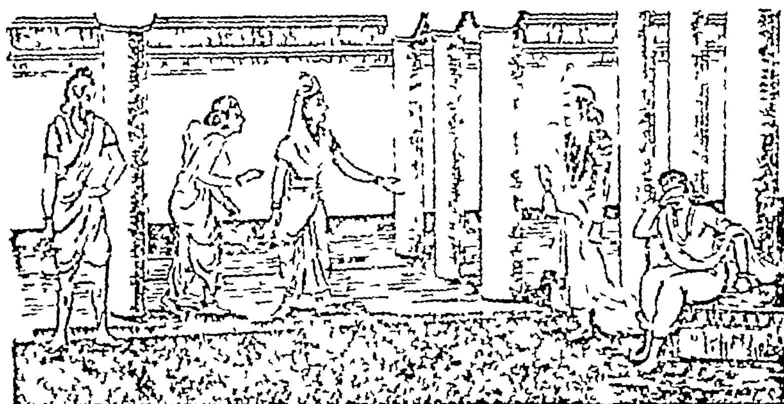
मन्थरा पूर्व जन्म मे दुन्दुभी नामक अप्सरा थी, जो शापवश कुबड़ी होकर कैकेयी की दासी बनी। वह तीन स्थान से टेढ़ी थी, इसलिए उसका नाम त्रिवक्रा भी था।

अयोध्या मे जब राजा दशरथ की आज्ञा से रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक की तैयारियाँ होने लगीं, तो देवताओं के मन मे बड़ी चिन्ता होने लगी। वास्तव में रामचन्द्रजी का जन्म—भगवान् का अवतार—तो रावण प्रमुख राक्षसों को मारने के लिए हुआ था। अतएव सब देवताओं ने ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती देवी से प्रार्थना की कि कुछ युक्ति करे, जिससे रामचन्द्रजी का अभिषेक न हो। सरस्वती अपना कार्य सिद्ध करने के लिए मन्थरा की बुद्धि को पलटकर चली गई।

मन्थरा रानी कैकेयी के नैहर से आई एक अत्यन्त मन्दबुद्धि कुब्जा दासी थी। अभिषेक के एक दिन पूर्व वह महल की छत पर चढ़ी, तो वहाँ से उसने नगर की सजधज देखकर उसका कारण पूछा। उसे ज्ञात हुआ कि श्रीराम को युवराज के पद पर अभिषिक्त करने की तैयारियां हो रही हैं। कुबड़ी दासी मन्थरा कुढ़कर, क्रोध से भरी हुई कैकेयी के पास गई। कैकेयी यह शुभ समाचार सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। वह राम पर बहुत स्नेह करती थी। मन्थरा कैकेयी को प्रसन्न देखकर दुःख से भर गई और उसे बहकाने लगी कि राजा ने भरत को अभी नाना के घर इसीलिए भेजा है कि उनकी अनुपस्थिति मे यह उत्सव हो। अवश्य ही कौशल्या ने कोई जाल रचा है। सौत और सौत का बेटा शत्रु होता है तुम मूर्ख हो, जो भरत को युवराज के पद पर अभिषिक्त नहीं करवातीं।

इस प्रकार उलटा-सीधा समझाने पर कैकेयी सारे आभूषण उतार एक मैली-सी साड़ी पहन कोपभवन मे जाकर धरती पर लेट गई। राज

दशरथ ने कैकेयी को बहुत मनाया, पर उसने राजा को धरोहर के रूप में रखे दो वरदानों की याद दिलाई। पहले वरदान से उसने राम को तपस्वी के वेश में चौदह वर्ष तक का वनवास माँगा और दूसरे से भरत के लिए युवराज पद माँगा।



वनवास के बाद मंथरा, कैकेयी और भरत आदि से बातचीत

इस प्रकार पापिनी मन्थरा के द्वारा सिखाये वचनों को कहकर कैकेयी दशरथ से हठ करती रही। अन्त में उसने राम, लक्ष्मण और सीता को वन में भेजकर ही चैन लिया। भरत और शत्रुघ्न जब नाना के घर से लौटे, तो उन्होंने देखा कि अयोध्या में राम, लक्ष्मण और सीता के वनवास से तथा पिता राजा दशरथ की इस दुःख से मृत्यु होने से सर्वत्र शोक छा गया है। भरत को तो रामचन्द्रजी से असीम प्रेम था। सब वृत्तान्त ज्ञात कर उन्होंने अपनी माता कैकेयी को खूब फटकारा। छोटे भाई शत्रुघ्न ने सारी बुराइयों की जड़ पापिनी मन्थरा को बुलवा भेजा, तो वह रोती-चिल्लाती शत्रुघ्न के सामने आई। शत्रुघ्न रोष में आकर उसे पृथ्वी पर धकेल घसीटने लगे। तभी भरत ने आकर उन्हें समझाया कि स्त्रियाँ अवध्य होती हैं। मन्थरा के वध से रामचन्द्रजी रुष्ट होंगे। यह सुनकर शत्रुघ्न का क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने मूर्च्छित मन्थरा को छोड़ दिया।

मदालसा, तालकेतु, ऋतुध्वज

मदालसा विश्वावसु गंधर्व की पुत्री थी। उसे दैत्य वज्रकेतु के पुत्र पातालकेतु ने उठाकर पाताल में रखा था। एक बार गालव मुनि एक दिव्य घोड़े को ले, राजा शत्रुजित के पुत्र ऋतुध्वज के पास गये और तपस्या में विघ्न डालनेवाले पातालकेतु के मारने की प्रार्थना की।

पातालकेतु गालव मुनि को सताने के लिए शूकर का रूप धारण कर गया था। शूकर उन्हें बड़ी दूर तक भगाता हुआ ले गया। उन दोनों का पीछा करते ऋतुध्वज पाताललोक गये। वहाँ जाकर उन्होंने मदालसा से विवाह कर लिया। जैसे ही वह मदालसा को लेकर चले, पातालकेतु दानवों की सेना लेकर पहुँच गया। राजकुमार ऋतुध्वज ने पातालकेतु समेत समस्त दानवों को मार डाला और पिता के पास जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। थोड़े दिनों बाद पातालकेतु के छोटे भाई। तालकेतु ने एक दिन माया-निर्मित आश्रम बनाकर मुनि का रूप धारण किया और दक्षिणा के लिए ऋतुध्वज के गले का आभूषण माँगा। आभूषण लेकर वह बोला—"आप यहीं मेरे आश्रम की रक्षा करें। मैं वरुण देवता से धन प्राप्त करके आता हूँ।" अब वह जल के भीतर से ऋतुध्वज के नगर पहुँचा और मदालसा से बोला—"दैत्यों से युद्ध करते समय राजा तो मारे गये। वहाँ के तपस्वियों ने उनका अन्तिम संस्कार कर दिया है। मैं यह आभूषण उनके अन्तिम चिह्नस्वरूप आपके लिए ले आया हूँ।"

पतिव्रता मदालसा पति की मृत्यु की सूचना पाकर मूर्च्छित हो गई और उसने प्राण त्याग दिये। उधर तालकेतु जल से बाहर निकलकर ऋतुध्वज से बोला—अब आप जाइए। मेरा कार्य पूरा हो गया।

ऋतुध्वज नगर पहुँचे, तो उन्हें मदालसा की मृत्यु के समाचार मिले। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उनके दुःख को देखकर उनके परम मित्र नागराज अश्वतर ने कैलाश पर्वत पर जाकर शिव को प्रसन्न कर वरदान माँगा कि मदालसा उसी रूप और अवस्था में मेरी पुत्री होकर प्रकट हो जाय।

अश्वतर घर पहुँचे, तो उनके फण से मदालसा प्रकट हो गई। तब अश्वतर ने राजा शत्रुजित और उनके पुत्र कुवलयाश्व ऋतुध्वज को अपने यहाँ निमंत्रित किया। मदालसा को वहाँ देखकर वे पहचान गये और उसका पाणिग्रहण कर अपने नगर लौट गये।

मत्स्यावतार, मनु

सूर्य (विवस्वान्) के एक पुत्र का नाम वैवस्वत मनु था। उन्होंने वदरिकाश्रम में जाकर उग्र तपस्या की। एक दिन जब वे नदी के तट पर स्नान कर रहे थे, तो उनके पास एक छोटी-सी मछली ने आकर प्रार्थना की कि आप मेरी रक्षा कीजिए; नहीं तो बड़ी मछलियाँ मुझे खा जायँगी। मनु को दया आ गई। वे अपने कमंडल में पानी भरकर उस मछली को ले गये और एक घड़े मे डाल दिया।

एक-दो दिन में वह मछली बढ़ गई, तो उसने राजा से कहा— अब मुझे और बड़े स्थान में रखिए। तब राजा ने उसे एक सरोवर में डाल दिया। वहाँ भी बढ़ गई, तो गंगाजी में डाल दिया। कुछ काल वहाँ रहने के पश्चात् उसका शरीर और बढ़ गया, तब मनु ने उसे गंगाजी से निकालकर समुद्र में डाल दिया। महामत्स्य ने मनु से कहा— 'तुमने मेरी रक्षा की, इससे मैं तुम्हारी बड़ी कृतज्ञ हूँ। आज से सातवें दिन प्रलय होने से समस्त विश्व जलमग्न हो जायगा। अतएव तुम एक सुदृढ़ नाव तैयार कराओ और एक मोटी रस्सी से उसे बाँध दो। नाव पर तुम, सप्तर्षियों को साथ लेकर, बैठ जाना। अन्न और ओषधियों के बीज और कुछ पशुपक्षी भी सुरक्षित रूप से नाव पर रख लेना। मैं सींग से तुम्हारी नाव को खींचकर प्रलय से बचा दूँगी।'

सातवे दिन सब तैयारी कर मनु नाव मे बैठे ही थे कि उन्होंने महामत्स्य को देखा। प्रलय मे समुद्र के जल में ऊँची-ऊँची लहरें आ रही थीं और भूमि का कहीं नाम-निशान भी नहीं था। महामत्स्य नाव को खींचकर हिमालय के सबसे ऊँचे शिखर पर ले गया और नाव बाँध दी। उस "नौका बन्धन" शिखर पर मनु और सप्तर्षि उतर पड़े।

कामदेव के पर्य्यायवाची शब्द—मदन, मन्मथ, मार, कन्दर्प, अनंग, पंचशर, शबरारि, मनसिज, स्मर, रतिसखा, मनोभव, मकरध्वज, मीनकेतु, काम, कबन्ध, अतनु, मयन।

मय, खांडव वन, अश्वसेन

मय एक प्रसिद्ध दानव था। यह दिति का पुत्र और असुरों तथा दैत्यों का शिल्पी था। मायावी और दुन्दुभी इसके पुत्र और रावण की स्त्री मन्दोदरी इसकी पुत्री थी।



इन्द्र की सेना पर अर्जुन द्वारा बाण-वर्षा

मय दानव खाण्डव वन मे रहता था। जब अग्निदेव के प्रार्थना करने पर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने खांडव वन को जलाने की आज्ञा दे दी, तो खाण्डव वन भयंकर अग्नि कांड से जलने लगा। उस वन मे रहनेवाले दानव राक्षस, नाग, बाघ, रीछ आदि वन्य पशु घायल एवं भयभीत हो भागने लगे। एक तो सर्वहार अग्नि, दूसरे श्रीकृष्ण तथा अर्जुन की इन्द्र की सेना पर बाण-वर्षा।

आकाशवाणी होने पर इन्द्र ने जब अपनी सेना हटा ली, तब खाडव वन धायँ-धायँ जल रहा था। उसी समय श्रीकृष्ण ने तक्षक के निवासस्थान से मय दानव को भागते हुए देखा। अग्निदेव उसका पीछा

कर रहे थे। श्रीकृष्ण ने मय दानव को मार डालने के लिए चक्र उठाया। आगे चक्र, पीछे भयंकर अग्निदेव! इससे घबराकर मय अर्जुन के पैरों में गिर पड़ा। अर्जुन और श्रीकृष्ण ने उसे अभयदान दिया।

इस अग्निकांड से केवल छः प्राणी बच सके—नागराज तक्षक का पुत्र अश्वसेन सर्प, मय दानव और चार शार्ङ्ग पक्षी। पन्द्रह दिन तक वन जलता रहा।

इन्द्र ने प्रसन्न होकर अर्जुन से कहा—तुमने बड़ा असाध्य काम कर दिखाया। वर माँगो। अर्जुन को इन्द्र ने सब प्रकार के अस्त्र देने की कृपा की। श्रीकृष्ण ने वर माँगा कि मेरी और अर्जुन की मित्रता कभी न टूटे। मय दानव ने फिर अर्जुन से कहा—मैं दानवों का विश्वकर्मा—प्रधान शिल्पी हूँ। बताइए, आपकी क्या सेवा करूँ? श्रीकृष्ण ने उससे कहा—धर्मराज युधिष्ठिर के लिए एक ऐसा दिव्य सभागृह बनाओ कि चतुर से चतुर शिल्पी भी उसकी नकल न कर सके।

मय ने ऐसा दिव्य सभागृह बना दिया कि उसमें दुर्योधन जल में स्थल और स्थल में जल का भ्रम कर दो-तीन बार गिर पड़ा था। मय ने मैनाक पर्वत से एक गदा लाकर भीमसेन को दी और देवदत्त नामक शंख लाकर अर्जुन को दिया। ये दोनों वस्तुएँ दैत्य-यज्ञ के समय दैत्यराज वृषपर्वा की सभा मे रखी हुई थीं।

मन्दोदरी

मन्दोदरी दैत्यों के विनिर्माता मय दानव की पुत्री थी। मय ने हेमा नाम की एक अप्सरा से विवाह किया था। वह अप्सरा अपनी पुत्री को स्वर्णपुरी मे ही, मय के निकट छोड़, स्वर्ग चली गई। जब यह कन्या बड़ी हुई, तो मय ने ब्रह्मा के प्रपौत्र रावण से इसका विवाह कर दिया।

मन्दोदरी रावण की सब से प्रिय पटरानी रानी थी। वह रावण को सदैव बुरे कर्म करने से रोकती रहती थी। सीताजी का हरण सुनकर मन्दोदरी ने रावण को अनेक प्रकार से समझाया था; किन्तु रावण को तो रामचन्द्रजी के हाथों मरना था।

रावण की मृत्यु के उपरान्त मन्दोदरी रोती-बिलखती रणक्षेत्र में गई और अपने दु:ख मे रामचन्द्रजी का अनुग्रह माना कि रावण जैसे महापापी को भी उन्होंने परमगति प्रदान की।

मयूरध्वज

द्वापर के अन्त में मयूरध्वज रत्नपुर के राजा थे। वे बड़े धर्मात्मा और सन्त थे। एक बार इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ के घोड़े की रक्षा करते हुए इनके वीर पुत्र ताम्रध्वज और प्रधान मंत्री देश-देश घूम रहे थे। उधर धर्मराज युधिष्ठिर भी अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे। उनके घोड़े के रक्षक अर्जुन और उनके सारथि श्रीकृष्ण थे। मणिपुर में दोनों की मुठभेड़ हो गई। सयोगवश ताम्रध्वज की विजय हो गई।

श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों को मूर्च्छित करके उन्हें वहीं छोड़, दोनों घोड़ों को ताम्रध्वज अपने पिता मयूरध्वज के निकट ले गया। किन्तु राजा मयूरध्वज प्रसन्न होने के बदले दु:खी हो गया और पुत्र को खूब डाँटा-फटकारा।

भगवान् अपने भक्त की महिमा दिखाने के लिए स्वयं ब्राह्मण बने और अर्जुन को अपना शिष्य बनाया। दोनों फिर मयूरध्वज की यज्ञशाला पहुँचे। ब्राह्मण-रूप भगवान् ने कहा—'मै अपने पुत्र के साथ इधर ही आ रहा था। मार्ग में एक सिंह मिला और उसने मेरे पुत्र को खाना चाहा। मैंने पुत्र के बदले अपने को देना चाहा; किन्तु उसने स्वीकार न किया। बहुत अनुनय-विनय करने पर उसने यह स्वीकार किया कि यदि राजा मयूरध्वज, पूर्ण प्रसन्नता के साथ, अपनी स्त्री और अपने पुत्र द्वारा अपने आधे शरीर को आरे से चिरवाकर मुझे दे दें, तो मैं तुम्हारे पुत्र को छोड़ सकता हूँ।'

राजा ने बड़ी प्रसन्नता से यह बात स्वीकार कर ली। साध्वी रानी ने अपना आधा शरीर देना चाहा, पुत्र ने सिंह का ग्रास बनना चाहा; किन्तु भगवान् ने अस्वीकार कर दिया। अन्त मे दो खंभे गाडकर उनके बीच भगवान् के नाम का जप करते हुए मयूरध्वज बैठ गये और

नके स्त्री-पुत्र आरा लेकर उनका सिर चीरने लगे। किन्तु उसी समय नकी बाईं आँख से आँसू बहने लगे। उन्हें देखते ही ब्राह्मण बिगड़कर ाने लगे; किन्तु मयूरध्वज ने समझाया कि कष्ट के कारण ये आँसू हीं बह रहे हैं; बल्कि हर्ष और भक्ति भाव के कारण बह रहे हैं कि यह ारीर किसी ब्राह्मण के काम तो आ रहा है।

अपने परम प्रिय भक्त मयूरध्वज का यह विशुद्ध भाव देख, भगवान् ाे अपना चतुर्भुज रूप प्रकट कर दिया और मयूरध्वज को अभयदान ़कर उसको स्पर्श किया। स्पर्श करते ही वह पहले की अपेक्षा अधिक ुन्दर, स्वस्थ और बलिष्ठ हो गया। मयूरध्वज उनके चरणों में गिरकर ारदान माँगने लगा कि भगवान् अपने भक्तों की इस प्रकार परीक्षा न लिया करें। अर्जुन मयूरध्वज की भक्ति देखकर अपनी भक्ति को तुच्छ समझने लगे। तब अर्जुन का सारा गर्व टूट गया।

महाप्रस्थान, पांडव

कुरुक्षेत्र के युद्ध में पांडवों ने कौरवों का संहार कर धृतराष्ट्र के एक वैश्या-पुत्र युयुत्सु को बुलाकर उसे संपूर्ण राज्य की देख-भाल का भार सौंप दिया और अपने राज्य-सिंहासन पर परीक्षित् का अभिषेक किया। तदनन्तर यदुवंशियों के नाश के उपरान्त समस्त प्रजा को बुलाकर राजर्षि युधिष्ठिर ने सबको अपना महाप्रस्थान-विषयक विचार बतलाया। युधिष्ठिर का यह अभिप्राय जानकर और वृष्णिवंशियों का संहार देखकर समस्त पांडव, द्रौपदी और एक कुत्ता सब साथ-साथ हिमालय की ओर चले।

चलते-चलते वे लालसागर के तट पर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष और दोनों अक्षय तूणीर वरुण देवता को वापस कर दिये। फिर द्वारकापुरी से होते हुए महागिरि सुमेरु के दर्शन किये। तदनन्तर समस्त पांडव एकाग्रचित्त हो तेजी से हिमालय पर्वत पर चढ़ते जा रहे थे कि सब के पीछे आती हुई द्रौपदी लड़खड़ाकर गिर पड़ी। उसका पाप यह था कि द्रौपदी मन मे पाँचों पतियों मे अर्जुन पर विशेष रूप से प्रेम रखती थी। थोड़ी देर बाद सहदेव गिर पड़े। उसका पाप यह था कि

वह अपने को बहुत भारी विद्वान् समझता था। गर्व के कारण उसे भी मार्ग मे गिरना पड़ा। शीघ्र ही शूरवीर नकुल शोक से व्याकुल होकर गिर पड़ा। उसका पाप यह था कि वह समझता था कि रूप में उसके समान दूसरा कोई नहीं है। थोड़ी दूर और आगे बढे तो दुर्द्धर्ष वीर अर्जुन मरणासन्न हो गिर पड़ा। युधिष्ठिर ने उसका कारण बताया कि अर्जुन को अपनी शूरता का अभिमान था। अब युधिष्ठिर आगे बढ़े, तो भीमसेन गिर पड़े। उन्हें अपने बल की शान थी। वे सदैव बल की डींग हाँका करते थे।

अब अकेले युधिष्ठिर, कुत्ते के साथ, स्वर्ग की ओर जाने लगे। इतने मे देवराज इन्द्र रथ पर प्रकट हुए और युधिष्ठिर से रथ पर चढ़ने के लिए अनुरोध किया। पर मृत भाइयों के बिना उन्हें स्वर्ग स्वीकार न था। इस पर इन्द्र ने बताया कि द्रौपदी और सब भाई पहले ही स्वर्ग पहुँच गये हैं। फिर युधिष्ठिर ने भक्त कुत्ते के बिना स्वर्ग जाना अस्वीकार किया। तब कुत्ते का शरीर धारण करनेवाले धर्मराज ने प्रकट होकर युधिष्ठिर को रथ पर बिठाया और स्वर्गलोक चले गये।

महाभारत, वेदव्यास, गणेश

परमर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन भगवान् वेदव्यास जब महाभारत ग्रंथ का निर्माण करने लगे, तो ब्रह्माजी के पास जाकर बोले—'मैं एक श्रेष्ठ काव्य की रचना करने जा रहा हूँ; परन्तु पृथ्वी पर इसको लिख लेनेवाला कोई नहीं मिलता। बताइए, क्या करूँ।' ब्रह्माजी ने उन्हें गणेशजी के पास जाने को कहा।

गणेशजी के निकट जाकर व्यासजी बोले—'भगवन्, मैंने मन ही मन महाभारत नामक ग्रन्थ की रचना कर ली है। मैं चाहता हूँ कि मै बोलता जाऊँ और आप लिखते जायँ।'

गणेशजी ने कहा—'यदि मेरी कलम एक क्षण के लिए भी न रुके तो मैं लिखने का काम कर सकता हूँ।'

व्यासजी ने कहा—'ठीक है, किन्तु अर्थ विना समझे आप एक पंक्ति भी न लिखें।'

गणेशजी ने लिखना स्वीकार कर लिया।

महाभारत की लिखाई प्रारंभ हुई। गणेशजी को वहुत जल्दी लिखते देखकर व्यासजी वीच-वीच में कुछ कूट श्लोकों की रचना करने लगे, जिनका अर्थ समझने में सर्वज्ञ गणेशजी को कुछ क्षण लग जाते थे। जितने क्षण गणेशजी अर्थ समझने में लगाते थे, उतने में महर्षि व्यास दूसरे वहुत-से श्लोकों की रचना कर डालते थे। इस प्रकार के कठिन श्लोक ग्रन्थ में आठ हजार आठ सौ के लगभग हैं।

महिषासुर, दुर्गा

दुर्गम नामक एक दैत्य ने तीव्र तपस्या करके पुरुषमात्र से अवध्य होने का वरदान प्राप्त किया था। उसने अपने वाहुवल से समस्त लोकों को जीत कर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया। स्वर्ग छिन जाने के कारण देवता दुःखी हो, शिवजी के पास गये। शिवजी ने भवानी को असुर का नाश करने के लिए आज्ञा दी। देवी ने अपने वाणों से दुर्गमासुर को मार डाला।

दुर्गम की मृत्यु से देवता वहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने महादेवी की, दुर्गा नाम से, स्तुति की। तभी से दुर्गा-पूजन प्रारम्भ हो गया। राम-रावण के युद्ध के समय, रावण के विनाश के लिए, ब्रह्मा ने रामचन्द्रजी को सिंहवाहिनी दुर्गा की पूजा करने के लिए आदेश दिया था। उस समय आश्विन मास था और सव देवी-देवता तथा विष्णु भगवान् शयन कर रहे थे। उन्हें जगाने के लिए रामचन्द्रजी ने दुर्गा-पूजा की थी।

मधु-कैटभ नामक दैत्यों की उत्पत्ति के समय विष्णु भगवान् भी शेष-नाग पर योगनिद्रा में थे। उस समय ब्रह्मा ने भी देवी की स्तुति कर उन्हें जगाया था। उन्हीं दुर्गादेवी ने महिषासुर नामक दैत्य को मारा था। महिषासुर ने सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण आदि सव देवताओं को जीतकर उनके

अपने पति की रक्षा और वैधव्य दुःख से बचने के लिए कहा—'जाओ, सूर्य उदय नहीं होगा।'

सती के प्रताप से जब सूर्य का उदय न हुआ और पृथ्वी के नाश की संभावना होने लगी, तो सब देवता ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने अत्रि मुनि की पतिव्रता स्त्री अनसूया के पास जाने की सम्मति दी। देवताओं के प्रार्थना करने पर अनसूया ने जाकर ब्राह्मण-पत्नी को समझाया कि सूर्योदय होने दो, तुम्हारे मृत पति को मैं जीवित कर दूँगी। तब सूर्य का उदय हुआ और मृत ब्राह्मण, सती अनसूया के प्रताप से, जीवित हो उठा। अनसूया ने कोढ़ी को नीरोग भी कर दिया। देवताओं ने प्रसन्न होकर अनसूया को वर दिया कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश तुम्हारे पुत्र होकर जन्म लेंगे।

मान्धाता, इन्द्र

मान्धाता के पिता युवनाश्व इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अनेक अश्वमेध यज्ञ कर वन मे रहना प्रारम्भ किया था। आश्रम मे एक बार उन्होंने रात्रि में धोखे से मंत्रों द्वारा पवित्र किया हुआ जल पी लिया था। यह जल महर्षि भृगु ने यज्ञ कर, पुत्र-प्राप्ति की कामना से, रक्खा था। अतएव अब युवनाश्व को ही एक पुत्र प्रसव करना पड़ा। दही और घी के योग से, युवनाश्व के शरीर से, मान्धाता उत्पन्न हुए। राजा से उत्पन्न यह बालक इतना तेजस्वी था कि इन्द्र आदि देवता उसे देखने गये। बालक को देखकर देवताओं का हृदय स्नेह से भर गया। उन्होंने इन्द्र से पूछा कि यह बालक क्या पियेगा? इन्द्र ने उसके मुँह में अपनी तर्जनी उँगली देकर कहा—मान्धाता (मेरी उँगली पियेगा)। इन्द्र की उँगली से दूध की धार निकलने लगी और इन्द्र ने उसका पालन-पोषण किया। इसलिए उसका नाम "मान्धाता" पड़ गया।

मान्धाता ने कुरुक्षेत्र में अनेक यज्ञ किये और अपने बल-विक्रम से एक ही दिन मे समस्त पृथ्वी पर अधिकार कर लिया। अनेक राजाओं को जीतकर उदयाचल से अस्ताचल तक संपूर्ण भूमंडल मान्धाता के अधिकार में आ गया। मान्धाता ने सौ अश्वमेध यज्ञ और राजसूय यज्ञ

करके ब्राह्मणों को दस योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी स्वर्ण की बनी हुई मछलियाँ दान में दी थीं। इनके समय में पृथ्वी "मान्धाता क्षेत्र" कहलाती थी। ये बड़े धर्मात्मा और दानी थे। ये किसी अतिथि को विमुख नहीं जाने देते थे। इनके पुत्रों में पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुंद प्रसिद्ध हुए।

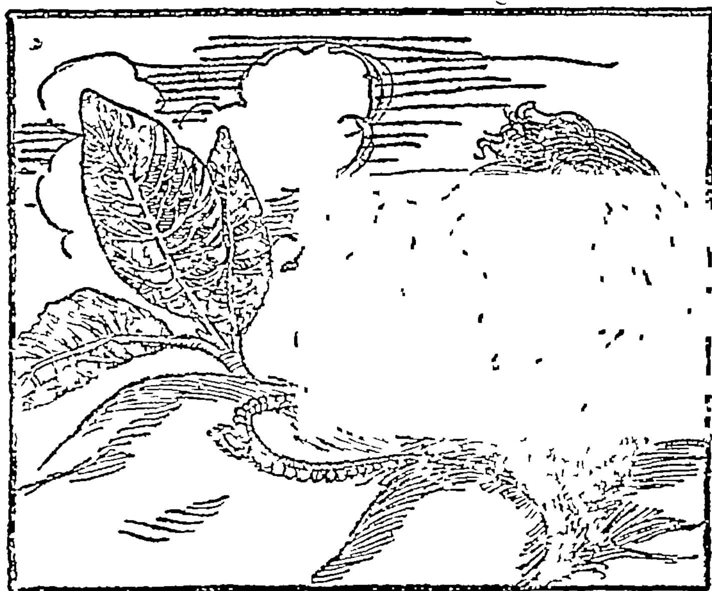
मार्कण्डेय मुनि, प्रलय

मृकंड ऋषि के पुत्र चिरंजीवी मार्कण्डेय ऋषि बड़े भारी तपस्वी थे। महायोगी मार्कण्डेय ने बहुत वर्षों तक घोर तपस्या की। इन्द्र ने डरवा कर इनके तप मे बहुत विघ्न डाला; किन्तु मुनि ने अपनी सब इंद्रियों को वश में कर रखा था। अन्त में भगवान् नर-नारायण ने प्रसन्न होकर उन्हे दर्शन दिये और वरदान माँगने के लिए कहा। भगवान् नारायण से मुनि ने उनकी अद्भुत माया दिखाने के लिए कहा। भगवान् यह कहकर कि—जल्दी ही तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी—अपने स्थान वदरिकाश्रम चले गये।

इसके बाद एक दिन पुष्पभद्रा नदी के किनारे वैठे हुए मार्कण्डेय भगवान् की आराधना कर रहे थे। इतने में उन्होंने देखा, बड़े जोर की आँधी, तूफान और वर्षा में समुद्र चारों ओर से उमड़कर पृथ्वी को डुबा रहा है। पृथ्वी थोड़ी देर में डूब गई और मुनि महासागर में डूबने-उतराने लगे। बहते-बहते उन्होंने एक छोटा-सा टापू देखा। उस टापू में 'अक्षयवट' देखा। उसी वृक्ष की डाल पर पत्तों के बीच एक श्यामवर्ण का छोटा-सा बच्चा दिखाई दिया। वह बच्चा बालमुकुंद, पत्ते पर लेटा हुआ, दोनों हाथों से अपने बायें पैर का अँगूठा चूस रहा था। उसे देखकर मुनि का मन आप ही आप प्रसन्न हो गया। अपने कष्टों को भूलकर, वह तैरते-तैरते बालक के पास जा पहुँचे। बालक ने जैसे ही एक साँस ली, कि उस साँस के साथ बालक के पेट मे चले गये। उन्होंने पेट के भीतर समस्त ब्रह्मांड को देखा। मुनि आश्चर्यचकित हो सारे जगत् को देखते रहे, फिर बालमुकुंद की साँस के साथ वे बाहर निकल आये, तो देखा कि न तो प्रलय का

समुद्र था, न टापू, न बरगद का पेड़, न वह सुन्दर बालक। उन्होंने अपने को पुष्पभद्रा नदी के किनारे अपने आश्रम में ही बैठा पाया। वह समझ गये कि यह सब भगवान् की लीला थी।

भगवान् नर-नारायण की कृपा से उन्होंने योगमाया की महिमा का अनुभव किया, तो उन्हें विश्वास हो गया कि माया से मुक्त होने के लिए



मुनि का बालक की साँस के साथ उसके पेट में जाकर बाहर आना।

मायापति भगवान् की शरण ही एकमात्र उपाय है, अतः उन्हीं की शरण मे स्थित हो गये।

एक बार वह भगवान् की भावना मे तन्मय थे कि शंकर-पार्वती उधर से निकले। उनके आतिथ्य तथा पूजा से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हे वरदान दिया कि तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी। तुम दीर्घायु, अजर और अमर हो जाओ।

इस प्रकार शिवजी की कृपा से मार्कण्डेय मुनि को महायोग का परम फल प्राप्त हो गया। मार्कण्डेय मुनि, वटपत्रशायी बालमुकुंद भगवान् के श्वास-प्रश्वास द्वारा, सात बार उनके उदर में गये और प्रलय का अनुभव किया, अतएव उनकी दीर्घायु सात कल्प की मानी जाती है।

जल के पर्यायवाची शब्द—सलिल, सारंग, अंबु, तोय, पय, वारि, जीवन, उदक, मेघपुष्प, अमृत, घनरस, रस, पाथ, अप्।

मारीच (हेममृग), रावण, सीता

मारीच नामक राक्षस रावण का मामा था। रावण की आज्ञा से यह सोने का मृग बनकर पंचवटी में गया। वहाँ इसका अलौकिक मनोहर रूप देखकर सीताजी इस पर मुग्ध हो गईं। सीताजी ने इसका चर्म लाने को श्रीरामजी से हठ किया। जब भगवान् इसे मारने गये, तो इसने मरण समय रामचन्द्रजी के स्वर में "हा, लक्ष्मण!" कहकर आर्त्तनाद किया। वह रामचन्द्रजी के बाण से मरा, अतएव उसका उद्धार हो गया।

राक्षस को मारकर रामचन्द्रजी लौट पड़े, किन्तु सीताजी मारीच का आर्त्तनाद "हा लक्ष्मण" सुनकर बहुत घबरा गईं और समझीं कि रामचन्द्रजी पर संकट आ पड़ा है। लक्ष्मण सीताजी को अकेला छोड़कर जाना नहीं चाहते थे; किन्तु जब सीताजी ने मर्मभेदी वाक्य कहे और आठ-आठ आँसू रोने लगीं, तो लक्ष्मणजी, सीताजी के चारों ओर एक रेखा खींच और उसे पार करने को मनाकर, अपने भाई को देखने चले गये। उसी समय अवसर पाकर रावण भिक्षा माँगने के बहाने आया और सीताजी को रथ में बैठाकर लंका ले गया। इस प्रकार हेममृगरूपी मारीच की सहायता से रावण ने सीताजी का हरण किया।

मुचुकुन्द, कालयवन, कुवेर

इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न राजा मान्धाता के पुत्र का नाम मुचुकुन्द था। देवासुर-संग्राम में तारकासुर से देवताओं के हार जाने पर देवताओं ने महापराक्रमी वीर सूर्यवंशी मुचुकुन्द से सहायता की प्रार्थना की। मुचुकुन्द

ने देवलोक जाकर अनेक असुरों को हराकर देवताओं की रक्षा की, किन्तु वह तारकासुर को हरा न सका। युद्ध के उपरान्त इन्द्र ने अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित कर उसे मनुष्यलोक मे भेज दिया। परन्तु मुचुकुन्द के जी भर सुख की नींद सोकर आराम करने की इच्छा प्रकट करने पर इन्द्र ने कहा—'राजन्, तुम किसी एकान्त स्थान मे जाकर सो जाओ। मेरे वरदान से जो कोई तुम्हारी नींद में विघ्न डालेगा या बीच में तुम्हें जगावेगा, वह तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही जलकर भस्म हो जायगा।'

मुचुकुन्द के इस वरदान की बात श्रीकृष्ण जानते थे, अतएव जब मगध के राजा जरासंध और यूनान के राजा कालयवन दोनों ने अपनी सेना से मथुरा को घेर लिया, तब मथुरावासियों के लिए तो द्वारकापुरी का निर्माण करवाकर उन्हें बचा दिया और स्वय कालयवन को भगाते-भगाते उस गुफा में ले आये, जहाँ मुचुकुन्द सो रहा था। मुचुकुन्द ने कालयवन को भस्मकर श्रीकृष्ण को पहचाना और उनको प्रणाम कर उनकी भक्ति का वर माँग लिया।

एक बार राजा मुचुकुन्द ने सारी पृथ्वी को जीतकर अपने बल की परीक्षा करने के लिए अलकाधिप कुबेर पर चढ़ाई कर दी। यह देख कुबेर ने मुचुकुन्द की सेना का नाश करने के लिए राक्षसों को भेजा। राक्षसों के द्वारा अपनी सेना का विनाश होते देख महाराज मुचुकुन्द अपने पुरोहित वसिष्ठ की निन्दा करने लगे, तब महर्षि ने अपने तप के प्रभाव से उन सब राक्षसों का नाश कर दिया।

कुबेर ने कहा—'तुम पुरोहित की सहायता से पौरुष दिखाना चाहते हो। ब्राह्मण के तपोबल का आश्रय लेकर वृथा बलवान् बनते हो।' इस पर कुपित हो राजा ने कुबेर से कहा—'ब्रह्मबल और क्षत्रियबल दोनों से प्रजा का पालन होता है।' इस उत्तर से प्रसन्न होकर यक्षराज ने सारी पृथ्वी उसे लौटा दी, किन्तु मुचुकुन्द ने लेना अस्वीकार कर दिया और कहा—'मै अपने बाहुबल से जीतकर ही राज्य करूँगा।' इसके बाद राजा मुचुकुन्द अपनी राजधानी मे जाकर अपने बाहुबल से जीती हुई पृथ्वी पर राज्य करने लगे।

इन्हीं महातेजस्वी मुचुकुन्द और तारकासुर में घनघोर युद्ध हुआ था। तारकासुर को मारने के लिए ये अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने जा रहे थे कि नारद ने इन्हें मना करते हुए कहा—'तरकासुर मनुष्य के हाथ से नहीं मारा जायगा। अतः इस महान् अस्त्र का प्रयोग मत करो।' यह सुनकर मुचुकुन्द शान्त हो गए।

मुद्गल ऋषि, दुर्वासा

कुरुक्षेत्र में मुद्गल नामक एक ऋषि रहते थे। वे बड़े धर्मात्मा, दानी और परोपकारी थे। उन्होंने अतिथि-सेवा का व्रत ले रखा था। वे पक्ष मे एक वार यज्ञ करते थे। ऋषि की ख्याति सुनकर दुर्वासा मुनि उनकी परीक्षा लेने एक पर्व पर आये और भोजन माँगा। मुद्गल मुनि ने बड़े प्रेम से उन्हें खिलाया। वे खाते रहे और जितना भोजन पका था, सब खा गये। जो जूठा बचा, उसे भी शरीर में लपेटकर चले गये।

मुनि को परिवार सहित भूखा रहना पड़ा। दूसरे पर्व पर दुर्वासा फिर आये और इसी प्रकार लगातार छः वार सारा भोजन खा गये। किन्तु एक वार भी मुनि के चित्त में क्रोध या अनादर का भाव न उठा। इससे दुर्वासा प्रसन्न हो गये। उसी समय स्वर्ग से उनके शुभ कर्मों के परिणाम-स्वरूप एक रथ आया; किन्तु मुद्गल ने स्वर्ग जाना अस्वीकार कर दिया। स्वर्ग के सुख को तिलाजलि देकर वे पूर्ववत् अपने ध्यान-योग में लगे रहे। उन्हे वैराग्यवल से मोक्ष प्राप्त हुआ।

मुरारि

भौमासुर को मारने के लिए श्रीकृष्ण जव उसकी राजधानी प्राग्-ज्योतिषपुर गये, तो वहाँ देखा कि मुर नामक दैत्य ने अपने जाल बिछा रखे हैं। भगवान् ने तत्काल अपने चक्र से उस जाल के फंदों को तहस-नहस कर डाला और अपने पाञ्चजन्य शंख की भयंकर ध्वनि से मुर दैत्य की नींद तोड़ दी। वह वाहर निकल आया। उसके पाँच सिर थे।

वह जल के भीतर सो रहा था। वह त्रिशूल उठाकर भगवान् की ओर दौड़ा। भगवान् उस समय गरुड पर बैठे थे। उन्होंने बहुत से बाण मारे तथा अपने चक्र से उसके पाँचों सिर उतार दिये। सिर कटते ही वह मर गया।

मुर के सात पुत्र थे। वे अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए दौड़ पड़े; किन्तु भगवान् ने उन्हें भी यमराज के घर पहुँचा दिया। मुर की एक पुत्री "कामकटंकटा" नाम की थी। उसके प्रश्नों का उत्तर देकर, उसे बल से जीतकर, घटोत्कच ने उससे विवाह किया था।

मैनाक

यह एक पर्वत था, जो हिमालय का पुत्र माना जाता है। कहते हैं, पहले पर्वतों के पंख होते थे और वे उड़कर असुरों के निवास-स्थान समुद्र मे पहुँचकर नाना प्रकार के उपद्रव किया करते थे। इस पर क्रुद्ध हो, असुरों ने देवताओं से युद्ध ठान दिया। युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपरान्त इन्द्र ने सब पर्वतों के पख काटकर उन्हे यथास्थान अचल कर दिया; किन्तु मैनाक इन्द्र के डर के मारे समुद्र मे जा छिपा और उसके पंख कट न सके।

लंका जाते समय, समुद्र की आज्ञा से, मैनाक ने हनुमान्‌जी को आश्रय देना चाहा था। हिमवान् की पत्नी, पार्वती की माता, मैना या मेनका का पुत्र होने के कारण वह मैनाक नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पर्वत के पर्य्यायवाची शब्द—भूधर, शैल, अचल, तुग, अद्रि, महीधर, भूमिधर, गिरि, मेरु।

यक्ष, पांडव, युधिष्ठिर

वनवास के समय जब पाडव-गण काम्यक वन छोड़कर द्वैत वन मे जा बसे, तो एक दिन एक वनवासी ब्राह्मण उनके पास जाकर बोला—'मेरा मन्थनकाष्ठ और अरणी (काष्ठयंत्र, जिससे यज्ञों में आग

निकालते हैं) एक मृग के सींगों में फँस गया था। मैं मृग के निकट दौड़ा किन्तु वह न जाने कहाँ भाग गया। आप लोग मेरे अग्निहोत्र की रक्षा के लिए मंथनकाष्ठ और अरणी ला दीजिए।'

मृग के खुरों के चिह्न देखते हुए पांडव वन में बड़ी देर तक मृग को ढूँढ़ते रहे; किन्तु वह न मिला। भूखे-प्यासे पांडव एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और नकुल पानी की खोज मे चले। शीघ्र ही उन्हे सारसों से घिरा हुआ एक जलाशय दिखाई पड़ा। पानी पीने के लिए वह झुके, तो आकाशवाणी हुई कि पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दो, तब पानी पियो। किन्तु नकुल ने प्यास के मारे इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। वे पानी पीते ही पृथ्वी पर गिर पड़े। नकुल को पानी लाने में जब देर हो गई तब सहदेव चले; पर वे भी नकुल के समान गिर पड़े। तत्पश्चात् अर्जुन और भीम की भी वही दशा हुई। अन्त मे युधिष्ठिर चिन्तित हो जलाशय की ओर चले। उन्होंने वहाँ चारों भाइयों को पड़े देखा। पानी पीने को झुके तो युधिष्ठिर ने वही आकाशवाणी सुनकर पूछा—'आप कौन है?' वृक्ष पर से आवाज आई—'मैं यक्ष हूँ। मैंने ही तुम्हारे भाइयों को मारा है। तुम अपनी जान बचाना चाहते हो, तो पहले मेरे प्रश्नों के उत्तर दे दो।' युधिष्ठिर ने कहा—'पूछो, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दूँगा।'

उस विशालकाय, लम्बे, तेजस्वी यक्ष ने युधिष्ठिर से अनेक प्रश्न किये और प्रसन्न होकर पूछा—तुम्हारे कौन-से एक भाई को जीवित करूँ?' युधिष्ठिर ने चारों भाइयों में से नकुल के प्राण माँगे। कारण पूछने पर युधिष्ठिर ने कहा—'मेरे पिता की दो भार्याएँ थीं—कुन्ती और माद्री। मैं चाहता हूँ कि दोनों ही पुत्रवती रहें। नकुल माद्री का और मैं कुन्ती का ज्येष्ठ पुत्र हूँ।'

यक्ष ने चारों पांडवों को जीवित कर दिया और कहा—'मैं धर्मराज हूँ मैंने ही मृग को ब्राह्मण की अरणी लेकर भागने को कहा था, जिससे तुम्हारी परीक्षा हो सके।' फिर धर्मराज ने दो वर और दिये। युधिष्ठिर ने पहला वरदान यह माँगा कि अज्ञातवास में हमें कोई पहचान न सके

और दूसरा यह कि लोभ, क्रोध, मोह को जीत सकूँ, तप और सत्य मे मेरा चित्त लगा रहे। फिर पाँचों पाडव लौट आये और धर्मराज से मृग की अरणी लेकर ब्राह्मण को लौटा दी।

यदुकुल-नाश, गांधारी, धृतराष्ट्र

कौरव-पांडवों का कुरुक्षेत्र मे अठारह दिन तक भयंकर युद्ध हुआ था। उसमे कौरवों का नाश और पाडवों की जीत हुई थी। महाभारत के युद्ध की समाप्ति पर अपने सौ पुत्रों की युद्ध में मृत्यु सुनकर गाधारी विलाप करने लगी। सत्यवादिनी, पति को अन्धा सुनकर अपनी आँखों पर पट्टी बाँध लेने का उग्र व्रत धारण करके घोर तप करनेवाली गाधारी महर्षि व्यास का वरदान पा, दिव्यज्ञान के बल से दूर से ही वीरों की रणभूमि का लोमहर्षण दृश्य देखने लगी। श्मशान-तुल्य दृश्य देख, दुखार्त्त स्त्रियों का कुररी पक्षी-सा विलाप सुन, एक एक कर अपने सौ पुत्रों के मृत शरीरों को देख वह शोक से विह्वल हो गई। पुत्र-शोक में विह्वल हो, कृष्ण को संबोधित कर, बिलख-बिलखकर विलाप करते हुए अन्त मे अधीर हो उसने क्रोध करके सारा दोष श्रीकृष्ण पर डाल, उन्हें शाप दिया कि—तुमने जान-बूझकर कौरवो और पाडवों के युद्ध की उपेक्षा की। तुमने बली और समर्थ होकर भी कौरवों का नाश होने दिया। तुम्हारे ही दोष से मेरे पुत्रों की हत्या हुई, अतएव इसका फल तुम्हे भोगना पड़ेगा। पातिव्रत्य धर्म के बल पर उसने शंख, चक्र-गदाधारी कृष्ण को शाप दिया कि हे कृष्ण, जिस प्रकार तुमने कौरवों और पाडवो का नाश करवाया, उसी प्रकार तुम्हारे वशज भी एक-दूसरे को मार-काटकर नष्ट हो जायँगे। तुम अपने हाथ से अपनी जाति का संहार करोगे। तुम्हारे सब संबधी आपस मे लड़कर मर जायँगे। तुम अनाथ की तरह वन मे जाकर बुरी तरह मरोगे। तुम्हारे शरीर का भी पता न चलेगा। तुम्हारी स्त्रियाँ भी मेरी तरह विलाप करेंगी।

गांधारी के ये घोर वचन सुनकर, महामनस्वी कृष्ण ने कहा—यादवों

का इस तरह का विनाश तो दैवकृत है। यादवों का नाश मैं ही करूँगा, क्योंकि दानव या देवता उनका संहार नहीं कर सकते।

कौरवों का संहार कर युधिष्ठिर आदि पाडव धृतराष्ट्र के निकट गये। उन्होंने चाचा को अभिवादन किया। धृतराष्ट्र अपने पुत्रों की मृत्यु से दुःखी तो थे ही, पांडवों की विजय से जल-भुन गये। दुर्योधन की जंघा तोड़नेवाले भीमसेन से वदला लेने के लिए उनके मन में एक बुरा विचार आया ही था कि श्रीकृष्ण ताड़ गये। उन्हे धृतराष्ट्र का अन्याय ज्ञात था, अतएव इस अवसर के लिए उन्होंने भीमसेन की लोहे की मूर्त्ति वनवा रखी थी। वही मूर्त्ति श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र के आगे रख दी।

धृतराष्ट्र अंधे तो थे ही, उसी मूर्त्ति को भीमसेन समझ, उन्होंने उसका आलिंगन करना चाहा। प्रेम से आलिंगन करने के वदले उस 'लौहमूर्त्ति को उन्होंने इतने जोर से दवाया कि वह चूर-चूर हो गई। धृतराष्ट्र वड़े वलवान् थे। उनके शरीर में साठ हजार हाथियों का वल था; किन्तु उस लौह मूर्त्ति को चूर्ण करके वे स्वयं मूर्च्छित हो गए। फिर होश आने पर ज्ञात हुआ कि भीम की मृत्यु हो गई, तो 'भीम-भीम' चिल्लाकर रोने लगे। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया तो शान्त हो, गाधारी के साथ, वन मे तप करने के लिए चले गये।

यमलार्जुन, नलकूवर, मणिग्रीव, नारद

नलकूवर और मणिग्रीव दोनों ही देवताओं के धनाध्यक्ष कुवेर के लाड़ले पुत्र थे। इनके पास धन, सौन्दर्य और ऐश्वर्य की पूर्णता थी। धीरे-धीरे इनकी गिनती रुद्र भगवान् के अनुचरों में होने लगी, तो इनका घमंड वढ़ गया। दोनों कैलास के रमणीय उपवन मे मदोन्मत्त होकर रहा करते थे। एक दिन वे वारुणी मदिरा पिये हुए घूम रहे थे कि उन्होंने मन्दाकिनी में अनेक अप्सराओं को जलक्रीड़ा करते देखा। वे भी युवतियों के साथ तरह-तरह की क्रीड़ा करने लगे।

संयोगवश उधर से नारदजी आ निकले। उनको देख अप्सराएँ तो
ल गई, किन्तु ये दोनों पूर्ववत् श्रीमद से अंधे, मदिरापान से उन्मत्त
क्रीड़ा करते रहे। नारदजी ने उन्हें शाप दिया—तुम लोग अपने
चरण से वृक्षयोनि में जाने योग्य हो। तुम दोनों विटप हो जाओ।
भगवान् की कृपा होगी, तभी तुम्हारा उद्धार होगा।

इस शाप के कारण दोनों नन्द-यशोदा के घर यमलार्जुन बने।
वान् श्रीकृष्ण ने जब जन्म लिया और नन्द-यशोदा के घर गये,
उनके ऊधम को देखकर एक दिन यशोदा ने उन्हे रस्सी से बाँधना
हा। रस्सी के एक सिरे से तो उनकी कमर को बाँधा और दूसरा
रा एक ऊखल से बाँध दिया, जिससे उनका नटखट बालक दंगा न
सके। कृष्ण धीरे-धीरे ऊखल घसीटते हुए अर्जुन के दोनों वृक्षों के
च मे घुस गये। वे तो दूसरी ओर निकल गये, किन्तु ऊखल टेढ़ा
कर अटक गया। कमर की रस्सी से उन्होने ज्यों ही ऊखल मे झटका
गा, दोनों पेड़ जड से उखड़कर पृथ्वी पर गिर पड़े और उनमे से दो
द्व पुरुष निकले। ये दोनों वही यक्ष थे, जिन्हें नारद ने शाप दिया
। वे दोनों भगवान् की स्तुति कर अपने लोक को चले गये।

ययाति, वृषपर्वा, शर्मिष्ठा, शुक्राचार्य, पुरु, देवयानी

ययाति राजा नहुष के पुत्र थे। इनकी दो स्त्रियाँ थीं: एक का नाम
देवयानी और दूसरी का शर्मिष्ठा। देवयानी दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की
ड़की थी और शर्मिष्ठा दैत्यराज वृषपर्वा की। एक बार शर्मिष्ठा ने भ्रम
देवयानी का वस्त्र पहन लिया, जिससे दोनों में झगड़ा हो गया।
के फलस्वरूप शुक्राचार्य राजधानी छोड़कर जाने लगे। इस पर
पर्वा ने अपनी पुत्री शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी के रूप मे देकर
राचार्य को प्रसन्न किया।

जब राजा ययाति का विवाह देवयानी से हुआ, तो शुक्राचार्य ने
ज्ञा करवा ली कि वे शर्मिष्ठा को दासीरूप मे ही रखें, अर्धांगिनी

वनावें। परन्तु ययाति ने इस प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया। देवयानी ष्ट होकर पिता के पास चली गई, तब शुक्राचार्य ने ययाति को शाप देया कि तुम बुड्ढे हो जाओ। वे उसी समय वृद्ध हो गए।

बहुत अनुनय-विनय करने पर शुक्राचार्य ने कहा कि यदि तुम्हारा कोई पुत्र अपनी युवावस्था देकर बुढ़ापा ले ले, तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो सकती है। ययाति के देवयानी से दो पुत्र थे: यदु और तुर्वसु और शर्मिष्ठा से तीन: द्रुह्यु, अनु और पुरु। सब पुत्रों ने अपनी युवावस्था देना अस्वीकार कर दिया, केवल पुरु ने आज्ञा मानी, अपनी युवावस्था देकर पिता का बुढ़ापा ले लिया।

बहुत दिनों तक भोग-विलास करने पर उन्हें विरक्ति हो गई और पुरु को उसकी युवावस्था लौटाकर बुढ़ापा वापस ले लिया। फिर उसे अपना सारा राज्य देकर वन में तपस्या करने चले गये और अन्य पुत्रों को शाप देकर राज्य से भ्रष्ट कर दिया।


ययाति

एक बार राजा ययाति अपने तपोबल से सदेह इन्द्रलोक को गये। इन्द्र ने बड़े आदर से इनको सिंहास पर बैठाया और कहा कि आपने क्या-क्या तप किए, जिससे आप मेरा पद प्राप्त हो गया। राजा ने अपने सत्कर्मों का वर्णन करना ॰

ज्यों प्रारंभ कर दिया, त्यों-त्यों उनका पुण्य घटने लगा। अन्त में सब पुण्य क्षीण हो गया, तब इन्द्र की आज्ञा से देवताओं ने राजा को स्वर्ग से ढकेलकर पदच्युत कर दिया। राजा ययाति ने सौ प्रधान यज्ञ और सौ वाजपेय यज्ञ कर दक्षिणा में तीन सुवर्ण-पर्वत दिये थे, इसीलिए उन्हे इन्द्रत्व प्राप्त हो गया था।

यवक्रीत, भरद्वाज, रैभ्य

भरद्वाज और रैभ्य नामक दो मुनि गंगा-तट पर रहते थे। दोनों बड़े मित्र थे। रैभ्य के दो पुत्र थे और भरद्वाज के एक पुत्र था, जिसका नाम यवक्रीत था। उसने वेद जानने के लिए घोर तप किया। तप से प्रसन्न होकर इन्द्र ने पूछा—'आप किस कारण तप कर रहे है ?' यवक्रीत ने कहा—'मैं चाहता हूँ, मुझे विना पढे ही वेद आ जायँ। तप के बल से ही मैं सब विद्याओं को जानना चाहता हूँ।' इन्द्र ने कहा, तुम अपने पिता से वेदों को पढ़ो, पर यवक्रीत नहीं माना। इसके पश्चात् इन्द्र, एक तपस्वी का वेष बनाकर, गंगा-किनारे आ बैठे। यवक्रीत भी वहाँ स्नान करने जाता था।

यवक्रीत देख ले, इस ढँग से इन्द्र एक-एक मुट्ठी बालू गंगा मे छोड़ने लगे। इस पर यवक्रीत ने पूछा—'यह क्या करते हो ?' तपस्वी ने कहा—'गंगा मे सेतु बना रहा हूँ।' यवक्रीत ने हँसकर कहा—'असंभव कार्य क्यों करते हो ?' इन्द्र ने उत्तर दिया—'जिस प्रकार तुम असंभव कार्य कर रहे हो, उसी प्रकार यह भी असभव कार्य है।' इस पर लज्जित हो, अपना काम निरर्थक समझ, यवक्रीत ने तप करना छोड़ दिया। तब इन्द्र ने उसे आशीर्वाद दिया कि तुम पिता और पुत्र दोनों को सर्गा वेद अच्छी तरह आ जायगा।

इन्द्र के वरदान को सुनकर पिता-पुत्र 'दोनों भरद्वाज और यवक्रीत' गर्व से ऋषियों का अनादर करने लगे। एक बार महाक्रोधी रैभ्य की पुत्रवधू पर यवक्रीत आसक्त हो गया, तो रैभ्य ने जटा से एक बाल उखाड़

कर राक्षस उत्पन्न किया और उसे यवक्रीत को मार डालने की आज्ञा दी। राक्षस ने यवक्रीत को मार डाला, तब भरद्वाज ने दुःखी होकर प्राण त्याग दिये। मरते समय उन्होंने रैभ्य को शाप दिया कि तुम्हारा पुत्र तुम्हें मार डाले।

एक दिन रैभ्य के पुत्र परावसु ने, मृग के धोखे, सोते हुए रैभ्य को मार डाला, तो रैभ्य के सब पुत्रों ने यज्ञ किया और देवताओं को प्रसन्न कर अपने पिता रैभ्य तथा भरद्वाज और यवक्रीत को जीवित कर दिया। तब यवक्रीत और भरद्वाज वेदाध्ययन कर बड़े प्रसिद्ध मुनि हुए।

यवन

एक बार वन से एक यवन जा रहा था कि एक जंगली शूकर ने उस पर आक्रमण कर उसे घायल कर दिया। यवन पृथ्वी पर अकेला पड़ा-पड़ा कराहता रहा। भाग्यवश एक अन्य पथिक ने उसकी मरणासन्न दशादेख, उससे पूछा कि किसने तुमको घायल किया। मरते-मरते फारसी भाषा में उसने कहा—हराम। हराम शब्द में 'राम' शब्द आ जाने से पास खड़े हुए यमदूतों ने सोचा कि यह राम-नाम ले रहा है, अतएव बिना जाने ही मृत्यु समय राम-नाम का उच्चारण करने से उस यवन की मुक्ति हो गई।

युद्ध-निमंत्रण, अर्जुन, दुर्योधन, कृष्ण, शरशय्या

अज्ञातवास के उपरान्त कौरव और पाडव दोनों ने युद्ध की तैयारियाँ प्रारंभ कर दीं। दोनों पक्ष श्रीकृष्ण को अपनी ओर रखना चाहते थे। दैवयोग से अर्जुन और दुर्योधन दोनो साथ ही साथ द्वारका पहुँचे। उस समय श्रीकृष्ण शयनागार में सो रहे थे। दुर्योधन पहले पहुँचा, तो सीधे जाकर उनके सिरहाने बैठ गया। थोड़ी देर में अर्जुन आये, तो वह चरणों की ओर बैठ गए।

श्रीकृष्ण के जागने पर दोनों ने सहायता के लिए याचना की। दुर्योधन ने कहा—'मैं पहले यहाँ आया हूँ, अतएव आप मेरी सहायता कीजिए।' श्रीकृष्ण ने हँसकर कहा—'तुम पहले आये होगे, किन्तु आँख खुलते ही मुझे सामने अर्जुन ही दिखलाई पड़े। मेरे पास बड़ी भारी नारायणी सेना है। या तो तुम मुझे ले लो या मेरी सेना ले लो। किन्तु मैं अस्त्र-शस्त्र धारण नहीं करूँगा।'

दुर्योधन ने झटपट नारायणी सेना चुन ली। किन्तु अर्जुन केवल नारायण को प्राप्त कर सन्तुष्ट रहे। बलराम तटस्थ थे। उन्होंने न तो दुर्योधन को सहायता दी, न अर्जुन को।

युद्ध से पूर्व कृष्ण ने सामनीति द्वारा सन्धि कराने की चेष्टा की थी। वे पाडवों के दूत बनकर, दुर्योधन की राजसभा मे गये और पांडवों के लिए केवल पाँच गाँव माँगे; किन्तु दुर्योधन ने कह दिया कि पाँच गाँव तो क्या, विना युद्ध के पाडवों को सुई की नोक जितनी भी भूमि न दूँगा। तव युद्ध की तैयारियाँ हुई। अर्जुन के सारथि बनकर श्रीकृष्ण ने पाडवो को सहायता दी। कौरवों और पाडवों का घमासान युद्ध हुआ। कौरवो की ओर से लड़ते हुए भीष्म पितामह ने नित्यप्रति पाडवों के दस सहस्र महारथी मारने की प्रतिज्ञा की थी, फिर भी पाडवों को जीतना कठिन जान, एक दिन भीष्म ने प्रतिज्ञा की कि मैं कल समस्त सेना के सहित पाँचों पाडवों को मार डालूँगा।

पितामह की प्रतिज्ञा सुनकर, पाडव घवरा गए, तव श्रीकृष्ण ने एक युक्ति सोची। वे द्रौपदी को लेकर भीष्म के शिविर मे पहुँचे और स्वयं वाहर खड़े रहे तथा अन्दर द्रौपदी को प्रणाम करने भेजा। द्रौपदी ने प्रणाम किया, तो भीष्म ने उसे दुर्योधन की पत्नी समझ कह दिया, सौभाग्यवती रहो। तव द्रौपदी ने उन्हे, उनकी प्रतिज्ञा, याद दिलाते हुए कहा कि कल तो आप पाडवों को मार डालेंगे और आपका आशीर्वाद निष्फल जायगा। इस पर भीष्म ने कहा—'मैंने यह भी कहा है कि कल ऐसा युद्ध करूँगा कि श्रीकृष्ण को भी शस्त्र ग्रहण करना पड़ेगा और उनको प्रतिज्ञा तोड़नी होगी। यदि श्रीकृष्ण ने शस्त्र नहीं उठाया,

ता मैं पांडवों को मारूँगा। पर मैं ऐसा भयंकर युद्ध करूँगा कि कृष्ण को पांडवों के रक्षार्थ शस्त्र धारण करना ही पड़ेगा।

भीष्म ने दूसरे दिन ऐसा भयंकर युद्ध किया कि अर्जुन की भी शक्ति क्षीण हो गई। युधिष्ठिर की सेना के मुख्य वीरों का संहार देखकर, श्रीकृष्ण सब कुछ भूल गए। वे एक हाथ में चाबुक और दूसरे में सुदर्शन चक्र लेकर भीष्म की ओर दौड़े किन्तु उसी समय अर्जुन ने श्रीकृष्ण को उनकी प्रतिज्ञा की याद दिला दी और उन्हे युद्ध करने से रोका। पांडवों की सेना भीष्म के बाणों से घबराकर तितर-वितर होने लगी। उसी समय सूर्यास्त होने से युद्ध वन्द हो गया। तब पांडवों ने भीष्म के पास जाकर उनके जीतने का उपाय जानना चाहा। उन्होंने कहा कि तुम्हारी सेना में शिखंडी नामक वीर स्त्री रूप मे पैदा हुआ था। युद्ध के नियम के अनुसार मैं स्त्री पर हाथ न उठाऊँगा। शिखंडी ही मेरी मृत्यु का कारण है।

दूसरे दिन, सूर्योदय के समय, शिखंडी को आगे कर पांडवों ने अपनी सेना लेकर कौरवों पर आक्रमण कर दिया। अर्जुन ने तीक्ष्ण बाणों से भीष्म के समस्त शरीर का रोम-रोम वेध डाला। किन्तु भीष्म अपनी इच्छा से ही मर सकते थे। उन्होंने पाडवों से युद्ध न किया, क्योंकि पांडव, पांडु की सन्तान और द्रौपदी के पति होने के कारण, अवध्य थे, दूसरे शिखंडी के सामने आने पर उसे स्त्री जान, युद्ध के नियम के अनुसार, उन्होने उस पर शस्त्र नहीं उठाया। अन्त मे सूर्यास्त के समय वे रथ से गिर पड़े; किन्तु बाणो के कारण बाणों की शय्या पर लेटे रहे। फिर उन्होंने अर्जुन से तकिया माँगा, तो उन्होने बाण मार कर उनका मस्तक भी बाणों से टेक दिया। उस समय सूर्य अशुभ दक्षिणायन में था, अतएव उन्होंने उत्तरायण मे मरना चाहा। कुछ दिनों के बाद उत्तरायण सूर्य होने पर उन्होंने प्राण त्याग दिए।

रक्तबीज

दैत्यों के राजा का नाम शुंभ था। शुंभ और निशुभ दोनों भाइयों ने इन्द्र के हाथ से त्रिलोक का राज्य छीन लिया। तब देवताओं ने दुःखी हो जगदम्बा की स्तुति की। शिवजी के चिढ़ाने पर जगदम्बा कालिका, जिनका वर्ण काले रग का हो गया था, हिमालय में गोरी होने के लिए तप कर रही थीं। शुंभ-निशुभ के अनुचर चंड-मुड ने उनको देखा, तो अपने स्वामी से उनकी बड़ी प्रशसा की। शुभ ने अपना दूत भेजकर देवी से कहलवाया कि मैं इस समय त्रिलोक का स्वामी हूँ। तुम मेरी पत्नी बन जाओ। देवी ने उत्तर दिया कि जो मुझे संग्राम मे जीत लेगा, वही मेरा स्वामी होगा। तब दैत्यराज ने धूम्रलोचन को भेजा। उसे जगदम्बा ने तत्काल भस्म कर दिया। फिर दैत्यराज ने चंड-मुड को भेजा। सिंह पर बैठकर, कालिका रूप मे देवी ने दोनों के मस्तक काट डाले और तभी से वह चामुंडा देवी कहलाने लगीं।

अब शुंभ ने रक्तबीज नामक दैत्य को भेजा। उसके शरीर से जब रक्त की बूँद पृथ्वी पर गिरती, तो उसी के समान शक्तिशाली एक दूसरा महादैत्य पृथ्वी पर पैदा हो जाता था। इस प्रकार सेकड़ों रक्तबीज उत्पन्न होकर चामुंडा पर आक्रमण करने लगे। चडिका देवी ने अपना मुख खोलकर अपनी जीभ लम्बी बढ़ाई। शस्त्राघात से जो रक्त गिरता, उसे वे जीभ से चाट जातीं। इस युक्ति से दैत्य का सारा रक्त नष्ट हो गया और नये राक्षस उत्पन्न न हो सके। रक्तहीन होकर रक्तबीज दैत्य पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसका वध हो गया।

रघु, नन्दिनी

परमेश्वर के पुत्र ब्रह्मा थे। ब्रह्मा के मरीचि, मरीचि के कश्यप, कश्यप के सूर्य और उनके वैवस्वत मनु हुए। वैवस्वत मनु के पुत्र का नाम इक्ष्वाकु था। ये इक्ष्वाकु त्रेतायुग मे अयोध्या के राजा थे। इसी सूर्यवंश मे राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा के पुत्र रघु हुए।

कामधेनु की पुत्री "नन्दिनी" की सेवा करने से, गाय के बदले

अपना शरीर सिंह को समर्पण करने को तैयार होने पर, नन्दिनी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने निःसन्तान राजा-रानी को आशीर्वाद दिया कि तुम्हें यशस्वी पुत्र होगा। रघु का जन्म इसी आशीर्वाद से हुआ। बड़े होकर रघु बड़े पराक्रमी राजा हुए। भगवान् रामचन्द्रजी इसी कुल मे होने से राघव नाम से पुकारे जाते थे।

रजक, कंस, दुर्मुख, राम, सीता

श्रीकृष्ण जब अक्रूर के साथ मथुरा गये, तो उन्होंने कंस के धोबी का वध राजा के कपड़े धोकर किया था। वह धोबी उन्हें रँगकर



कंस का धोबी और श्रीकृष्ण

लिये जा रहा था। श्रीकृष्ण ने उसे छेड़कर कंस को क्रुद्ध करना चाहा। श्रीकृष्ण ने धोबी से कहा—हम राजा के अतिथि हैं। ये कपड़े हमे दे

दो, हम पहनेंगे। इस पर धोबी ने क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण को बुरा-भला कहा तो उन्होंने धोबी को मारकर उसकी गठरी में से मनमाने रेशमी कपड़े निकाल लिये और दर्जी से ठीक करवाकर पहन लिये।

वनवास के उपरान्त रावण को मारकर, सीताजी की अग्नि-परीक्षा कर, रामचन्द्रजी अयोध्या लौटे और राज्य करने लगे। राम-राज्य मे प्रजा सर्वत्र सुखी थी। एक बार रामचन्द्रजी ने सुना कि एक शूद्र कीतपस्या के कारण, एक ब्राह्मण का पुत्र युवावस्था में मर गया। उन्होंने क्रोध कर बाण छोड़ा, जिससे शूद्र मर गया और ब्राह्मण का सुन्दर बालक जीवित हो गया। तब से रामचन्द्रजी ने चारों ओर दूत नयुक्त कर दिये कि दिन भर गुप्तचर घूमा करें और संध्या को नित्य प्रति प्रजा का हालचाल बताया करें।

एक दिन दुर्मुख नामक एक दूत कुछ बोल न सका—वह चुपचाप मस्तक नीचा किए खड़ा रहा। इस पर रामचन्द्रजी ने उसे निर्भय हो सब, वृत्तान्त साफ-साफ बतलाने को कहा। गुप्तचर ने डरते-डरते बतलाया कि एक धोबी अपनी स्त्री को पीट रहा था और क्रोध में अपशब्द कह रहा था। बात यह थी कि एक रात धोबिन घर से बाहर निकल, कहीं चली गई थी। वह जब लौटकर पहुँची, तो रजक ने कहा—'मैं अब तुझे नहीं रख सकता। मैं रामचन्द्र नहीं हूँ कि सीता इतने दिन राक्षस के यहाँ रहीं और उन्हें घर मे रख लिया।'

यह अपयश सुन, रामचन्द्रजी ने सीता का त्याग कर दिया। लक्ष्मण गर्भवती सीता को वाल्मीकि मुनि के आश्रम में छोड़ आये, जहाँ लव-कुश नामक जुड़वाँ पुत्र उत्पन्न हुए।

रन्तिदेव

चन्द्रवशी राजा रन्तिदेव बड़े धर्मात्मा और दयालु थे। दूसरों के दुःख से दुःखी होकर वे सर्वस्व त्याग देते थे। अपनी सारी सपत्ति उन्होंने दूसरों को बाँट दी थी और स्वयं जो कुछ मिल जाता था, उससे निर्वाह करते थे।

एक बार देश में घोर अकाल पड़ा। इनके परिवार को महीने भर से ऊपर हो जाने पर भी अन्न-जल प्राप्त न हुआ। मरणासन्न परिवार को जब कहीं से भोजन मिला, तो परिवार के लोगों को बुला ही रहे थे कि एक ब्राह्मण अतिथि आ गया। उसे खिलाकर रन्तिदेव ने अपने स्त्री-बच्चों को भोजन बाँट दिया।

वे स्वयं भोजन करने जा रहे थे कि एक शूद्र अतिथि आ गया। उस भूखे दरिद्र को भी राजा ने बड़े प्रेम से भोजन खिला दिया। तत्पश्चात् एक चांडाल कई कुत्तों को लेकर आया और भोजन के लिए गिड़गिड़ाने लगा। तब रन्तिदेव ने समस्त बचा हुआ भोजन कुत्तों और चांडाल को दे दिया। अब थोड़े जल से ही रन्तिदेव अपनी भूख-प्यास मिटानेवाले थे कि एक और चांडाल आकर प्राणरक्षा के लिए जल माँगने लगा। पर दुःख-कातर महाराज रन्तिदेव ने वह जल भी बड़े सम्मान से चांडाल को पिला दिया।

ब्राह्मण, शूद्र और चांडाल रूप मे ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही थे, जो रन्तिदेव की परीक्षा लेने गये थे। राजा का असीम धैर्य और परोपकार देख, वे प्रकट हो गये और राजा से वरदान माँगने को कहा। राजा ने यह वर माँगा कि मैं दूसरों का दुःख न देख सकूँ, चाहे स्वयं दुःख उठा लूँ। तदनन्तर भगवान् से आशीर्वाद पा वे परम गति को प्राप्त हुए। राजा रन्तिदेव के शासनकाल में यज्ञ तथा भूखों के भोजन के लिए असंख्य पशुओं का बलिदान होता था। इससे उनके राज्य से रक्त की नदी बहने लगी थी, जो चर्मण्वती के नाम से प्रसिद्ध हुई।

राधा, गोपी, वृषभानु

परमब्रह्म परमेश्वर गोलोक में, श्रीकृष्ण रूप में, राधा नामक गोपी के साथ विहार करते हैं। श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति गोलोक में राधा कहलाती थी। ये रास-मण्डल में प्रकट हुई थीं और पुष्प चयन कर श्रीकृष्ण के चरण छूने के लिए दौड़ी थीं, अतएव 'धाव्' धातु से इनका

नाम राधा पड़ गया। श्रीकृष्ण इनकी नित्य आराधना करते थे, इसलिए राधा और कृष्ण की आराधिका होने के कारण इस गोपी का नाम राधा पड़ा। कृष्णजी की यह प्राणों से भी अधिक प्यारी गोपी थी।

एक बार विरजा नाम की गोपी के साथ विहार करने से कृष्णजी से राधा रूठ गई। रसिकविहारी कृष्णजी तो गोपीनाथ थे, उन्हें माया-रचनी थी, अतएव एक दिन वे श्रीदामा को द्वाररक्षक बना चन्द्रावली नाम की एक अन्य गोपी के साथ क्रीड़ा कर रहे थे कि इनकी प्रेयसी राधा दौड़ी हुई आई। राधा ने आकर श्रीदामा को द्वार से हट जाने को कहा। श्रीदामा भला श्रीकृष्ण की आज्ञा कैसे भग करता ? इस पर कुपित हो राधा ने शाप दिया कि तुम असुरों के समान मेरे हृदय को संतप्त कर रहे हो, तो तुम असुर ही बनो।

श्रीदामा कृष्ण-वियोग के कारण बहुत दु:खी हुआ, अतएव उसने भी राधा को शाप दे डाला कि तुम्हें भी मर्त्यलोक में जाकर कृष्ण-वियोग सहना पड़े। तुम भी शत वर्षों तक श्रीकृष्ण-वियोग का दु:ख अनुभव करो।

शाप सुनकर कृष्णजी दौड़े आये और रोती हुई राधा को मनाते हुए बोले कि यह शाप नहीं है, शाप के रूप मे वरदान है। इसी शाप के कारण राधा का जन्म ब्रजभूमि मे वृषभानु नामक गोप के यहाँ हुआ। उनकी माता का नाम कलावती कीर्त्तिदा था। राधा का समाज-सम्मत विवाह आयान घोष के साथ हुआ था, किन्तु राधा ने अपना मन और प्राण तो नन्द-यशोदा के लाड़ले पुत्र कृष्णजी को ही समर्पित कर रक्खा था। गोपों और गोपियों ने राधा-कृष्ण का विवाह रास-मण्डप मे कर दिया था।

राधा-कृष्ण का प्रेम सासारिक प्रेम नहीं माना जाता। वह भगवद्-भक्ति और आदर्श प्रेम का प्रतीक, आत्मा का परमात्मा के प्रति पूर्वराग माना जाता है।

कृष्ण के मथुरा चले जाने पर राधा को कई वर्षों तक वियोग सहना

पड़ा। फिर शत वर्ष व्यतीत होने पर प्रभास-क्षेत्र में राधा और कृष्ण का मिलन हुआ।

नारायण के साथ जैसे लक्ष्मी, राम के साथ सीता और पुरुष के साथ प्रकृति है, उसी प्रकार राधा-कृष्ण भी पूरक शक्ति हैं।

रावण, कुबेर, रंभा, नन्दीश्वर, सहस्रबाहु, बालि, सीता

रावण विश्रवा मुनि का पुत्र था। इसकी माता सुमाली की पुत्री कैकसी थी। देवताओं का धनाध्यक्ष वैश्रवण कुबेर रावण का सौतेला भाई था। एक दिन रावण के पिता ने रावण पर क्रोध कर कहा कि तुम कुछ नहीं करते। कुबेर को देखो, वह तप के बल पर देवता हो गया है। ब्रह्माजी ने उसे पुष्पक विमान दिया है। इन्द्र ने उसे कोष का स्वामी बनाया है और विश्वकर्मा ने उसके लिए लंकापुरी बनाई है। तुम वृथा समय खोते हो। इस प्रकार पिता के समझाने पर रावण लज्जित हो गया और उग्र तप करने लगा।

रावण शङ्कर का अनन्य भक्त था। उन्हे प्रसन्न कर रावण ने उनसे दस सिर माँगे। शिवजी के पाँच सिर थे, अतः उनसे दुगुने अर्थात् दस सिर उसने माँगे, जिससे वह दस मुखों से उनकी स्तुति कर सके। फिर उसने और भी अधिक दुःसह तप किया। शिव-पूजन करते समय वह पुष्पों के स्थान पर अपने मस्तक काट-काट कर चढ़ाता था। शिवजी तप से शीघ्र प्रसन्न हो गये। जब वह अपना दसवाँ मस्तक काटने जा रहा था, शिवजी प्रकट हो गये। उन्होने रावण से वरदान माँगने को कहा। दशग्रीव रावण ने कहा—मैं गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओं के लिए अवध्य हो जाऊँ। मैं मनुष्य से नहीं डरता, वे तो तिनके के समान हैं।

वरदान पाकर रावण ने, अपने नाना सुमाली के कहने से, लंकापुरी को दैत्यों के रहने के लिए कुबेर से माँगा। उसके पिता विश्रवा ने शाप दिया कि ऐसा करेगा, तो तेरा सर्वनाश हो जायगा। किन्तु शिवजी से

वर पाकर रावण बड़ा उन्मत्त और क्रूर हो गया था। उसके बहुत हठ करने पर त्रिकूट पर्वत पर बसी लंकापुरी को छोड़, कुबेर कैलाश पर्वत पर चला गया। लंकापति हो रावण ने अपनी बहिन शूर्पणखा का विवाह दानवराज विद्युज्जिह्व से कर दिया। दिति के पुत्र मय ने हेमा से उत्पन्न अपनी कन्या मन्दोदरी का विवाह रावण से कर दिया। भाई कुबेर को लंका से भगाकर क्रूर रावण को चैन न मिला। उसने कुबेर पर चढ़ाई कर उसका पुष्पक विमान छीन लिया। धीरे-धीरे उसने तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया। देवताओं को बड़ी चिन्ता हुई।

एक बार वह पुष्पक विमान पर बैठकर कैलाश पर्वत की ओर जा रहा था कि एकाएक विमान की गति रुक गई। वह चकित हो गया, तब शिव के प्रधान गण नन्दीश्वर ने, जिनका मुख बानर के समान था, आकर कहा कि इस समय शंकर भगवान् विहार कर रहे हैं। नन्दीश्वर का वानर-मुख देखकर रावण हँसने लगा और बोला—तुमने भगवान् से वानर मुख क्यों माँगा ? मैंने तो दस मुख माँगे जिससे मैं उनकी अधिकाधिक स्तुति कर सकूँ। रावण का उपहास सुनकर नन्दीश्वर ने उसे शाप दिया कि तुम वानरों पर हँसते हो तो तुम्हारा शत्रु—वानरों की ही सहायता से—तुम्हे मार डालेगा।

नन्दीश्वर ने रावण को कैलास पर्वत के निकट आने से रोका, तो रावण क्रोध के मारे काँपने लगा। उसने समूचे कैलास पर्वत को उठाने की चेष्टा की, तो पार्वतीजी डर गई। तब शिवजी ने अपने बाँयें पैर के अँगूठे से उस पर्वत को दबा दिया, जिससे रावण की भुजाएँ दब गईं और वह पीडा से तड़पकर चीखने लगा। अब उसने शिवजी की स्तुति की। भयानक "रव" करने से वह रावण नाम से प्रसिद्ध हो गया। शिवजी ने दया कर उसे छोड दिया और 'चन्द्रहास' नाम की एक तलवार देकर कहा—यदि तुम इसका तिरस्कार करोगे, तो यह मेरे पास लौट आयगी।

एक बार अप्सराओं में श्रेष्ठ रंभा कैलास पर्वत से जा रही थी कि रावण ने उसे दूर से देख लिया। उसके अलौकिक सौन्दर्य को देखकर, वह

रंभा से प्रणय-याचना करने लगा। रंभा कुवेर के पुत्र नलकूवर के पास जा रही थी, अतएव उसने कहा—आपकी तो मैं पुत्रवधू हूँ। आप मेरे गुरुजन हैं। किन्तु रावण न माना और उससे अशिष्ट व्यवहार कर वैठा। जव नलकूवर ने यह हाल सुना, तो क्रुद्ध हो हाथ में जल ले, शाप दिया कि यदि इसी प्रकार फिर कभी उसके किसी स्त्री की इच्छा के विरुद्ध अत्याचार करेगा, मस्तक के सात टुकड़े हो जायँगे।

रावण गर्व से उन्मत्त हो यमलोक और इन्द्रलोक पर भी आक्रमण कर वैठा। रावण का पुत्र मेघनाद इन्द्र को जीतकर लंका में ले आया; पर ब्रह्मा के कहने से छोड़ दिया। उसी समय नाक-कान-कटी उसकी वहिन शूर्पणखा रोती-चिल्लाती गई। उसने पंचवटी मे रहनेवाले राम, लक्ष्मण और सीता के विषय में वतलाया।

एक वार रावण दिग्विजय करता हुआ एक नदी के किनारे जाकर वैठा, तो अचानक नदी में वाढ़ आ गई और उसकी पूजा की सामग्री वहने लगी। ध्यान से उसने देखा तो ज्ञात हुआ कि नदी का जल उलटा वह रहा था। उसे वड़ा कौतूहल हुआ। आगे चला तो देखा कि सहस्रवाहु अर्जुन कार्त्तवीर्य, अपनी स्त्रियों के साथ, जलक्रीड़ा कर रहा था और उसी ने अपने हाथों से जल-प्रवाह रोक रखा था। उन स्त्रियों ने दशग्रीव रावण को देखा तो सहस्रवाहु से उसे पकड़ लाने का हठ किया। रावण तो युद्ध के लिए तैयार ही खड़ा था। पर सहस्रार्जुन ने उसे झपटकर पकड़ लिया और अपने सहस्र हाथों से वाँध दिया। रावण वहुत छटपटाया, किन्तु सहस्रवाहु उसे अपने नगर मे, रनिवास में ले गया। रानियाँ उसके दसों सिरों पर दिया जलातीं और वच्चे ताली वजा-वजाकर हँसते। अन्त में पितामह पुलस्त्य मुनि की कृपा से रावण का छुटकारा हुआ।

एक वार रावण किष्किन्धापुरी में, महावलशाली वानरराज वालि के पास, उसके वल की परीक्षा करने पहुँचा और उससे लड़ना चाहा। वालि ने कहा, मैं संध्या-समय नहीं लड़ता और धीरे से रावण को पकड़कर अपनी वगल मे दवा लिया। वह नित्यनियमानुसार समुद्र

पर घूम-घूमकर पूजा करने लगा। अन्त मे सूर्य को अर्घ्य देते समय यह भूल गया कि उसकी बगल मे रावण है। इससे बाँह उँची करते ही रावण छूट गया। फिर रावण ने अनुनय-विनय करके बालि से मित्रता कर ली।

शूर्पणखा से सीता के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर, उनका हरण करने के लिए; रावण ने ताड़का के पुत्र मारीच से सहायता माँगी; किन्तु मारीच को याद था कि राम के बाण से चोट खाकर किस प्रकार वह सौ योजन दूर समुद्र मे जा गिरा था। वह डर गया किन्तु रावण ने उसे सोने का कपट-मृग बनने के लिए बाध्य किया। हेममृग, राम और लक्ष्मण को, आकर्षित कर दूर ले गया। सीता को अकेली पाकर रावण भिक्षु रूप मे उनके पास गया और बलपूर्वक हरण कर रथ में बैठाकर लंका ले चला। मार्ग मे पक्षिराज जटायु ने सीता का रोना-चिल्लाना सुनकर, रावण के रथ को चूर-चूर कर डाला। इससे क्रुद्ध हो रावण ने जटायु का वध कर दिया।

सीता का हरण तो रावण ने कर लिया; किन्तु नलकूबर के शाप के भय से वह उनका कुछ अनिष्ट न कर सका। उन्हें अशोकवाटिका में रखकर साम, दाम, दंड और भेद से फुसलाने की चेष्टा करता रहा। अन्त मे उन्हें एक महीने की मुहलत दी। इसी बीच मे रामचन्द्रजी ने, सुग्रीव की सहायता से, लंका पर आक्रमण कर दिया। रावण का धर्मात्मा भाई विभीषण, रावण से अपमानित हो, रामचन्द्रजी से मिल गया। कई दिनों तक घनघोर युद्ध होता रहा। अन्त मे रामचन्द्री के ब्रह्मास्त्र से रावण का वध हो गया।

राहु-केतु, मोहिनी

समुद्र-मन्थन के समय जब धन्वन्तरि अमृत का कलश लिये हुए समुद्र से बाहर निकले, तो दैत्यों ने उनका कलश छीन लिया और आपस मे लड़ने-झगड़ने लगे कि पहले मैं पियूँगा, पहले मैं पियूँगा। उस

समय देवताओं की सहायता करने के लिए भगवान् ने 'मोहिनी' नामक अप्सरा का रूप धारण किया और अपनी माया भरी चितवन से दैत्यों को मोहित कर उनसे अपने को पंच स्वीकार करा लिया। मोहिनी ने दैत्यों और देवताओं को अलग-अलग पंक्ति में बैठाया। फिर दैत्यों को तो अपनी चितवन से मुग्ध कर रखा और देवताओं को अमृत पिलाने लगीं।

सिंहिका राक्षसी के पुत्र राहु ने यह बात ताड़ ली और वह देवताओं का-सा वेश बनाकर, सूर्य और चन्द्रमा के बीच मे जा बैठा। देव-पंक्ति मे बैठने के कारण राहु को मोहिनी अमृत पिलाने जा ही रही थी कि सूर्य और चन्द्रमा ने उसे संकेत से बतला दिया कि यह दैत्य है। उसका कपट खुलते ही विष्णु भगवान् ने चक्र चलाकर राहु का सिर धड़ से अलग कर दिया। परन्तु उसके मुँह में अमृत पहुँच चुका था, इसलिए वह मरा नहीं। वह चन्द्रमा और सूर्य से द्वेष करने लगा और इसी कारण वह क्रमशः पूर्णिमा और अमावस्या को उन्हे ग्रसता है। इसी को हम ग्रहण कहते है। उसके कटे हुए सिर का नाम 'राहु' और धड़ का 'केतु' है।

रुक्मिणी, शिशुपाल

विदर्भ देश के राजा भीष्मक के पाँच पुत्र और एक कन्या रुक्मिणी थी। रुक्मिणी स्वयं भगवती लक्ष्मी का अवतार थीं। रुक्मिणी के बड़े भाई रुक्मी का कृष्ण से बड़ा बैर था। वह रुक्मिणी का विवाह द्वेष-वश कृष्ण से न कर चेदि के राजा, कृष्ण के फुफेरे भाई, शिशुपाल से करना चाहता था।

रुक्मिणी ने एक विश्वासपात्र ब्राह्मण के हाथ कृष्ण के पास द्वारकापुरी एक गोपनीय सँदेशा भेजा। तदनुसार रुक्मिणी के स्वयंवर के दिन कृष्ण अपने शीघ्रगामी घोड़े पर विदर्भ जा पहुँचे। रुक्मिणी विवाह के दिन गिरिजा देवी के मन्दिर में पूजा करने जा रही थी। उसी समय भगवान्

ने अपना रथ रोककर भीड़ में से रुक्मिणी को उठा लिया और उसका हरण कर भागे। अब जरासंध, शाल्व, शिशुपाल आदि राजा क्रोध से आग-



रुक्मिणी-हरण

बबूला हो गए। रुक्मी क्रोध के मारे जल रहा था। उसने श्रीकृष्ण का बहुत दूर तक पीछा किया। श्रीकृष्ण ने उसके सब अस्त्र गिरा दिये। रुक्मिणी का भाई होने के कारण, दया कर, श्रीकृष्ण ने उसे मारा तो नहीं; किन्तु दाढ़ी-मूँछ मुँड़वाकर उसे कुरूप बनाकर दुपट्टे से बाँधकर वहीं; पटक दिया।

द्वारका जाकर कृष्ण ने विधिपूर्वक रुक्मिणी का पाणिग्रहण किया। इसी रुक्मिणी के गर्भ से, कामदेव का अवतार, अत्यन्त सुन्दर "प्रद्युम्न" नाम का पुत्र हुआ था, जिसे शम्बरासुर हर ले गया था।

रुक्मी, वलदेव, रैवतक, अनिरुद्ध

कृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र का नाम प्रद्युम्न था। रुक्मिणी के बड़े भाई रुक्मी की कन्या रुक्मवती के साथ प्रद्युम्न का व्याह हुआ। रुक्मी का कृष्ण ने एक वार अपमान किया था, इसलिए वह उनको अपना शत्रु समझता था। फिर भी पुत्र और वहिन की इच्छा पूरी करने के लिए उसने अपनी कन्या का विवाह प्रद्युम्न से कर दिया। रुक्मवती ने स्वयं उसी के गले मे जयमाला डाल दी थी। प्रद्युम्न के जो पुत्र हुआ, उसका नाम रखा गया "अनिरुद्ध"। रुक्मी की पोती का नाम रोचना था। उसका विवाह रुक्मी ने अनिरुद्ध से कर दिया। इसी विवाह में रुक्मी का वध हुआ।

रुक्मी के यहाँ विवाह में कई घमंडी नरेश आये थे। उन सब ने वलदेव को चौसर में हराना चाहा। वलभद्र और रुक्मी चौसर खेलने वैठे। रुक्मी जीत गया, तो कलिंग देश का राजा खूब जोर से हँसा, जिसे सुन वलदेव वुरा मान गये। फिर दूसरा दाँव वलदेव जीते; किन्तु रुक्मी वेईमानी से झूठ वोला—'मै जीता।' इस पर वलदेव उसे अपना समधी समझकर चुप हो गए। उसने फिर लम्वा दाँव लगाया। उसे भी वलदेव जीत गये, पर रुक्मी निरन्तर साफ झूठ वोलता रहा—'नहीं, आप नहीं, मैं ही जीता हूँ।' इस पर आकाशवाणी हुई कि वलभद्र जीते हैं, रुक्मी झूठा है। फिर भी रुक्मी नहीं माना और वोला—'तुम लोग गौ चरानेवाले ग्वाले चौसर खेलना क्या जानो।' इस पर सब उपस्थित राजा लोग हँसने लगे।

शेषनाग के अवतार क्रोधी वलभद्र इसे सहन न कर सके। उन्होंने फाटक वन्द करने के लोहे के वेलन को उठाया और रुक्मी के सिर पर दे मारा। रुक्मी का सिर चूर-चूर हो गया और उसी क्षण उसके प्राण निकल गये।

कलिगराज दाँत निकालकर हँस रहा था। वलदेव ने उसके सव दाँत तोड डाले। अन्य राजाओं के भी अंगभंग कर डाले, फिर अनिरुद्ध और रोचना नव दम्पति को लेकर सव द्वारकापुरी लौट गये।

रैवतक, रेवती, वलदेव, हलधर

आनर्त देश के राजा रैवतक बड़े प्रतापी और महात्मा थे। उनके रेवती नाम की एक पुत्री थी। वह बड़ी सुन्दरी और सुशीला थी। राजा ने उसके उपयुक्त योग्य वर की समस्त पृथ्वी पर खोज कराई। अन्त मे निराश हो ब्रह्मलोक में लड़की को लेकर गये और ब्रह्माजी से पूछा कि इस लड़की के योग्य वर कौन है। ब्रह्माजी की सभा मे जब वह पहुँचे, उस समय वहाँ नाच और गाना हो रहा था इसलिए क्षण भर उनको रुक जाना पड़ा।

राजा की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा ने कहा—राजन्, जितनी देर तुम यहाँ ठहरे, उतनी देर में पृथ्वी के कई युग बीत गये। अब तो तुम्हारे समय का कोई आदमी नहीं रह गया। खैर, तुम द्वारकापुरी जाओ। वहाँ शेषनाग के अवतार बलभद्र जी रहते है। वह तुम्हारी कन्या के योग्य वर है। उनके साथ अपनी कन्या का व्याह कर दो।

ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर राजा रैवतक पृथ्वी पर आये। उन्होंने द्वारकापुरी मे जाकर अपनी कन्या का विवाह गोकुल के नन्द-रोहिणी के पुत्र बलरामजी के साथ कर दिया। बलराम, बलदाऊ या बलभद्र कृष्णजी के बड़े भाई थे। वे स्वभाव के बड़े उद्दड थे और मद्य पिया करते थे। उनका अस्त्र हल और मूसल था, इसलिए उन्हे 'हलधर' भी कहते थे।

रोहिणी, श्रीकृष्ण, बलराम

यदुवशी वसुदेव की अनेक पत्नियाँ थीं। जब देवकी से विवाह करने पर कंस के द्वारा उनको बदी होना पड़ा, तो कंस की कृपा से इनकी एक पत्नी रोहिणी को कारागार मे आने-जाने की आज्ञा मिल गई थी। वहाँ पर जब देवकी मे सातवे गर्भ के लक्षण दिखने लगे, तब रोहिणी भी गर्भवती हो गई। वसुदेवजी को चिन्ता हुई कि जैसे यह कंस देवकी के पुत्रों को मार डालता है, वैसे ही रोहिणी के पुत्र को भी कहीं शंका-

वश न मार दे। इस भय से उन्होंने रोहिणी को उसके भाई व्रजराज नन्द के यहाँ चुपचाप भेज दिया।

रोहिणी जब नन्दालय में गई तो भगवान् की "योगमाया" ने उनका गर्भ तो गिरा दिया और देवकी का सातवाँ गर्भ उनमें स्थापित कर दिया। इस प्रकार बलराम की जननी बनने का परम सौभाग्य रोहिणी को प्राप्त हुआ। श्रीकृष्ण के जन्म से आठ दिन पूर्व शेषनाग के अवतार 'अनन्त' रूप बलराम अवतरित हुए। दोनों का लालन-पालन नन्द-पत्नी यशोदा ने बड़े लाड़ से किया।

लवणासुर, शत्रुघ्न, मान्धाता

अयोध्यापुरी में युवनाश्व के पुत्र महाराजा मान्धाता बड़े बलवान् थे। वे तीनों लोकों में बड़े पराक्रमी थे। जब उन्होंने स्वर्ग को भी जीतना चाहा, तो इन्द्र ने कहा—'पहले सारी पृथ्वी तो जीतो। पहले उस पर शासन तो ठीक-ठीक करो, फिर स्वर्गलोक पर शासन करना।' मान्धाता ने पूछा—'पृथ्वी पर कौन मेरी आज्ञा नहीं मानता ?' इन्द्र ने कहा—'मधुवन (मथुरा) में मधुदैत्य का पुत्र लवणासुर रहता है। वह तुम्हारी आज्ञा नहीं मानता।'

मान्धाता ने स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर, लवण के पास दूत भेजा। लवण ने अपशब्द कहकर दूत को निकाल दिया। लवणासुर और मान्धाता का घनघोर युद्ध हुआ, जिसमें मान्धाता का वध हो गया।

लवणासुर के पिता मधु को शिवजी से एक शूल प्राप्त हुआ था, जो शत्रु का वधकर वापस लौट आता था। मधु यह शूल लवण को सौंप स्वयं समुद्र में रहने चला गया था। च्यवन आदि अनेक ऋषियों ने लवणासुर के अत्याचारों से दुःखी हो, अयोध्यापति राम से अपना दुःख कहा। रामचन्द्रजी ने मधु के नगर में शत्रुघ्न का राज्याभिषेक कर दिया और उसे लवण से युद्ध करने के लिए भेजा और कहा—'लवण पर तब आक्रमण करना, जब उसके पास शिवजी का दिव्य शूल न हो। उसे राजभवन में प्रवेश करने से पूर्व ही मार डालना।'

मधुपुरी में जाकर शत्रुघ्न और लवण का घनघोर युद्ध हुआ। शत्रुघ्न मूर्च्छित हो गए, किन्तु थोड़ी ही देर मे सचेत हो, फिर लड़ने लगे। शत्रुघ्न के पास भी एक दिव्य और अमोघ बाण था। उसी बाण से विष्णु भगवान् ने मधु और कैटभ दैत्यों को मारा था। वह दिव्य बाण लवण को मारकर पुनः लौट आया। तदनन्तर शत्रुघ्न ने मधुपुरी का शासन-प्रबंध अपने हाथों ले लिया और बारह वर्ष के उपरान्त अयोध्या लौट आये। मथुरा जाते समय शत्रुघ्न मार्ग मे वाल्मीकि आश्रम मे ठहरे थे। लवकुश का जन्म उसी दिन हुआ था।

लव, कुश, वाल्मीकि, सीता, शत्रुघ्न

लव-कुश राम और सीता के पुत्र थे। धोबी का ताना सुनकर जब रामचन्द्रजी ने गर्भवती सीता को वन मे भेज दिया था, तब लव-कुश नामक जुड़वाँ पुत्रों का जन्म वाल्मीकि मुनि के आश्रम मे हुआ।

कहा जाता है कि एक बार सीताजी स्नान करने गईं, तो नित्य-नियमानुसार लव नामक अपने पुत्र को आश्रम मे छोड़कर नहीं गईं। उसे अपने साथ लेती गईं। वाल्मीकि मुनि लव को आश्रम मे न देखकर बहुत चिन्तित हुए, तो उन्होंने कुश नामक घास पर 'लव' जैसे एक पुत्र को उत्पन्न कर दिया। सीताजी जब स्नान करके लौटीं, तो वहाँ दूसरे पुत्र को देख विस्मित हो गईं। फिर समस्त वृत्तान्त सुनकर लव-कुश दोनो पुत्रो का पालन-पोषण करने लगीं।

पिता के समान ही लव-कुश बड़े वीर और पराक्रमी थे। ये दोनों वीणा पर, वाल्मीकि द्वारा सिखाई, रामायण का गान किया करते थे। रामचन्द्रजी ने जब अश्वमेध यज्ञ किया, तो उनका घोड़ा वाल्मीकि मुनि के आश्रम से निकला। लव-कुश ने घोड़े के गले मे बंधे पत्रक को पढ़ा और घोड़े को ले जाने लगे। घोड़े की रक्षा मे आये शत्रुघ्न और भरत के पुत्र "पुष्कल" से लव-कुश लड़ने को तैयार हो गये।

बालकों के दुस्साहस पर शत्रुघ्न क्रुद्ध होकर बाण चलाने लगे, तो

वीर लव ने शत्रुघ्न को मूर्च्छित कर गिरा दिया; उनकी सेना भी तितर-वितर कर दी। रामचन्द्रजी ने दोनों वीर बालकों के विषय में सुनकर भरत और लक्ष्मण को भेजा, तो लव-कुश उन्हे बाँधकर सीताजी के पास ले गये; पर माँ के कहने से उन्हें छोड़ दिया।

लव-कुश की वीरता का वृत्तान्त सुन, रामचन्द्रजी स्वयं युद्धभूमि में गये, तो वाल्मीकि लव-कुश और सीता को लेकर पहुँचे और उनका परिचय देकर कहा कि ये दोनों आपके ही पुत्र हैं। इसी समय सीताजी पृथ्वी में समा गईं और लव कुश अयोध्या मे आ गये। थोड़े दिनों बाद रामचन्द्रजी ने उन्हे सारा राजपाट सौंप दिया।

लाक्षागृह, विदुर, पुरोचन

राजा पांडु की मृत्यु के समय पाडव छोटे बालक थे, इस कारण धृतराष्ट्र गद्दी पर बैठे। जब कौरव-पांडव बड़े हुए, तो सब लोग पांडु के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को राजा बनाने के लिए कहने लगे, जिससे धृतराष्ट्र का सबसे बड़ा पुत्र दुर्योधन जल-भुन गया। पांडव कौरवों से सब बातों में बढ़े-चढ़े थे, इसलिए बैर तो पहले ही था, अब और बढ़ गया। अतः दुर्योधन ने अपने पिता के पास जाकर पाण्डवों को कुन्ती समेत वारणावत नामक नगर में भेजने के लिए कहा। दुर्योधन सभा को प्रसन्न करने में लग गया और उसके चतुर मंत्रियों ने वारणावत के मेले की प्रशंसा पाडवों से करनी प्रारंभ कर दी।

पांडव जब वारणावत जाने की तैयारी कर रहे थे, तब दुर्योधन ने "पुरोचन" नामक एक उत्तम शिल्पकार से नगर के किनारे वन मे लाख, गन्धक, राल आदि वस्तुओं का एक भवन बनवा दिया और ऊपर से उसे नाना प्रकार से सजा दिया कि किसी को सन्देह न हो। किन्तु इस कपट की सूचना विदुर को लग गई। आखेट के बहाने वह नित्य प्रति उसी वन में जाने लगे और चुपचाप वन के एक भाग से लेकर उस भवन तक एक सुरंग खुदवा दी।

पाडव जब वारणावत जाने लगे, तो विदुर ने नीति का उपदेश देते हुए कहा कि आग घास-फूस और सारे जङ्गल को जला डालती है; किन्तु बिल मे रहनेवाले जीव अपनी रक्षा कर लेते हैं। इस प्रकार के अनेक उपदेशों से युधिष्ठिर को उन्होंने संकेत दे दिया।



उस घर में आग लगाकर माता कुन्ती के साथ पाडव
सुरङ्ग की राह से वन मे निकल गये।

एक रात जब पाडव उसी भवन में सोये हुए थे, उस घर मे आग लगाकर माता कुन्ती के साथ पाडव सुरङ्ग की राह से वन मे निकल गये और एक भीलनी, जो अपने पाँच पुत्रों के साथ वहीं ठहरी थी, और पुरोचन जलकर भस्म हो गये। कौरवो ने समझा, पाडव जल गए और वे बड़े प्रसन्न हुए।

लोपामुद्रा, अगस्त्य

अगस्त्य ऋषि की पतिव्रता स्त्री का नाम लोपामुद्रा था। अगस्त्य ने दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य धारण किया था। वे विवाह नहीं करते थे।

एक वार उन्होंने स्वप्न में देखा कि हमारे पितर गड्ढे में उलटे लटके हुए हैं। अगस्त्य ने उन्हे इस प्रकार अधोमुख लटका देखकर उनसे कारण पूछा। पितरों ने कहा—यदि तुम विवाह करके सन्तान उत्पन्न करो तो हम लोगों को इस यातना से छुट्टी मिले।

अगस्त्य ने वहुत ढूँढ़ा, पर उनको सव लक्षणों से युक्त कोई कन्या विवाह करने योग्य न मिली। निदान उन्होंने सव प्राणियों के उत्तम अंग लेकर एक कन्या वनाई। उस समय विदर्भ देश का राजा पुत्र के लिए तप कर रहा था। अगस्त्य ने लोपामुद्रा उसी विदर्भराज को प्रदान कर दी। जव वह वड़ी हुई तव अगस्त्य ने उस कन्या की याचना की। विदर्भ के राजा ने लोपामुद्रा अगस्त्य जी को सौंप दी और अगस्त्य ने उसका पाणिग्रहण कर उसे अपनी पत्नी वनाया।

लोपामुद्रा ने अगस्त्य से धन-वैभव की याचना की, तो ऋषि ने अनेक राजाओं के निकट जाकर धन की याचना की। अन्त में "इल्वल" नामक राक्षस की मृत्यु से इन्हें अपार धन-राशि प्राप्त हुई, जिसे पाकर लोपामुद्रा सन्तुष्ट हो गई।

अगस्त्य तारे के निकट ही लोपामुद्रा का तारा भी उदय होता है।

वत्सासुर

कृष्ण-जन्म के उपरान्त व्रजभूमि मे कंस के भेजे राक्षस जाकर नाना प्रकार के उत्पात करने लगे, तो व्रजवासियों को गौएँ चराने में कष्ट होने लगा। वहुत से व्रजवासी थोड़ी ही दूर पर वृन्दावन मे जाकर वस गये, क्योंकि वहाँ उनकी गायों के लिए खूव घास और चारा था।

कृष्णजी नित्य प्रति अपनी गौएँ वृन्दावन ले जाते थे। एक दिन कंस का भेजा एक राक्षस वछड़े का रूप वनाकर गया और कृष्ण के

बछड़ों में मिल गया। वह कृष्ण को मारने का अवसर देख ही रहा था कि कृष्ण ने दैत्य के इरादे को समझ लिया। वे अपने बछड़ो को पुचकारते, उनकी पीठ पर हाथ फेरते, धीरे-धीरे उस दैत्य के निकट पहुँचे। फिर फुर्ती से उसके पिछले पैर पकड़कर, घुमाकर उसको इतने जोर से एक पेड़ पर पटका कि वह तुरन्त ठंडा हो गया। सब ग्वाल-बाल उस दैत्य को देखकर आश्चर्य मे पड़ गए और कृष्ण के असीम बल की प्रशंसा करने लगे।

वरुण-नन्द

कश्यप-अदिति के आठ पुत्रों में एक वरुण भी थे। वैदिक काल में जलाधीश वरुण की गणना प्रधान देवताओं में होती थी। वरुण की उपासना से ही राजा हरिश्चन्द्र को रोहित नाम का पुत्र हुआ था, पर वरुण ने कहा था कि इसी पुत्र से मेरा यज्ञ करना। रोहित को जब पता चला कि उसका वरुण-यज्ञ मे बलिदान होगा, तो वह घर से भाग गया। उसके बदले राजा ने शुन शेफ को मोल लेकर यज्ञयूप से बाँधा, तो वह वरुण की स्तुति करने लगा। अन्त मे वरुण ने उसका उद्धार कर दिया।

एक बार वरुण के एक सेवक ने कृष्णजी के पिता नन्द बाबा को पकड़ लिया। बात यह थी कि नन्द बाबा ने एकादशी व्रत किया था और भगवान् की पूजा करने के समय तथा उसी दिन, रात मे द्वादशी लगने पर स्नान करने के लिए जमुना-जल मे प्रवेश किया। नन्द बाबा को यह ध्यान नहीं रहा कि रात्रि को असुरों के निकलने की वेला होती है। वे उसी समय जल मे घुस गये। उस समय वरुण का एक अनुचर उन्हें घसीटकर वरुण के पास ले गया। नन्द बाबा के जल मग्न हो जाने पर सारे व्रज मे कोहराम मच गया। सब व्रजवासी रोते-चिल्लाते श्रीकृष्ण-बलराम को सूचना देने गये। भगवान् श्रीकृष्ण फौरन जल में घुस गए। और वरुणजी के पास गये, तो देखा कि नन्द-बाबा वहाँ थे। नन्द बाबा ने लोकपाल वरुण के लोक मे जाकर अतुल

ऐश्वर्य और सुखसंपत्ति देखी। उन्होंने यह भी देखा कि वहाँ के निवासी उनके पुत्र श्रीकृष्ण के चरणों मे झुक-झुक कर प्रणाम कर रहे हैं। वरुण ने अपने सेवक की गलती पर क्षमा माँगी और उनकी बड़ी पूजा की। इस प्रकार नन्द बाबा को वरुण-लोक से छुड़ा कर श्रीकृष्ण ब्रज मे लौट आये।

वरुण देवता करुण रस के अधिष्ठाता माने जाते है।

वसिष्ठ, कपिला, विश्वामित्र, अरुन्धती

वसिष्ठ ब्रह्मा के मानस-पुत्र थे। इनकी पत्नी का नाम अरुन्धती था। रघुवंशियों के ये पुरोहित थे। योगवासिष्ठ का उपदेश राम के गुरु इन्हीं वसिष्ठ का दिया हुआ है। एक बार विश्वामित्र इनसे द्वेष कर चुपचाप इनका अनिष्ट करने गये; किन्तु जब उन्होंने अपने कानों सुना कि वसिष्ट अरुन्धती से एकान्त मे उन्हीं की प्रशंसा कर रहे है, तो उलटे पैर लौट गये। आज भी ये भगवान् की आज्ञा से सप्तर्षि-मंडल मे रहकर सारे संसार मे शान्ति का विस्तार करते है।

वसिष्ट के पास कपिला गौ थी। यह दिव्य कामधेनु थी। एक बार विश्वामित्र इनके आश्रम मे गये, तो इन्होने कामधेनु के द्वारा नाना प्रकार के व्यंजन प्रस्तुत कर इन्हे खिलाए, जिससे विश्वामित्र लुब्ध हो, उस गौ को घसीट कर ले गये।

इस गौ ने सैनिकों की सृष्टि कर विश्वामित्र की सेना से युद्ध किया, जिससे विश्वामित्र के सौ पुत्रो और सेना का वध हो गया। इस पराजय से विश्वामित्र बड़े खिन्न हो गए और सदैव के लिए वसिष्ट के वैरी हो गए।

विश्वामित्र ने तपस्या कर शंकर से अनेकों दिव्यास्त्र प्राप्त किए। ब्राह्मणत्व प्राप्त कर उन्होंने वसिष्ट के सौ पुत्रों को मार डाला; किन्तु ये महर्षि तो क्षमा की मूर्त्ति थे। राम को शिष्य रूप मे प्राप्त करने के लिए वह सूर्यवंश के पुरोहित बने। फिर राजा निमि से विवाद हो जाने पर पुरोहित-

कर्म छोड़ अयोध्या के समीप आश्रम बनाकर रहने लगे। वे ब्रह्मा के प्रथम मानस-पुत्र थे, किन्तु निमि के शाप से मित्रावरुण के पुत्र होकर फिर जन्म लिया।

वाल्मीकि, क्रौंच

जन्म से ये रत्नाकर नाम के ब्राह्मण थे, परन्तु शूद्रों के साथ रहते-रहते धर्म-कर्म सब भूलकर कुसङ्ग में पड़ व्याध और किरातों के समान आचरण करते थे। वे यात्रियों को लूटकर अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करते थे। एक बार उन्हें कई ऋषि मिले। रत्नाकर ने जब उन्हें लूटना चाहा, तो मुनियों ने इन्हे उपदेश दिया। उन मुनियो में नारद मुनि भी थे। उन्होंने कहा—'तू इस पापकर्म से कुटुम्ब पालता है। तेरा कुटुम्ब खाने का साथी है अथवा तुझे जो पाप का फल मिलेगा, उसका भी साथी है?' यह सुनकर उन्होंने घर जकार कुटुम्बियों से पूछा। उन्होंने कहा—'हमको पाप से क्या मतलब ? हम तो खाने के साथी हैं।' तब उनके स्वार्थ को देखकर रत्नाकर की आँखें खुलीं और घरबार छोड़ उनके शरणागत हो गए। नारदजी के कहने से वह राम का उलटा "मरा" जपने लगे, जिसमे इतने तल्लीन हो गए कि दीमकों ने मिट्टी से इनका शरीर ढँक दिया और बहुत वर्षों तक उसी वल्मीक (दीमक के घर) में इनका शरीर ढँका रहा। यह देखकर सप्तर्षिगण आये और उन्होंने इन्हें ब्रह्मर्षि वाल्मीकि कहकर उठाया। इस प्रकार इनका नया जन्म हुआ।

इन्होंने राम द्वारा त्यक्ता सीता को अपने आश्रम मे रखा और, वाल्मीकीय रामायण की रचना करके श्रीराम के पुत्र लव और कुश को पढ़ाया। योगवासिष्ठ का निर्माण भी इन्हीं महर्षि की कृपा का फल है।

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि कहे जाते हैं। तमसा नदी के किनारे एक दिन महर्षि वाल्मीकि स्नानादि से निवृत्त हो, वन के रमणीय दृश्य को देख रहे थे कि एक क्रौंची के करुण चीत्कार ने उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। उनके सामने क्रौंच का आहत शरीर खून मे लथ-

गथ पड़ा था। ऋषि ने जैसे ही दौड़कर उसके शरीर से वाण निकाला, वह मर गया। क्रौंची के करुणोत्पादक विलाप को सुनकर उनके मुँह से सहसा एक श्लोक निकल पड़ा और ये महाकवि हो गए।

विदुर, धर्मराज

महाराज विचित्रवीर्य के तीन पुत्र थे। सबसे बड़े धृतराष्ट्र, फिर पांडु और फिर विदुर। ये थे तो दासीपुत्र, परन्तु बड़े बुद्धिमान्, चतुर, नीतिशास्त्र के पंडित और शान्तिप्रिय थे। दुष्ट दुर्योधन ने जब पांडवों को लाख के घर मे जलाना चाहा, तब विदुर ने ही उनको संकेत से सूचना दी थी, जिससे सब पाडव बच गये। इन्होंने धृतराष्ट्र को जो उपदेश दिया, वह विदुर-नीति के नाम से प्रसिद्ध है।

मांडव्य ऋषि के शाप से धर्मराज ने ही दासीपुत्र के रूप में, धृतराष्ट्र तथा पांडु के भाई होकर, जन्म लिया था। इसी कारण मनुष्य जन्म लेकर वे भगवान् के परम भक्त और धर्मपरायण रहे। धृतराष्ट्र के मन्त्री होकर वे सदैव धृतराष्ट्र को पांडवों का पक्ष लेकर समझाया करते थे। किन्तु दुर्योधन पांडवों से जला करता था। भरी सभा में द्रौपदी का अपमान देख ये रुष्ट होकर राजभवन से चले गये थे। पांडवों के वनवास के तेरह वर्ष तक कुन्ती इन्हीं के यहाँ रही।

एक बार अभिमानी दुर्योधन ने अपना ऐश्वर्य दिखाने के लिए श्रीकृष्ण को निमंत्रित किया। गर्वप्रहारी भगवान् उसके कपट को जान गए। वे उसके यहाँ न जाकर परम भक्त विदुर के घर चले गये और विदुर की परम साध्वी स्त्री से भोजन माँगने लगे। उनके यहाँ सिवा साग-पात के कुछ नहीं था। उसी का भगवान् ने बड़े प्रेम से भोग लगाया। विदुर की स्त्री ने प्रेमावेश मे केले का गूदा तो अलग फेंक दिया और छिलके बड़े प्रेम से हाथ में दे दिये। भगवान् छिलकों को ही बड़ी रुचि से खा गए। फिर विदुर ने अपनी पत्नी को डाँटकर स्वयं केले का गूदा भगवान्

को खिलाया; किन्तु भगवान् ने कहा कि आपके केलों मे वह स्वाद नहीं, जो छिलकों मे था।

विदुर ने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र को आत्मकल्याण का मार्ग प्रदर्शित किया। उनके उपदेश से गांधारी और धृतराष्ट्र दोनों का मोह दूर हो गया और वे विरक्त हो वन मे चले गये। अन्त में विदुर भी वन मे जाकर योगियों की तरह रहने लगे।

विद्युन्माली

विद्युन्माली नाम का एक राक्षस शिवजी का परम भक्त था। शिवजी को उपासना से प्रसन्न कर उसने उनसे एक देदीप्यमान स्वर्ण-विमान प्राप्त कर लिया था। धीरे-धीरे वह अपने को अत्यन्त बलवान् और सूर्य के समान तेजस्वी समझने लगा।

गर्व से उन्मत्त हो, वह सूर्य स वहस कर उनके रथ के पीछे-पीछे अपना विमान ले जाया करता था। यहाँ तक कि रात्रि मे भी वह एक दिशा से दूसरी मे घूमकर प्रकाश किया करता था। जब रात्रि का अंधकार नष्ट होने लगा, तो सूर्य ने घबराकर अपनी तीव्र ज्वाला और प्रचंड ताप से उसके स्वर्ण-विमान को तहस-नहस कर पिघला दिया, जिससे विद्युन्माली पृथ्वी पर गिरकर मर गया।

रात्रि के पर्यायवाची शब्द—शर्वरी, निशा, रैन, रजनी, यामिनी, निशीथ, विभावरी, तमिस्रा, त्रियामा, रात।

विनता, अरुण, गरुड़, कद्रू

सत्ययुग मे दक्ष प्रजापति की दो पुत्रियाँ थी—कद्रू और विनता। उनका विवाह कश्यप ऋषि से हुआ था। ऋषि ने एक दिन दोनो पर प्रसन्न हो, उनसे वरदान माँगने को कहा। कद्रू ने एक हजार पुत्र माँगे, किन्तु विनता ने तेजस्वी और पराक्रमी दो ही पुत्र माँगे। यथासमय कद्रू ने एक हजार और विनता के दो अंडे हुए।

पाँच सौ वर्ष पूरे होने पर कद्रू के तो एक हजार नाग पुत्र निकल आये; किन्तु विनता के दो बच्चे अंडे से न निकले। वे आधे पुष्ट और आधे कच्चे थे। विनता ने अधीर हो अंडा को फोड़ डाला, तो उनमें से विकृतांग और अंगहीन अरुण निकला। उसने निकलकर माँ को शाप दिया कि तू ने लोभवश मेरे अधूरे शरीर को निकाल लिया, इससे पाँच सौ वर्षों तक तुझे दासी होकर रहना पड़ेगा।

शाप देकर बालक आकाश में उड़ गया और सूर्य भगवान् के तीव्र प्रकाश को कम करने के लिए सात घोड़ोंवाले रथ का सारथि बन गया। शापवश विनता को कद्रू की दासी बनना पड़ा। दूसरे अंडे से उत्पन्न पुत्र गरुड़ कहलाया। उसने माता की सेवा करने के लिए सर्पों से पूछा कि मैं कौन-सा काम करूँ, जिससे मेरी माता दासीत्व से मुक्त हो जाय।

सर्पों ने सोचकर कहा—'देवताओं के यहाँ से अमृत ले आओ।' गरुड़ पिता कश्यप मुनि के पास जाकर बोले—'मैं स्वर्ग जा रहा हूँ, पर मार्ग में खाऊँगा क्या?' पिता ने उन्हें एक हाथी और एक कच्छप दिखाया। ये दोनों पूर्व जन्म में बड़े क्रोधी ऋषि थे और एक दूसरे को शाप देकर पशु हो गए थे। गरुड़ ने एक पंजे से हाथी को और दूसरे से कच्छप को पकड़ा और एक डाली पर बैठे ही थे कि वह टूट गई।

गरुड़ ने झटपट उस शाखा को चोंच से पकड़ा, तो देखा कि उसमें बालखिल्य नामक ऋषि लटक रहे हैं। शाप-भय से गरुड़ ने उन ऋषियों की स्तुति की और मेरु पर्वत की चोटी पर बैठ, हाथी और कच्छप को खाया। तदनन्तर स्वर्ग जाकर अग्नि-ज्वालाओं और चक्र से सुरक्षित अमृत-पात्र को उठा सर्पों के पास चले।

मार्ग में विष्णु भगवान् और इन्द्र मिले। विष्णु भगवान् ने गरुड़ को अपना वाहन और इन्द्र ने उसे अपना मित्र बना लिया। तब गरुड ने कहा—'मैं यह पात्र सर्पों के लिए ले जा रहा हूँ। मैं जिस स्थान पर रखूँ, वहाँ से आप उठा लाइएगा।' गरुड़ ने पात्र लाकर कुश घास पर रख दिया। तब विनता दासीत्व से मुक्त हो गई और सर्पगण

अब विराध को ज्ञान हुआ और वह बोला—"मैंने आपको पहचाना नहीं। आपसे ही मेरा उद्धार होगा। आप मुझे गड्ढे मे गाड़ दीजिए। इसी से मुझे अक्षय लोक की प्राप्ति होगी। मै वास्तव में 'तुम्बरु' नाम का गन्धर्व हूँ। रंभा अप्सरा पर आसक्त होने के कारण मैं कुबेर की सेवा समय पर न कर सका। इस कारण कुबेर ने मुझे राक्षस होने का शाप दिया था, परन्तु क्षमा माँगने पर उन्होंने कहा था कि श्रीराम ही जब तुम्हारा वध करेंगे, तब तुम पहले स्वरूप को प्राप्त कर स्वर्गलोक में रह सकोगे।"

विरोचन

दैत्यराज विरोचन भक्त प्रह्लाद का पुत्र था। दैत्य होने पर भी धर्म में उसकी श्रद्धा थी। वह अपने गुरु शुक्राचार्य की बहुत सेवा किया करता था। उसके राज्य में दैत्य, दानव और असुर बड़े बलशाली हो गये थे। इन्द्र भी इससे डरने लगा था। वह जानता था कि धर्मात्मा विरोचन को वह कदापि हरा न सकेगा। अतएव चिन्तित होकर इन्द्र देवगुरु बृहस्पति के निकट गया और उनकी सम्मति से एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके विरोचन के निकट जा, उनके दान और उदारता की प्रशंसा करने लगा।

विरोचन ने उनसे कहा—'आपको जो कुछ माँगना हो, निर्भय होकर माँग लीजिए।' इन्द्र ने उन्हें वचन पूरा करने के लिए तत्पर कर कहा—'मुझे आपकी आयु चाहिए।'

धर्मात्मा विरोचन इस पर तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने प्रसन्न चित्त से हाथ मे तलवार ले, अपना सिर उतारकर ब्राह्मण-वेशधारी इन्द्र को दे दिया।

इस अपूर्व दान की प्रशंसा करता हुआ इन्द्र सफल-मनोरथ हो, स्वर्ग-लोक लौट गया और परमदानी विरोचन को परम धाम प्राप्त हो गया।

विरोचन के पुत्र का नाम बलि था, जो पिता के समान ही प्रसिद्ध महादानी था। वह जब अपने प्रताप से अमरावती को अधिकार में कर त्रिलोकी का अधिपति हो गया, तो भगवान् को अदिति के यहाँ पुत्र होकर वामन रूप में प्रकट होना पड़ा। राजा बलि के इन्हीं सौ पुत्रों में शिव-भक्त बाणासुर भी था।

विश्वकर्मा, संज्ञा, सुदर्शन चक्र, त्वष्टा

देवताओं का एक गण, जिसके अन्तर्गत आठ देवता हैं, वसु कहलाता है। महाभारत के अनुसार उन आठ देवताओं के नाम हैं—धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। इनमें प्रभास नामक वसु के पुत्र का नाम विश्वकर्मा था। ये प्रसिद्ध आचार्य अथवा देवता शिल्पशास्त्र के आविष्कर्त्ता और सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता माने जाते हैं। ये देवताओं के लिए विमान, प्रासाद आदि बनाया करते थे। आग्नेयास्त्र इन्हीं का बनाया हुआ माना जाता है। इन्हीं ने राक्षसों के लिए लंका बनाई थी। ये सर्वदर्शी, सर्वनियन्ता, विश्वज्ञ कहे गये हैं। सूर्य की पत्नी संज्ञा इन्हीं की कन्या थी।

जब सूर्य के प्रखर ताप को संज्ञा सहन न कर सकी, तो विश्वकर्मा ने सूर्य का आठवाँ अंश काट लिया और उससे सुदर्शन चक्र, त्रिशूल आदि बनाकर देवताओं में बाँट दिये। सृष्टि की रचना करने के कारण ये सर्वश्रेष्ठ शिल्पी, प्रजापति और "त्वष्टा" भी कहे जाते हैं। रामरावण-युद्ध के समय इन्हीं के पुत्र नील ने सेतुबंध बनाया था।

ये बड़े कलाकार और शिल्पी थे। इन्द्र के स्वर्ग की भव्य और महान् नगरी अमरावती, जहाँ इन्द्र निवास करते थे, इन्हीं ने बनाई थी। अमरावती सुमेरु पर्वत पर बसाई गई थी। इसके अन्दर नन्दन वन जैसे अनेक रमणीक स्थल थे। देवराज इन्द्र ने इनके पुत्र विश्वरूप की हत्या की थी।

नल-नील विश्वकर्मा के पुत्र होने के कारण शिल्पकार थे, इसी लिए उनके बनाये सेतुबंध की प्रशंसा रामचन्द्रजी ने की थी।

विश्वामित्र, वसिष्ठ

विश्वामित्र राजा गाधि के पुत्र थे। कुशिक वंश मे उत्पन्न होने के कारण 'कौशिक' कहलाते थे। वसिष्ठ मुनि के पास कामधेनु गौ देखकर उन्होंने उसे लेना चाहा; परन्तु वसिष्ठ मुनि ने उसे ब्राह्मणों की संपत्ति बतलाकर देने से अस्वीकार किया। इस पर विश्वामित्र क्रुद्ध होकर युद्ध करने को तैयार हो गये। परन्तु वसिष्ठ के ब्रह्मबल के सामने इनका क्षत्रियबल कुछ कर न सका। ये हार गये। अतएव इनके मन में यह इच्छा हुई कि मैं भी ब्राह्मणत्व प्राप्त कर ब्रह्मबल धारण करूँ। इन्होंने बहुत दिनों तक घोर तपस्या की। अन्त में ब्रह्मा ने इन्हें ब्राह्मण होने का वरदान दे दिया। किन्तु वसिष्ठ ने इनको ब्राह्मण नहीं माना, अतएव दोनों का विवाद चलता रहा।

एक बार दोनों में इस बात पर बड़ा विवाद हुआ कि तपस्या बड़ी या सत्संग। विवाद का निर्णय कराने के लिए दोनों शेषनागजी के पास पहुँचे। उन्होंने सब बातें सुनकर कहा—'मेरे सिर पर इतनी बड़ी पृथ्वी का भार है। तुममे से एक कोई क्षण भर के लिए इसे ले सके तो मै निर्णय कर दूँ'।

विश्वामित्र ने अपनी हजारों वर्ष की तपस्या के फलस्वरूप प्राप्त शक्ति के द्वारा क्षण भर के लिए पृथ्वी को धारण करना चाहा, पर न कर सके, किन्तु वसिष्ठ ने एक क्षण के सत्सग का फल लगाकर सारी पृथ्वी को धारण कर लिया। इस प्रकार बिना कुछ कहे सत्संग की महत्ता सिद्ध हो गई।

दोनों के बीच यह वैर-भाव बहुत दिनों तक रहा। एक बार क्रुद्ध होकर ये वसिष्ठ का अनिष्ट करने चले। घर पहुँचकर देखा कि वसिष्ठ अरुन्धती से इनके तपोबल की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। इस पर विश्वामित्र का मन साफ हो गया और तब से दोनों मे मित्रता हो गई।

एक बार इन्द्र की भेजी मेनका अप्सरा ने इनको प्रलुब्ध किया, जिससे शकुन्तला नाम की पुत्री हुई।

वीरभद्र, सती, शिव, अजमुख

वीरभद्र शिवजी के एक प्रसिद्ध गण थे, जो उनके पुत्र भी माने जाते हैं। शिवजी की प्रथम स्त्री सती, दक्ष प्रजापति की पुत्री थी। एक बार दक्ष ने एक यज्ञ किया और कुछ वैमनस्य हो जाने के कारण उसने अपने दामाद शिवजी को निमंत्रण नहीं दिया। पितृस्नेहवश, बिना बुलाये ही, सती अपने मायके यज्ञ देखने को चली गई। वहाँ सब देवताओं के बीच शिवजी का बलि-भाग न देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया और पिता को दुर्वचन कहती हुई योगाग्नि में जलकर भस्म हो गई।

यह समाचार सुनकर शिवजी दौड़ पड़े। उन्होंने क्रोध में अपनी जटा की एक लट उखाड़कर धरती पर पटक दी, जिससे वीरभद्र उत्पन्न हुए। इन वीरभद्र तथा अन्य गणों ने दक्ष का संपूर्ण यज्ञ विध्वंस कर डाला। वीरभद्र ने प्रजापति को बन्दी बना लिया और अन्य गणों ने भृगु ऋषि आदि मुनियों की दाढ़ी उखाड़कर बाँध लिया, क्योंकि वे भी दक्ष प्रजापति के साथ शिवजी पर हँसे थे। वीरभद्र ने शिवजी को गालियाँ देनेवाले शंकरद्रोही दक्ष प्रजापति के दाँत उखाड़ डाले, फिर उनकी छाती पर बैठकर उनका सिर काट डाला और अत्यन्त कुपित होकर उनके सिर को यज्ञ की अग्नि में डाल दिया।

ब्रह्मादि देवताओं के मनाने पर शिवजी ने बलि-पशु के एक बकरे का सिर लेकर दक्ष प्रजापति के धड़ पर लगा दिया, तभी से दक्ष "अजमुख" कहलाने लगे। भृगुजी ने भी बकरे की सी दाढ़ी और मूँछ बना दी और अन्य देवताओं के अंग-प्रत्यंग भी स्वस्थ कर दिये। दक्ष ने पुनर्जीवित हो शिवजी से क्षमायाचना की और उनकी स्तुति की।

वेदव्यास, शुकदेव, शृंगी, बादरायण, द्वैपायन

वेदव्यास के पिता का नाम पराशर ऋषि तथा माता का नाम सत्यवती था। इनका जन्म यमुना नदी के बीच के एक द्वीप में हुआ था। यमुना नदी का कृष्ण वर्ण होने से इनका नाम कृष्ण और द्वीप के

बीच पैदा होने के कारण द्वैपायन अर्थात् कृष्ण द्वैपायन पड़ा। बचपन से ही विरक्त होकर वे तप करने वन चले गये थे। उन्होंने बदरिकाश्रम मे जाकर तप करना प्रारंभ किया, अतएव वे "बादरायण" भी कहलाने लगे। इनका जन्म द्वापर युग मे हुआ था। इन्होंने ससार में घूम-फिर कर वेदों का खूब उपदेश दिया, अतएव लोग इन्हें वेदव्यास भी कहते हैं। इन्होंने महाभारत तो लिखा ही है, अठारह पुराण, अध्यात्म रामायण और अनेक सूत्र भी बनाये। घृताची अप्सरा को देख इन्हें शुकरूप एक पुत्र हुआ, जिसका नाम शुकदेव था, जिन्होंने शृंगी ऋषि के शाप से दु:खी परीक्षित को भागवत ज्ञान का उपदेश दिया था। भगवद्गीता जैसा अनुपम रत्न भी ससार को व्यासजी की कृपा से ही प्राप्त हुआ।

महर्षि वेदव्यास ने अपनी माता सत्यवती का वंशलोप-भय देख धृतराष्ट्र, पाडु और विदुर को उत्पन्न किया। वे त्रिकालदर्शी एवं इच्छागति थे। पाडव जब लाक्षाभवन से एकचक्रा नगरी मे आये, तो वेदव्यास ने ही उन्हे द्रौपदी के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाया था। युधिष्ठिर ने जब इन्द्रप्रस्थ मे राजसूय-यज्ञ किया, तब वेदव्यास भी पधारे थे। इन्होने अपना ग्रथ महाभारत गणेशजी से लिखवाया था।

वैतरणी, सती

वैतरणी नामक प्रसिद्ध पौराणिक नदी यम के द्वार पर मानी जाती है। कहते हे, यह नदी बहुत तेज बहती है। इसका जल बहुत ही गर्म और बदबूदार है और उसमे हड्डियाँ, रक्त, बाल आदि भरे हुए हैं। लोगों का विश्वास है, कि प्राणी को मरने के उपरान्त पहले यह नदी पार करनी पडती है, जिससे उसे बहुत कष्ट होता है, परन्तु यदि अपनी जीवितावस्था मे उसने गोदान किया हो, तो वह उसी गो की पूँछ पकड़कर सहज मे पार उतर जाता है।

जब दक्ष-यज्ञ मे सती अग्नि मे जल मरी थीं तब शिवजी, पागलों की तरह, विलाप कर उठे। उनके आँसुओ का प्रवाह देखकर देवता डर

गए और उन्होंने शनि से प्रार्थना की कि तुम इस प्रवाह को ग्रहण कर सोख लो। शनि ने सोखना चाहा, पर उसे सफलता नहीं मिली। अन्त में उसी धारा से यह वैतरणी नदी बनी। पापियों को यह नदी पार करने मे बहुत कष्ट होता है।

वैशम्पायन, याज्ञवल्क्य, गार्गी, तैत्तिरीय

महामुनि वैशम्पायन वेदों के आचार्य थे। याज्ञवल्क्य इनके शिष्य और इनकी बहिन के पुत्र थे। एक बार किसी सभा में अनुपस्थित होने पर उन्हें ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त लगा। वैशम्पायन ने कहा—'अभी तुम छोटे हो, मैं तुम्हारे बदले प्रायश्चित्त कर दूँ।' पर वे अपने हठ पर अड़े रहे। तब गुरु को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—'मेरे द्वारा पढ़ी यजुर्वेद की शाखा और समस्त ज्ञान उगल दो और मेरी शिष्यता छोड़ दो।' याज्ञवल्क्य ने उगल कर निश्चय किया कि अब मैं किसी को गुरु न बनाऊँगा।

ये सूर्य की आराधना करते थे। इनकी दो पत्नियाँ थीं—मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी ने ब्रह्मविद्या प्राप्त कर परम पद प्राप्त किया। भरद्वाज की कन्या कात्यायनी से इनके तीन पुत्र हुए। एक बार राजा जनक ने हजार सुवर्ण की गौएँ बनवाईं और कहा, जो कोई ब्रह्मनिष्ठ हो वह गौ को सजीव कर ले जाय। ये उन्हें सजीव बनाकर ले गये। इन्होंने परम विदुषी स्त्री गार्गी से जो शास्त्रार्थ किया था, वह बड़ा ही अपूर्व था।

वैशम्पायन और याज्ञवल्क्य दोनों मामा-भानजे बड़े ज्ञानी थे। राजा जनक के यज्ञ मे दोनों में कहा-सुनी हो गई थी। याज्ञवल्क्य ने जब वैशम्पायन के कहने से, जो कुछ उनसे पढ़ा था, वमन रूप मे उगल दिया, तो दूसरे सहपाठियों ने तीतर बनकर उसे चुग लिया। वह ब्रह्मविद्या तीतर से तैत्तिरीय उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

दु.ख-शोक से सन्तप्त उस वृद्ध का विलाप सुनकर रामचन्द्रजी को बड़ा दु.ख हुआ। उन्होंने ऋषियो को बुलाकर सम्मति ली, तो नारदजी ने कहा—'पहले सतयुग में ब्राह्मण ही तपस्वी हुआ करते थे। त्रेता युग मे ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों तप करते हैं। एक शूद्र दुर्बुद्धिवश इस समय आपके राज्य मे तप करने की अनधिकार चेष्टा कर रहा है। उसी के कारण यह बालमृत्यु हुई है। राजा को अधर्म और पाप रोकना चाहिए, अत. आप उसकी खोज कराइए।

यह सुनकर रामचन्द्रजी पुष्पक विमान पर सवार हो चारों दिशाओं मे ढूँढ़ने निकले। दक्षिण मे शैवल पर्वत के उत्तर की ओर एक विशाल सरोवर के तट पर एक तपस्वी कठोर तपस्या कर रहा था। श्रीराम के पूछने पर उसने कहा—'मै शूद्र योनि मे उत्पन्न हुआ हूँ और इसी शरीर से देवत्व प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरा नाम शंबूक है।' यह सुनते ही रामचन्द्रजी ने अपनी तलवार निकाल, उसका सिर उड़ा दिया। उधर ब्राह्मण का मृत पुत्र, जिसके शरीर को तैलपात्र मे डुबाकर सुरक्षित रख छोड़ा था, जी उठा। वृद्ध पिता प्रसन्न होकर घर लौट गया।

शुंभ, निशुंभ, दुर्गा, चामुंडा

शुंभ और निशुभ दोनो असुर भाई-भाई थे। इनका जन्म कश्यप ऋषि की स्त्री दनु से हुआ था। शुंभ और निशुभ ने देवताओं पर आक्रमण करके उन्हे जीत लिया था और स्वर्ग पर राज्य करना आरंभ कर दिया था। जब इन दोनो ने रक्तबीज से सुना कि दुर्गा ने महिषासुर को मार डाला, तब निशुंभ ने प्रतिज्ञा की कि मैं दुर्गा को मार डालूँगा।

उसी समय नर्मदा नदी से निकलकर चंड और मुंड नामक दो राक्षस भी इन दानवो से मिल गये। पहले शुंभ और निशुंभ ने दुर्गा से कहलाया कि तुम हममें से किसी से विवाह करो। दुर्गा ने कहला दिया कि रण मे जो मुझे जीतेगा, उसी से मैं विवाह करूँगी।

रण में दुर्गा ने पहले धूम्रलोचन, चंड, मुंड, रक्तबीज आदि असुरों को मारा, फिर शुंभ और निशुंभ को ललकारा। बहुत देर तक युद्ध होता रहा। दुर्गा देवी ने पहले निशुंभ को और फिर शुंभ को मार डाला। इस प्रकार उनका उत्पात शान्त हो गया और इन्द्र को फिर स्वर्ग का राज्य मिल गया।

शकटासुर

वसुदेव-देवकी के पुत्र कृष्ण मथुरा में, कंस के वन्दीगृह में, पैदा हुए थे; किन्तु वसुदेव ने उन्हें रातोरात ब्रजभूमि के अधिकारी नन्द बाबा के घर पहुँचा दिया था। जब ये साल भर के हुए तो वहीं गोकुल में नन्द-यशोदा के घर, एक दिन पालने में सो रहे थे। माता यशोदा और रोहिणी उनके जन्म-दिन के उत्सव में आये हुए अभ्यागतों का स्वागत कर रही थीं। थोड़ी देर मे श्रीकृष्ण की आँख खुली तो वे रोने लगे; किन्तु उनका रोना किसी को सुनाई न पड़ा। उन्होंने रोते-रोते जो पैर उछाले तो उनका पाँव लगते ही पलने के निकट रखा एक छकड़ा (शकट) उलट गया। उस छकड़े पर दूध-दही के जो बहुत से पात्र रखे हुए थे, सब फूटफाट गये। भारी छकड़े के उलटने की आवाज से सब स्त्रियाँ दौड़ी आइ, तो देखा कि पास ही पलने पर पड़े वर्ष भर के कृष्णजी पैर उछाल-उछालकर खेल रहे हैं। नन्द ने बालक को उठा लिया और शान्ति कराने के लिए दान-दक्षिणा देकर ब्राह्मणों से होम और पूजा-पाठ कराया।

तथ्य यह है कि दैत्य शकट में कृष्ण को मारने की नियत से जा छिपा था। पर भगवान् शिशु होने पर भी सर्वज्ञ थे, अतः सब समझ गए और जो दैत्य कृष्ण को मारने आया था, वह स्वयं ही कृष्ण के द्वारा मारा गया।

शकुनि

गांधारी का भाई, कौरवों का मामा, शकुनि सुबलराज का पुत्र था, इसी लिए वह सौबल कहलाता था। वह बहुत ही दुष्ट और पापाचारी था। दुर्योधन ने उसे अपना मंत्री बना रखा था। उसके परामर्श से द्यूतकला मे निपुण शकुनि ने पाडवों के साथ अनेक कपटपूर्ण व्यवहार किये थे और उन्हें धोखे से जीतकर अनेक कष्ट पहुँचाये थे।

कौरव कुल के नाश का मुख्य कारण यही शकुनि था। महाभारत युद्ध में वह अपने पुत्र सहित वीर सहदेव के हाथ से मारा गया था। आज भी शकुनि शब्द का प्रयोग ऐसे वृद्ध, दुष्ट व्यक्ति के लिए किया जाता है, जिसकी सम्मति से काम करने पर सर्वनाश हो जाने की संभावना रहती है।

शकुन्तला, दुष्यन्त

महाभारत के अनुसार विश्वामित्र एक बार बड़ी उग्र तपस्या कर रहे थे। इससे भयभीत होकर इन्द्र ने उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए स्वर्ग की एक परम सुन्दरी अप्सरा 'मेनका' को उनके पास वन मे भेजा। विश्वामित्र की तपस्या भंग हो गई और मेनका के एक पुत्री हुई। मेनका उस पुत्री को वन मे छोड़कर स्वर्ग चली गई।

वन मे "शकुन्त" पक्षियो ने उस नन्हीं बालिका की रक्षा वन्य-जन्तुओं से की। भाग्यवश महर्षि कण्व ने वन मे उस बालिका को देखा, तो उठाकर अपने आश्रम में ले गये और उसका पालन-पोषण अपनी पुत्री के समान किया।

बड़ी होने पर शकुन्तला ने एक बार हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त का आतिथ्य-सत्कार किया। राजा दुष्यन्त ने उस पर मुग्ध हो, उससे गन्धर्व विवाह कर लिया। पाणिग्रहण कर दुष्यन्त तो अपनी राजधानी लौट गये, किन्तु शकुन्तला को पुत्र उत्पन्न हुआ। कण्व ऋषि ने

गान्धर्व विवाह को शास्त्र-सम्मत समझा और उसके पुत्र को छः वर्ष तक अपने आश्रम में रखा। उसे सब प्रकार की शिक्षा दी और उसका नाम सर्वदमन रखा। वह इतना वीर था कि छः वर्ष की अवस्था में ही बाघ, सिंह और हाथियों को वृक्ष से बाँधकर खेला करता था।

कण्व ऋषि ने सर्वदमन को युवराज होने योग्य देखकर शकुन्तला को दुष्यन्त के निकट हस्तिनापुर भेजा। किन्तु दुष्यन्त ने कहा कि न तो यह मेरी स्त्री है, और न यह मेरा पुत्र है। स्त्रियाँ प्रायः झूठ बोलती हैं। मैं विश्वास कैसे करूँ?

इस पर शकुन्तला बहुत अपमानित और दुःखी हुई; तब आकाशवाणी हुई कि शकुन्तला की बात सवथा सत्य है। यह सुनकर राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला से कहा—यदि मैं तुम्हे ऐसे ही स्वीकार कर लेता, तो प्रजा कदापि विश्वास न करती कि सर्वदमन मेरा पुत्र है। फिर राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला को प्रधान रानी बनाया और सर्वदमन को युवराज के पद पर अभिषिक्त किया।

शरभंग

महर्षि शरभंग ने हजारों वर्ष तक दंडकारण्य में तपस्या की थी। श्री रामचन्द्रजी विराध राक्षस को मारकर इनके आश्रम मे गये थे। उसी समय उनकी तपस्या से प्रसन्न हो स्वयं इन्द्र उन्हे सत्कारपूर्वक ब्रह्मलोक तक पहुँचाने गए थे; किन्तु तब श्रीराम का आगमन इन्हें ज्ञात हो गया था अतएव उन्होंने कह दिया कि मैं बिना भगवान् के दर्शन किये न जाऊगा। वे मेरे ही आश्रम में आ रहे हैं। अतः इन्द्र लौट गये।

सीता और लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजी को देखकर मुनि शरभंग गद्गद हो गये। और उन्होंने उनका नाम लेते-लेते उनके सम्मुख ही नश्वर शरीर का त्याग कर सायुज्य मुक्ति प्राप्त करनी चाही। उन्होंने योगाग्नि से अपना शरीर जलाना चाहा। समस्त शरीर अग्नि से जल गया, वो अग्निराशि से शरभंग मुनि अग्नि के समान ही तेजस्वी कुमार होकर निकले। तब वे सीधे ब्रह्मलोक चले गये।

शबरी, मतंग

पंपा सरोवर के तट पर, मतंग मुनि के शिष्यों के आश्रम के पास, श्रमणी नाम की एक भीलनी रहती थी। उसे सब लोग (शबर जाति की होने से) शबरी कहते थे। मतंग मुनि की सेवा करते-करते उसे भगवद्-भक्ति प्राप्त हो गई थी। मतंग मुनि ने मृत्यु समय उसे आशीर्वाद दिया था कि तुझे इसी आश्रम मे श्रीराम के दर्शन होंगे। तब से प्रातःकाल से लेकर सन्ध्या तक वह श्रीराम की प्रतीक्षा करती रहती थी।

जब रामचन्द्रजी सीताजी के वियोग में उसके आश्रम मे पहुँचे, तो उसने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। सामने फल-फूल रख दिये। वह भक्तिवश चख चखकर मीठे-मीठे बेर रामचन्द्रजी को देने लगी। भगवान् ने उसकी भक्ति को देख बड़े ही प्रेम से उसके जूठे बेर खाए और फिर उसे नवधा भक्ति का उपदेश देकर मुक्ति प्रदान की।

शशबिन्दु

महाप्रतापी राजा शशबिन्दु बड़े धर्मात्मा, दानी तथा पराक्रमी थे। उनके एक लाख रानियाँ थीं। प्रत्येक से एक एक हजार पुत्र हुए थे। राजा शशबिन्दु ने एक अश्वमेध यज्ञ किया और दक्षिणा मे अपने सब पुत्र ब्राह्मणों को दे डाले। प्रत्येक राजपुत्र के साथ अपार धन, सैकड़ों रथ, हाथी, घोडे, गायें, भेड़ें और कन्याएँ थीं।

शशबिन्दु के महायज्ञ मे खाने-पीने की वस्तुओं का पर्वताकार ढेर लग गया था। उनके राज्यकाल मे सर्वत्र शान्ति थी। पुण्यात्मा शशबिन्दु ने अनेक वर्षो तक राज्य किया, फिर वे स्वर्ग चले गये।

शाण्डिल्य

कश्यप वंशी महर्षि देवल के पुत्र का नाम शाण्डिल्य था। ये रघुवंशी दिलीप के पुरोहित थे। विश्वामित्र जब त्रिशंकु से यज्ञ करा रहे थे, तब ये होता के रूप मे विद्यमान थे। भीष्म की शरशय्या के समय वे उन्हें देखने गये थे। इन्होंने भक्तिसूत्रों का प्रणयन किया था।

श्वान, सरमा

श्वान की कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। अयोध्यापति श्री रामचन्द्रजी के राज्य में सर्वत्र शान्ति और सुख का साम्राज्य था। जब कभी कोई दुःखी व्यक्ति दरबार में जाता, तो रामचन्द्रजी उसके दुःख को दूर कर दोषी को दंड देने का प्रयत्न करते थे। एक बार राजदरबार में एक कुत्ता रोता हुआ गया और कहने लगा कि स्वामी, न्याय कीजिए। आपके राज्य में तीर्थसिद्धि नामक ब्राह्मण ने मुझे बिना किसी अपराध के लकड़ी से मारा है।

रामचन्द्रजी ने तत्काल उस ब्राह्मण को बुलवाकर कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा—मैं भिक्षार्थ भ्रमण कर रहा था। यह मेरे मार्ग में आ बैठा। मैंने बहुत हटाया, पर यह नहीं हटा, तो इसे लकड़ी से मारना पड़ा।

भगवान् बड़े सोच-विचार में पड़ गए। एक ओर न्याय करना था, दूसरी ओर ब्राह्मण को दंड कैसे दें? वे तो शास्त्रानुसार अदंडनीय होते हैं। अतएव उन्होंने कुत्ते से ही पूछा—तुम उसे क्या दंड देना चाहते हो?

कुत्ते ने थोड़ी देर सोच-विचारकर कहा—महाराज, इस ब्राह्मण को किसी मठ का अधिपति बना दीजिए।

उपस्थित व्यक्ति कुत्ते के निर्णय पर मुस्कराने लगे कि यह दंड है या पुरस्कार। इस पर कुत्ते ने कहा—मैं भी पूर्व जन्म में एक मठपति था; किन्तु भक्ष्याभक्ष्य खाने से इस जन्म में कुत्ता बनना पड़ा। मठपति होने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

रामचन्द्रजी ने, कुत्ते के कहने से, ब्राह्मण को बड़े ही समारोह से कालिंजर का महन्त बना दिया।

देवताओं की कुतिया का नाम "सरमा" था। सरमा की सन्तान "सारमेय" कहलाती है। यमराज के चार आँखोंवाले कुत्तों की माता यही सरमा थी। पणि लोग जब इन्द्र की गौएँ चुराकर ले गये थे, तब सरमा उन्हें जाकर ढूँढ़ लाई थी।

एक बार जनमेजय के भाइयों ने सरमा के पुत्र को यज्ञ में खूब मारा-पीटा, जिससे सरमा रोती-चिल्लाती जनमेजय के पास जाकर बोली कि मेरे इस निरपराध पुत्र को तुम लोगों ने मारा-पीटा है, अतएव अकस्मात् तुम्हारे ऊपर कोई भयानक विपत्ति आयगी। इसी शाप के कारण जनमेजय को सर्पयज्ञ करना पड़ा था।

स्वर्गारोहण के समय चारों भाइयों और द्रौपदी के गिर पड़ने पर इन्द्र अपना रथ लेकर गया और युधिष्ठिर से उस पर बैठने को कहा। युधिष्ठिर ने कहा—'मेरे साथ-साथ एक कुत्ता भी यहाँ तक आया है। पहले आप इसे रथ पर बैठने दीजिए, तब मैं चढ़ूँगा।' इन्द्र ने उनका विरोध किया, तब युधिष्ठिर ने शरणागत को त्यागकर अकेले स्वर्ग जाना अस्वीकार कर दिया। तब कुत्ते से धर्मराज प्रकट हो गए। उनकी सत्य और धर्म पर श्रद्धा देखकर उन्होंने बहुत प्रशसा की और धर्मराज तथा इन्द्र के साथ रथ मे बैठकर युधिष्ठिर स्वर्ग गये।

शिखंडी, यक्ष

पाचाल देश के राजा द्रुपद के कोई पुत्र नहीं था, अतएव उसने सन्तान-प्राप्ति के लिए तपस्या करके शिवजी को प्रसन्न किया। महादेवजी ने उसे वरदान दिया कि तुम्हें एक ऐसा पुत्र होगा, जो पहले स्त्री होने पर भी पुरुष हो जायगा। यथासमय रानी के एक कन्या हुई, किन्तु राजा-रानी दोनों ने उसे पुत्र ही प्रसिद्ध किया और उसका नाम रखा शिखंडी। राजा ने उसे पुत्र के समान ही शिक्षा दी और बड़े होने पर दशार्णराज हिरण्यवर्मा की कन्या से उसका विवाह भी कर दिया। विवाह के उपरान्त उस कन्या ने भेद खोल दिया, तो उसके पिता को बड़ा क्रोध आया और उसने पाचाल देश पर चढ़ाई कर द्रुपद और शिखंडी को कैद कर वहाँ दूसरे राजा को बैठाने का प्रण किया।

इधर शिखंडी लज्जित होकर निर्जन वन मे तप करने लगी। वहाँ उसे "स्थूणाकर्ण" नामक यक्ष मिला। उसे प्रसन्न कर, कुछ काल के

लिए, उसने अपना स्त्रीत्व देकर उससे पुरुषत्व ले लिया। अपना शरीर बदलकर वह पांचाल नगर लौट आई। उसी समय दशार्णराज को दूत भेजकर बुलवाया, तो वह शिखंडी को पुरुष पाकर लौट गया। उसका सन्देह दूर हो गया।

उधर यक्षराज कुबेर, स्थूणाकर्ण को अनुपस्थित देख उससे सारा हाल ज्ञात होने पर उसे दंड दिया कि अब तुम स्त्री ही बने रहोगे। जब शिखंडी युद्ध मे मारा जायगा, तब तुम फिर पुरुष बन सकोगे।

शिखंडी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जब लौटकर स्थूणाकर्ण से मिला, तो उसने सारा वृत्तान्त सुना दिया। इससे प्रसन्न हो शिखंडी नगर लौट गया। वहाँ जाकर द्रोणाचार्य से उसने धनुर्विद्या सीखी।

भीष्म को यह रहस्य मालूम था, अतएव उन्होंने प्रण किया था कि यदि शिखंडी हाथ में धनुष लेकर मेरे सामने आयगा तो मैं उस पर, स्त्री होने के कारण, शस्त्र न छोड़ूँगा। पांडवों ने इसी प्रतिज्ञा का लाभ उठाकर भीष्म को धराशायी किया।

पूर्व जन्म मे शिखंडी काशी-नरेश की पुत्री "अंबा" था। शिवजी के वरदान से शिखंडी के रूप में पुरुष-शरीर धारण कर इसने भीष्म पितामह से बदला लेने के लिए जन्म लिया था।

शिवि, उशीनर, इन्द्र

राजा शिवि काशी-नरेश उशीनर के पुत्र थे। वे अपने समय के बड़े ही धर्मात्मा और दानी राजा थे। एक बार उन्होंने सौ यज्ञ करने प्रारंभ किये। ९९ यज्ञों में उन्हें सफल देख, अपना राजसिंहासन छिन जाने के भय से, इन्द्र ने इनके यज्ञ में बाधा डालनी चाही। उसने अग्नि को बनाया कबूतर और स्वयं बाज बनकर कबूतर का पीछा करने लगा। भागते-भागते कबूतर शिवि की गोद में जा गिरा।

बाजरूपी इन्द्र ने शिवि के निकट जाकर अपना शिकार माँगा। राजा शिवि बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने कहा—'शरणागत की रक्षा करना

मेरा धर्म है।' किन्तु जब बाज ने कहा कि कबूतर मेरा आहार है, तो राजा ने कबूतर के बदले अपने शरीर का उतना ही मास देना स्वीकार किया।



शिवि अपना मास काट-काटकर तराजू के पलड़े पर रखने लगे

एक तराजू के पलडे पर कबूतर बैठा तो वह पलड़ा भारी होता गया और दूसरे पलडे पर राजा अपना मास काट-काटकर रखने लगा। जब उनके शरीर से कबूतर के बराबर मास न निकला, तो वे स्वयं तराजू पर बैठ गये। उनकी दानवीरता को देखकर स्वयं भगवान् प्रकट हो गए और उन्हें परमधाम भेज दिया।

एक बार एक ब्राह्मण राजा शिवि के पास गया और शिवि से बोला कि यदि आप अपने पुत्र राजकुमार वृहद्गर्भ को मारकर, उसका मांस पकाकर मुझे खिलायें तो मैं ठहरूँ। राजा ने अतिथि को निराश करना पाप समझा और पुत्र को मारकर उसका मांस पकाया और ब्राह्मण को खोजने लगे। तभी एक अनुचर से ज्ञात हुआ कि वह ब्राह्मण क्रुद्ध होकर नगर में स्थान-स्थान पर आग लगा रहा है।

इस पर शिवि को क्रोध नहीं आया। वे भोजन लेकर नगर में गये और ब्राह्मण को खोजकर उससे खाने के लिए प्रार्थना करने लगे। ब्राह्मण ने शिवि से कहा—'पहले तुम खाओ।' शिवि शान्त चित्त से, अतिथि की आज्ञा पालन करने के लिए, अपने पुत्र के मांस को खाने जा ही रहे थे कि ब्राह्मण ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—'निस्सन्देह, तुमने क्रोध को जीत लिया है। तुम ब्राह्मणों के लिए सब कुछ कर सकते हो।' तब शिवि ने देखा कि उनका वही पुत्र वृहद्गर्भ वस्त्राभूषण से सुसज्जित सामने खड़ा है। राजा को प्रसन्न देख ब्राह्मण अन्तर्धान हो गया।

शिशुपाल, रुक्मिणी, कृष्ण

शिशुपाल चेदि देश का राजा और कृष्ण की बुआ का पुत्र होने से भाई था। जब वह पैदा हुआ, तो गधे की तरह रेंकता था, उसके तीन आँखें और चार हाथ थे। यह देखकर इसकी माता घबरा गई। तब आकाशवाणी हुई कि जिसकी गोद में जाने से इस बालक के दो हाथ और एक आँख लुप्त हो जाय, उसी के हाथ से यह मारा जायगा। तुम लोग शिशु का पालन करो।

वह बालक शिशुपाल कहलाने लगा। माता सभी की गोद में अपने बालक शिशुपाल को देने लगी। जब कृष्ण ने उसे गोद में लिया, तो उसकी दो आँखें और दो हाथ हो गए। यह देखकर बुआ ने कहा—'देखो, यह तुम्हारा फुफेरा भाई है। इसे कभी मारना मत।' कृष्ण ने

चाहा; किन्तु ये बड़े संयमी थे। इनका अन्तःकरण सर्वथा विशुद्ध और निर्विकार रहता था। ये जन्म से ही परम विरक्त, नंगे घूमते रहते थे।

जब राजा परीक्षित ने सुना कि सात दिन के उपरात तक्षक सर्प के काटने से उनकी मृत्यु हो जायगी, तो वे अपने ज्येष्ठ पुत्र जनमेजय को राजतिलक देकर गगातट पर जा, आराधना करने लगे। उसी समय दैव-योग से शुकदेवजी भी वहाँ पहुँच गये। उन्हे देखते ही समस्त ऋषिगण उठ खड़े हुए। परीक्षित ने भी उनका पूजन कर उन्हें उच्चासन पर बैठाया। परीक्षित के पूछने पर शुकदेवजी ने उन्हे मोक्ष धर्म का उपदेश देकर सात दिन मे पूरे श्रीमद्भागवत का उपदेश दिया।

शुक्राचार्य, संजीविनी विद्या, कच

ब्रह्मा के मानस पुत्र भृगु मुनि थे। उनके पुत्र का नाम "कवि" हुआ। कवि के पुत्र का नाम शुक्राचार्य था। ये असुरों के गुरु थे। इनकी शुक्र-नीति बहुत प्रसिद्ध है। इन्हीं के प्रभाव से प्रह्लाद, विरोचन, बलि आदि भगवद्भक्त बने। इनके पास मृतसंजीविनी विद्या थी, जो उन्होंने देवताओं के विद्वान् गुरु बृहस्पति के पुत्र कच को सिखलाई थी।

इनकीपुत्री का नाम देवयानी था। उसका विवाह राजा ययाति से हुआ था। पहले शुक्राचार्य सुरा पीते थे, किन्तु उसी के कारण उन्हें कच को सजीविनी विद्या सिखानी पड़ी थी, अतएव तब से उन्होंने मर्यादा बाँध दी कि कोई ब्राह्मण सुरापान न करे, अन्यथा उसका समस्त धर्म नष्ट हो जायगा।

दैत्यगुरु ने बलि को मना किया था कि वामन को भूमि-दान का वचन मत दो, किन्तु दानवीर बलि ने वचन दे दिया। इससे तीन पग भूमि नापने मे भगवान् के आगे उसे अपना शरीर समर्पित करना पड़ा। शुक्राचार्य जिस समय मना कर रहे थे, उस समय उनकी एक आँख मे सींक चुभ गई, जिससे ये 'काने' हो गए।

शुक्र के पर्यायवाची शब्द—शुचि, सित, भृगुसुत, भार्गव, उशना।

शुनःशेफ, हरिश्चन्द्र, वरुण

राजा हरिश्चन्द्र निस्सन्तान थे। पुत्र-प्राप्ति के लिए उन्होंने जल के अधिपति, दस्युओं के नाशक, देवताओं के रक्षक वरुण देवता की उपासना की। उन्होंने शपथ खाई कि यदि पुत्र प्राप्त हो जायगा, तो उसी पुत्र को बलि यज्ञ में दे देंगे।

राजा को पुत्र प्राप्त हुआ। उन्होंने उसका नाम रखा "रोहित"। जब वह कुछ बड़ा हुआ, तो राजा ने मोहवश उस यज्ञ को टालना चाहा। बड़े होने पर रोहित को जब ज्ञात हुआ कि वरुण के यज्ञ में उसे बलिपशु बनना पड़ेगा, तब वह जंगल मे भाग गया। वहाँ उसे इन्द्र घर लौटने को बराबर मना करते रहे।

अन्त में राजा ने अजीगर्त नामक लोभी ब्राह्मण के मझले पुत्र शुनःशेफ को, एक सौ गौएँ देकर मोल लिया। बलि के लिए शुनःशेफ जब यूप मे बाँधा गया, तब वह अपने छुटकारे के लिए प्रजापति, अग्नि, सविता आदि कई देवताओं की स्तुति करने लगा। अन्त में वरुण देवता की स्तुति से उसका उद्धार हो गया और विश्वामित्र—जिन्होंने दयावश उसे स्तुति-पाठ करना सिखाया था—दत्तक पुत्र की तरह उसे अपनाकर अपने आश्रम में ले गये। फिर विश्वामित्र ने शुनःशेफ का नाम देवताओं की कृपा से प्राप्त होने के कारण "देवरात" रख दिया।

शूर्पणखा, खर-दूषण, मकराक्ष

वनवास के समय जब श्री रामचन्द्रजी पंचवटी में थे, एक दिन :-दूषण-रावणादि राक्षसों की बहिन शूर्पणखा गई और रामचन्द्रजी देखते ही मोहित हो गई। उसने अपना परिचय देकर रामचन्द्रजी कहा कि मैं तुम्हारी स्त्री और भाई को खा जाऊँगी तुम मेरे पति ना स्वीकार करो।

रामचन्द्रजी ने हँसी मे कहा—'मेरी पत्नी तो यहाँ है। तुम मेरे ई लक्ष्मण की पत्नी बन जाओ।' किन्तु लक्ष्मण से भी निराश होने

राजा रोमपाद के शासन में प्रजा बहुत दुःखी रहती थी। उसके कुप्रबंध के कारण वहाँ अकाल पड़ गया। वृष्टि बन्द हो गई। राजा ने घबराकर वेद के ज्ञाता बड़े विद्वानों को बुलाया और विनय की कि आप ऐसा कोई उपाय बतलाइए जिससे वृष्टि हो। पण्डितों ने विचारकर कहा कि यदि तुम शृंगी ऋृषि को बुलाओ और वेद-विधि से अपनी पुत्री शान्ता का विवाह उनसे कर दो, तो वृष्टि होने लगेगी।

राजा ने मंत्रियों से यह बात कही। उन्होंने सोचा कि शृंगी ऋृषि जन्म से ब्रह्मचारी हैं। वे कैसे विवाह करना स्वीकार करेंगे? तब उन्होंने कुछ वेश्याओं को उपाय करने के लिए भेजा। वे ऋृषि के आश्रम मे जाकर नाच-रंग करने लगीं। उस समय शृंगी ऋृषि के पिता आश्रम मे नहीं थे, अतएव शृंगी ने पिता के भय से झटपट वेश्याओं को बिदा कर दिया; किन्तु उनका मन लुब्ध हो ही गया। अन्त मे वे वाराङ्गनाएँ उन्हे वश मे करके अगदेश मे ले आई और राजा ने शान्ता का विवाह उनसे कर दिया। यह विवाह हो जाने पर मूसलधार वृष्टि होने लगी।

शेषनाग, वासुकि, कद्रू

एक बार सर्पो की माता कद्रू ने, एक विवाद के कारण, अपने एक हजार नाग पुत्रों को आज्ञा दी कि तुम लोग शीघ्र ही काले बाल बनकर उच्चैःश्रवा नामक घोड़े की पूँछ ढक लो, नहीं तो मुझे अपनी सौत विनत की दासी बनना पड़ेगा। बहुत से सर्पो ने उसकी आज्ञा न मानी, तो कद्रू ने उन्हे शाप दे दिया कि जाओ, अग्नि तुम लोगों को जनमेजय के सर्पयज्ञ मे जलाकर भस्म कर देगी।

जिन सर्पो को दैवयोग से शाप मिला था, उनमे शेष नाग भी थे। उन्होंने कद्रू और अन्य सर्पो को छोड़कर कठिन तपस्या करनी प्रारंभ की। अन्त मे ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उनसे तप का कारण पूछा और कहा कि वर माँगो। शेष नाग ने कहा—'मेरे सब भाई मूर्ख हैं। मैं उनके साथ रहना नहीं चाहता। वे लोग एक दूसरे से डाह करते है, इसलिए मैं

तपस्या कर रहा हूँ। मैं यही वर माँगता हूँ कि मेरी बुद्धि धर्म, तपस्या और शान्ति में संलग्न रहे।' ब्रह्मा ने कहा—'यह पृथ्वी हिलती-डोलती रहती है। तुम इसे अपने मस्तक पर धारण करो जिससे यह अचल हो जाय।' ब्रह्मा की आज्ञा से शेष नाग भू-विवर में प्रवेश कर नीचे चले गये। उन्होंने पृथ्वी को उठाकर सिर पर रख लिया।

वासुकि नाग को भी माता के शाप से बड़ी चिन्ता हुई। उसने भी तप कर ब्रह्मा को प्रसन्न किया, तो ब्रह्मा ने कहा कि तुम अपनी बहन का विवाह यायावर वंश के जरत्कारु मुनि से कर देना। वे तुमसे स्वयं पत्नी की याचना करेंगे। तब उसके आस्तीक नाम का पुत्र होगा। वे सर्प-यज्ञ बंद कराके धार्मिक सर्पों का छुटकारा करेंगे।' इसके थोड़े दिन बाद समुद्र-मंथन हुआ, तो वासुकि नाग की मथनेवाली रस्सी (नेती) बनाई गई।

बलदेव, पतंजलि, शेषनाग के अवतार कहे जाते हैं। शेषनाग जब सिर हिलाते हैं, तो भूकम्प आता है।

सर्प के पर्यायवाची शब्द—अहि, फणि, व्याल, उरग, पन्नग, नाग, विषधर, भुजग।

संजय, धृतराष्ट्र

विद्वान् गावलगण नामक सूत के पुत्र संजय थे। ये श्रीकृष्ण के परम भक्त तथा अर्जुन के लड़कपन के मित्र थे। अर्जुन और श्रीकृष्ण के अन्तःपुर में आने-जाने की इन्हें आज्ञा थी। महाभारत-युद्ध आरंभ होने से पूर्व त्रिकालदर्शी वेदव्यासजी संजय को दिव्य दृष्टि देकर सर्वज्ञ बना गए थे। इसी से संजय को मन में चिन्तन की हुई प्रत्यक्ष-परोक्ष बातें, हस्तिनापुर में बैठे-बैठे ही ज्ञात हो जाती थीं। कौरवों के पिता अंधे धृतराष्ट्र ने युद्ध की खबरें और श्रीमद्भगवद्गीता इन्हीं के मुख से सुनी थी। गीता भीष्मपर्व के २५ से ४२वें अध्याय तक है।

संजय उन थोड़े से महानुभावों में से थे, जो भगवान् श्रीकृष्ण के यथार्थ स्वरूप को पहचानते थे। अर्जुन को दिखाए गए, भगवान् के

विराट् चतुर्भुज स्वरूप को भी सजय ने धृतराष्ट्र के निकट बैठे-बैठे देख लिया। उन्होंने धृतराष्ट्र को श्रीकृष्ण के अनेक नामों का अर्थ समझाया था। उनकी श्रीकृष्णभक्ति और श्रीकृष्ण-तत्त्व-विज्ञान प्रसिद्ध है। वे बड़े सत्यवादी, बुद्धिमान् और निर्भीक थे।

द्रौपदी का जब भरी सभा में अपमान हुआ, तब उन्होंने ही निर्भीक होकर दुर्योधन के अनुचित व्यवहार की कटु आलोचना की थी। उन्होंने पाडवो को युद्ध से विरत होने की सम्मति दी थी। धृतराष्ट्र और गान्धारी जब वन को जाने लगे, तब ये भी साथ हो लिये। वहाँ उन्होंने अपने स्वामी धृतराष्ट्र की सब प्रकार से सेवा की।

सत्यवती-योजनगंधा-मत्स्यगंधा, शान्तनु, वेदव्यास

सत्यवती एक धीवर की पुत्री थी। वह यात्रियों को अपनी नाव में बैठाकर नदी के इस पार से उस पार तक पहुँचाया करती थी। वह मत्स्यगंधा नाम से प्रसिद्ध थी, क्योंकि उसके शरीर से मछली की गंध आया करती थी।

एक दिन सत्यवती ने महामुनि पराशर को नदी पार पहुँचाया। इससे मुनि ने वरदान दिया—'अब तुम्हारी देह से मछली की गंध दूर हो जायगी। अब एक योजन से तुम्हारे शरीर मे से कमल के फूलों की सुगंध आयगी और तुम योजनगंधा कहलाओगी। तुम्हें एक महाज्ञानी विद्वान् यशस्वी पुत्र होगा।'

योजनगधा सत्यवती के कौमार्यावस्था मे, पराशर मुनि के वरदान से, वेदव्यास नामक एक पुत्र हुआ, जिन्होने भागवत नामक ग्रंथ बनाया। इन्हीं वेदव्यास के परम ज्ञानी पुत्र शुकदेव हुए जिन्होंने राजा परीक्षित को भागवत की कथा सुनाई थी।

वेदव्यास के जन्म के उपरान्त एक दिन हस्तिनापुर के राजा शान्तनु मृगया खेलते खेलते कमल की सुगन्धि से खिंचकर सत्यवती की झोपड़ी मे जा पहुँचे। उन्होने सत्यवती पर मुग्ध होकर विवाह-प्रस्ताव रखा।

सत्यवती के पिता ने कहा—'यदि आप प्रतिज्ञा करें कि सत्यवती का बेटा ही राजगद्दी का अधिकारी होगा, तो मैं अपनी लड़की दूँ।' राजा के बड़े लड़के का नाम देवव्रत था। उन्होंने पिता को असमंजस में देखकर प्रण किया कि मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा और राजगद्दी पर भी न बैठूंगा। ऐसी भीषण प्रतिज्ञा करने से देवव्रत भीष्म नाम से प्रसिद्ध हो गये। तब राजा शान्तनु का विवाह सत्यवती से हो गया।

सत्यवती के दो पुत्र हुए—चित्रागद और विचित्रवीर्य। जब दोनों निःसन्तान मर गये, तो सत्यवती को वंश-लोप का भय हुआ। उसने अपनी चिन्ता अपने पुत्र वेदव्यास से कही। वेदव्यास ने चित्रांगद और विचित्रवीर्य की पत्नी अंबिका और अंबालिका को बुलाया। नियोग के समय अंबिका ने आँखें बन्द कर लीं, तो उसके धृतराष्ट्र नामक अंधे पुत्र हुए। अंबालिका ने सारे शरीर में पीली मिट्टी पोत ली, तो पांडु रोग से पीड़ित पांडु उत्पन्न हुए। एक दासी के गर्भ से वेदव्यास के विदुर उत्पन्न हुए। इसी लिए विदुर दासीपुत्र कहलाते थे। इस प्रकार धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर तीनों पौत्रों को पाकर सत्यवती बड़ी प्रसन्न हुई।

भीष्म ने तीनों भतीजों की शिक्षा मे विशेष ध्यान दिया। धृतराष्ट्र सबसे अधिक बलवान् थे। पाडु श्रेष्ठ धनुर्धर थे और विदुर सबसे अधिक धर्मात्मा थे। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे, अतः पांडु को हस्तिनापुर का राज्य मिला। पांडु का विवाह मद्र देश के राजा की बहिन माद्री और कुन्तीभोज की दत्तक पुत्री कुन्ती से हुआ था। कुन्ती (पृथा) यदुवंशी शूरसेन की पुत्री और कृष्णजी के पिता वसुदेव की बहिन थी। शूरसेन ने अपनी [illegible]आ के लड़के को निस्सन्तान देखकर, उसे अपनी पृथा नाम की पुत्री दी थी।

राजा पांडु एक बार वन में घूम रहे थे कि उन्होंने एक मृग और [illegible]गी को प्रेम करते देखा। पाडु ने बाण मारा तो दोनों घायल होकर गिर [illegible]ड़े। तब मृग ने शाप दिया कि मैं किन्दम नाम का तपस्वी मुनि हूँ। [illegible] मृग का रूप धारण कर अपनी मृगी के साथ विहार कर रहा था। उस [illegible]मय तुमने मुझे मारा, अतएव जब तुम अपनी पत्नी के साथ सहवास

जन्म लो, क्योंकि तुम्हें बड़ा गर्व हो गया है।' इस पर जय-विजय द्वारपालों को तीन बार राक्षस होना पड़ा और तीनों बार भगवान् को अवतार लेकर अपने पार्षदों का उद्धार करना पड़ा।

एक बार सनकादि ने ब्रह्मा से एक प्रश्न पूछा किन्तु ब्रह्मा उत्तर न दे सके, तो सनकादि को अपने ज्ञान का बड़ा गर्व हो गया। इस पर ब्रह्मा ने भक्तिपूर्वक भगवान् का ध्यान किया। तब भगवान् ने "हंस" का रूप धारण किया और सनकादिक को पराविद्या का सारतत्त्व समझाकर कहा कि उनका प्रश्न ही बड़ा अज्ञानपूर्ण था। इस पर सनकादिक का ज्ञानगर्व दूर हो गया। तब से "हंस" हंसावतार ब्रह्म, परमात्मा तथा शुद्ध आत्मा का प्रतीक हो गया।

सप्तर्षि, अरुंधती

विभिन्न मन्वन्तरों मे धर्म और मर्यादा की रक्षा के लिए जो सात ऋषि आविर्भूत हुए, उन्हे सप्तर्षि कहते हैं। वे आज भी नक्षत्रों के रूप में ध्रुव की परिक्रमा करते हैं। उनके नाम हैं मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ।

१—**मरीचि** ब्रह्मा के मानस पुत्रों मे से एक थे। उनकी अनेक पत्नियाँ थीं और सैकड़ों पुत्र थे। कश्यप और मनु इन्हीं के पुत्र थे। इन्होंने भृगु को दंडनीति की शिक्षा दी। ये सुमेरु पर्वत के शिखर पर निवास करते थे। महाभारत में इन्हे "चित्र शिखंडी" कहा गया है। वेदों में भी इनकी चर्चा है। ये प्रधान प्रजापति थे।

२—**अत्रि** ये भी ब्रह्मा के मानस पुत्र तथा प्रजापति थे। इनकी पत्नी अनसूया कपिल मुनि की बहिन तथा कर्दम ऋषि की पुत्री थी। सृष्टि करने की आज्ञा मिलने पर इस दंपति ने घोर तप किया और ब्रह्मा, विष्णु, महेश को पुत्र-रूप मे माँगा, जिससे चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा का क्रमशः जन्म हुआ।

३—**अंगिरस** महर्षि अंगिरा भी ब्रह्मा के मानस पुत्र और प्रजापति थे। ये अथर्ववेद के प्रादुर्भावकर्ता कहे जाते है, इसी लिए इनका

"अथर्वा" नाम है। तप के कारण इनका तेज अग्नि से भी अधिक बढ़ गया। उस समय "अग्निदेव" भी जल में रहकर तपस्या कर रहे थे। तब अग्निदेव इनके प्रभाव को देखकर इनके पैरों पर गिर पड़े और बोले—'मेरी कीर्त्ति नष्ट हो रही है। आप प्रथम अग्नि हैं। मैं द्वितीय अग्नि हो गया हूँ।' अंगिरा मुनि ने कहा—'तुम देवताओं को भोजन पहुँचाओ और स्वर्ग चाहनेवालों को मार्ग बताओ। मैं तुम्हारे पुत्र-रूप में बृहस्पति के नाम से प्रसिद्ध हो जाऊँगा।'

अंगिरा मुनि देवर्षि नारद के साथ विचरते हैं। चित्रकेतु (वृत्रासुर) को इन्होंने ही पुत्र दान दिया था। ये ज्ञान, भक्ति और कर्म के विस्तार द्वारा सुप्त जीवों को जागृत कर भगवान् की ओर अग्रसर करते हैं।

४—**पुलस्त्य** ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। इनका स्वभाव बड़ा दयालु था। रावण का पिता विश्रवा इनका पुत्र था। एक बार जब कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन ने इनके पौत्र रावण को बन्दी कर लिया, तो इन्होंने उससे अनुरोध किया कि बेचारे को मुक्त कर दो। इन्हीं की कृपा से दशानन रावण मुक्त हो गया। सन्ध्या, प्रतीची और प्रीति आदि इनकी कई पत्नियाँ थीं। दत्तोलि नाम का पुत्र अगस्त्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुबेर, रावण आदि इन्हीं के पौत्र थे। ऋषभदेव के पुत्र भरत ने इन्हीं के आश्रम में आकर तप किया था।

५—**पुलह** भी ब्रह्मा के मानस पुत्र और षोडश प्रजापतियों में से एक थे। इन्होंने दक्ष और कर्दम की कन्याओं से विवाह कर सृष्टि की वृद्धि की। महर्षि सनन्दन की शरण ग्रहण कर ज्ञान प्राप्त किया और गौतम को शिष्य बनाया।

६—**क्रतु** भी ब्रह्मा के मानस पुत्र और षोडश प्रजापतियों में से एक हैं। इन्होंने कर्दम और दक्ष की कन्याओं से विवाह किया था। इनके द्वारा साठ हजार बालखिल्य नाम के पुत्र उत्पन्न हुए।

७—**वशिष्ठ** कहीं तो मानस पुत्र, कहीं आग्नेय पुत्र और कहीं मित्रावरुण के पुत्र कहे गये हैं। इनकी पत्नी का नाम अरुन्धती था,

जो पति के समीप ही नक्षत्र रूप में हैं। सदा लोकहित में रत ये ऋषि अपने तपोबल से कहीं वर्षा कराते थे, तो कहीं अकाल-मृत्यु से जीवों की रक्षा करते थे। इन्होंने इक्ष्वाकु, निमि आदि से अनेक यज्ञ करवाये। इन्होंने ही भगीरथ को पृथ्वी पर गंगा लाने का मंत्र बतलाया।

इनके पास "नन्दिनी" गौ थी। राजा दिलीप ने इसी गौ की सेवा कर रघु जैसा पुत्र प्राप्त किया था। योगवाशिष्ठ इन्हीं का उपदेश है। विश्वामित्र से गौ के कारण ही इनका वैर हो गया था। उन्होंने क्रोध कर इनके सौ पुत्रों का संहार कर डाला था।

एक बार वशिष्ठजी ने सत्संग के बल से शेषनाग से पृथ्वी लेकर अपने सिर पर धारण कर ली थी। महाभारत के अनुसार ये सातों सप्तर्षि कहलाते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप और अत्रि मुनियों की गणना स ों मे होती है।

समुद्र-मंथन, मन्दराचल, वासुकि, चौदह रत्न, अमृत, मोहिनी, इन्द्र

एक बार दुर्वासा मुनि ने इन्द्र को एक माला भेंट की। इन्द्र ने वह माला अपने वाहन ऐरावत हाथी पर रख दी। ऐरावत ने उसे सूँड़ से उठा कर नीचे गिरा दिया और पैरों से कुचल डाला। दुर्वासा ने अपने प्रसाद का अपमान देखा, तो इन्द्र को शाप दे दिया कि तुम्हारी श्री नष्ट हो जाय।

इसके उपरान्त एक दिन इन्द्र सिंहासन पर बैठा था कि इन्द्र-सभा मे देवगुरु आये; किन्तु राजमद मे चूर इन्द्र ने उनका उचित सम्मान नहीं किया, जिससे वह कुपित होकर अन्तर्धान हो गये। नारदजी ने इन्द्र से कहा कि गुरु की अवहेलना से राज्यलक्ष्मी चली जाती है। अब तुम आपत्तियों के लिए तैयार हो जाओ।

शीघ्र ही इन्द्र का अपयश चारों ओर फैल गया। पातालनिवासी राजा बलि ने सुअवसर देख, अमरावती पर आक्रमण कर इन्द्र का राज्य छीन लिया। दैत्यों के भय से ऐरावत, उच्चैःश्रवा, लक्ष्मी आदि रत्न समुद्र

्द पड़े। तब इन्द्रासन प्राप्त कर देवताओं पर राज्य करने के लिए ा बलि सौ अश्वमेध करने का विचार करने लगा।

इन्द्र दुःखी होकर ब्रह्मा के पास गया। ब्रह्मा के कहने से समस्त ताओं ने विष्णु भगवान् की स्तुति की, तो भगवान् ने कहा कि दैत्यों संधि कर समुद्र-मंथन करो और समुद्र से रत्नों का उद्धार करो।

देवताओं ने इन्द्र से संधि कर मंथन की तैयारियाँ प्रारंभ कर दीं। वेष्णु भगवान् ने मथानी के लिए मन्दराचल पर्वत को उखाड़ कर गरुड़ की पीठ पर रख दिया। पर्वत को समुद्र में डालकर वासुकि नाग को बुलाया और अमृत का लोभ देकर मथानी की रस्सी (नेती) बनने के लिए उसे राजी किया।

समुद्र-मंथन प्रारंभ होने के पूर्व ही पर्वत डूबने लगा, तो भगवान् विष्णु की एक शक्ति ने विराट् कच्छप का रूप धारण कर अपनी कठोर पीठ पर मन्दराचल रख लिया। तब भगवान् और देवता जान-बूझकर नाग के मुख की ओर खड़े हो गये, तो असुर यह समझे कि साँप का मुँह शुभ और उसकी पूँछ अशुभ होती है, इसलिए वे भी मुँह की ओर से नेती को पकड़ने के लिए हठ करने लगे। भगवान् यही चाहते थे, अतएव मुसकुराकर वे पूँछ की ओर आ गये। फिर देवताओं ने पूँछ पकड़कर और असुरों ने मुँह की ओर से वासुकि को घसीटना प्रारंभ किया।

मंथन की रगड़ से समुद्र में चारों ओर अग्नि उत्पन्न हो गई, जो डवानल कहलाती थी। पहला रत्न कालकूट विष निकला। उस ्रप के ताप से दैत्यों और देवताओं को भयभीत देखकर उसे शिवजी ा पी लिया, जिससे वे 'नीलकंठ' कहलाने लगे। फिर अमृतमयी कलाओं से युक्त चन्द्रमा निकला जिसको देवताओं ने ले लिया। तत्पश्चात् अनेक गायों के साथ कामधेनु प्रकट हुई, जिसे दैत्यों और देवताओं ने उपस्थित ऋषि-मुनियों को दान में दे दिया। फिर कल्पवृक्ष पारिजात, मन्दार, हरिचंदन और सन्तान नामक दिव्य वृक्ष औ रंभा आदि अप्सराएँ प्रकट हुई, जो आकाश मार्ग से इन्द्र के नन्दन वन

चली गई। अब शंख, धनुष और कौस्तुभ रत्न निकले, जो सब की ओर से विष्णु भगवान् को समर्पित कर दिये गये इसके बाद 'वारुणि' निकली, जिसे असुरों ने ले लिया। फिर सात मुँहवाला, सफेद रंग का उच्चैःश्रवा अश्व निकला। इसके बाद चार दाँतोंवाला ऐरावत गज निकला जिसे इन्द्र ने ले लिया। थोड़ी देर के मंथन के उपरान्त 'महालक्ष्मी' निकली, जो विष्णु भगवान् की 'योगमाया' और आदिशक्ति के रूप मे प्रतिष्ठित हुई। महालक्ष्मी की कृपादृष्टि से समस्त देवता श्रीसंपन्न हो गये। तदनन्तर अनेक जड़ी-बूटियों और मादक द्रव्यों के साथ धन्वन्तरि वैद्य प्रकट हुए। उनके हाथ मे अमृत का पात्र था।

अमृत के कलश को देखते ही देवताओं और असुरों मे झगड़ा होने लगा, जिससे समुद्र-मंथन बन्द हो गया। तब भगवान् की शक्ति ने 'मोहिनी' रूप धारण कर असुरो को मुग्ध करना प्रारंभ कर दिया। मोहिनी ने दैत्यों के हाथ से अमृत-कलश ले, देवताओं और असुरों को दो पंक्तियों में बैठाया और देवताओं की पंक्ति से अमृत बाँटना प्रारभ किया। इसी समय 'राहु' नामक दैत्य देवताओं की पंक्ति मे आ बैठा। देवताओं की सी वेश-भूषा मे होने के कारण मोहिनी ने उसे पहचाना नहीं। ज्यों ही अमृत देने को वह उद्यत हुई, पास बैठे सूर्य और चन्द्र ने संकेत से भगवान् को सूचना दे दी। भगवान् ने तत्काल अपने चक्र से उसका मस्तक काट डाला। राहु का मस्तक आकाश मे उड़ गया और धड़ 'केतु' सा पृथ्वी पर गिरने लगा। राहु कुपित हो ग्रसने के लिए चन्द्रमा के पीछे दौड़ा, तो चन्द्रमा भयभीत हो महादेवजी की शरण मे आया। महादेवजी ने उसे जटाजूट मे रख लिया। राहु को सामने देख चन्द्रमा के शरीर से अमृत झरने लगा। इससे राहु के अनेक सिर हो गये। भगवान् शंकर ने उन सब मस्तकों को लेकर मुण्डों की माला बना ली।

इन्द्र ने दैत्यों का संहार कर उन पर विजय प्राप्त कर ली, पर बृहस्पति के न होने से राज्य पर कैसे बैठते, अतएव उन्होंने विश्वकर्मा के पुत्र विश्वरूप को पुरोहित बना लिया। विश्वरूप के तीन मस्तक थे। वह

दैत्यों को भी चुपचाप यज्ञ का भाग देने लगा, तब इन्द्र ने कुपित हो उसका वध कर दिया। इससे इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा। पाप और अपयश से लज्जित हो, इन्द्र जल में जाकर छिप गया और तप करने लगा। तब नारद मुनि के परामर्श से सौ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण करनेवाले राजा नहुष को इन्द्रासन पर बैठाया गया; किन्तु अगस्त्य मुनि के शाप से वह सर्प हो गया और स्वर्ग से उसका पतन हो गया। अब सब देवताओं के अनुनय-विनय से बृहस्पति प्रसन्न हो गये और ब्रह्महत्या का पाप सब देवताओं ने बाँट लिया और इन्द्र को पुनः इन्द्रासन पर अभिषिक्त किया।

समुद्र-मंथन से प्राप्त चौदह रत्न :—

श्री, विष, रंभा, वारुणी, अमिय, शंख, गजराज।
धन्वन्तरि, धनु, धेनु, ससि, कल्पवृक्ष, मणि, वाजि॥

अमृत के पर्यायवाची शब्द :—

पीयूष, सुधा, अमिय।

देवता के पर्यायवाची शब्द :—

अमर, देव, सुर, निर्जर, विबुध, आदित्य, गीर्वाण।

बृहस्पति के पर्यायवाची शब्द :—

गुरु, सुरेश, अमरेश, देवगुरु, सुराचार्य।

सम्पाति

प्रजापति कश्यप की पत्नी विनता के दो पुत्र थे—अरुण और गरुड़। अरुण सूर्य का सारथि था। उसके दो पुत्र जटायु और सम्पाति हुए। जटायु बड़ा भाई था। वह सीताहरण के समय रावण द्वारा मारा गया था।

सम्पाति और जटायु दोनों ने एक बार कैलाश पर्वत पर मुनियों के सामने बहस की कि कौन सूर्यमंडल के अधिक निकट जा सकता है। जटायु बुद्धिमान् था। वह जब सूर्य का ताप सहन न कर सका, तो आधी

साम्ब ने एक नगर भी बसाया, जो "साम्बपुर" नाम से प्रसिद्ध हुआ। साम्ब के उपहास के कारण ही मुनियों ने यदुवंश के नाश होने का शाप दिया था। गर्भवती स्त्री का रूप बनाने के कारण सचमुच ही उसके पेट पर मूसल बँधा निकला, जिससे यादवों का समूल नाश हो गया।

संदीपन, पाञ्चजन्य, यमराज, श्रीकृष्ण

कृष्ण और बलराम जब बड़े हुए तो गुरुकुल मे विद्याएँ सीखने गये। इनके गुरु का नाम संदीपन था। विद्याएँ सीख चुकने के उपरान्त विदा होते समय इन्होंने अपने गुरु से गुरुदक्षिणा माँगने के लिए प्रार्थना की। संदीपन कृष्ण की शक्ति को जानते थे, अतएव अपनी स्त्री की सम्मति लेकर उन्होंने कहा—'मेरा एक पुत्र प्रभास क्षेत्र मे नहाते समय सागर मे डूब गया है, उसे ले आओ।'

कृष्ण और बलराम दोनों भाई रथ पर बैठकर सागर के तट पर पहुँचे। भगवान् को आया देख समुद्र देवता मनुष्य का शरीर धारणकर पूजा की सामग्री लेकर आ पहुँचे। कृष्ण ने उनकी पूजा स्वीकार कर कहा—'तुम हमारे गुरु-पुत्र को बहा ले गये हो। उसे मैं लेने आया हूँ। सागर ने कहा—'मुझे इस बालक की खबर नहीं। मेरे भीतर एक शंख मे "पञ्चजन" नामक दैत्य रहता है। कदाचित् वही उस बालक को ले गया होगा।'

यह सुनकर भगवान् ने सागर के भीतर प्रवेश किया। बहुत खोजने पर पञ्चजन नामक दैत्य मिला। उसको मार कर उसकी हड्डी का बना पाञ्चजन्य नामक शंख ले लिया। पर गुरु का पुत्र उस दैत्य के पेट मे भी नहीं मिला, तब भगवान् उसकी खोज मे यमराज की पुरी मे गये वहाँ जाकर कृष्ण ने पाञ्चजन्य शंख बजाया। शंख-ध्वनि सुनकर यमराज बाहर आ, श्रीकृष्ण को देख, उनके चरणों पर गिर पड़े यमराज से उन्होंने गुरु-पुत्र की अकाल-मृत्यु का समस्त वृत्तान्त सुनाकर उसे माँगा।

यमराज अपने लोक से श्रीकृष्ण के गुरु-पुत्र को ढूँढ़कर ले आये। कृष्ण गुरु-पुत्र को लेकर गुरु के पास गये और उसे गुरु को देकर उनका आशीर्वाद ले, मथुरा लौट गये।

सावित्री, सत्यवान्, द्युमत्सेन

मद्र देश मे अश्वपति नामक एक राजा रहता था। सन्तति के लिए उसने बहुत वर्ष तक ब्रह्मा तथा उनकी पत्नी सावित्री देवी को प्रसन्न करने के लिए तप किया। कुछ काल बाद उनके एक पुत्री हुई, जिसका नाम उन्होंने सावित्री ही रखा।

युवती होने पर, योग्य वर न मिलने पर, सावित्री को अश्वपति ने अनुकूल पति प्राप्त करने के लिए देश-देशान्तर भेजा। सावित्री ने शाल्व देश के निर्वासित अंधे राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् से विवाह करने का निश्चय किया। देश से निकाल दिये जाने पर वे वन मे रहते थे।

सावित्री जब अपना निश्चय अपने पिता को सुना रही थी, नारद मुनि आ पहुँचे। उन्होंने सत्यवान् की बड़ी प्रशंसा की; किन्तु यह बताया कि सत्यवान् अल्पायु है। एक वर्ष बाद उसका देहान्त हो जायगा। किन्तु सावित्री एक बार पति-वरण कर चुकी थी, अतएव उसी से विवाह करने का उसने हठ किया। राजा को विवाह करना पड़ा।

ठीक एक वर्ष बाद सत्यवान् वन मे लकड़ी काटने निकला। सावित्री तो महीनों पहले से व्रतोपवास कर रही थी। वह भी उसके पीछे-पीछे चली। लकड़ी काटते-काटते सत्यवान् के सिर मे पीड़ा हुई और वह लेट गया।

उसी क्षण एक भयंकर व्यक्ति को सावित्री ने निकट आते देखा। वे यम थे। सत्यवान् की आयु पूरी हो जाने पर वे उसे लेने आये थे। सावित्री उनके पीछे-पीछे चली। यम ने सत्यवान् के जीवन के अतिरिक्त एक के बाद एक वरदान देना स्वीकार किया; किन्तु सावित्री उनके पीछे-पीछे चलती ही रही।

देवताओं ने जनक के पुरखों को यह धनुष दे दिया। राजा जनक इस धनुष की पूजा नित्य करते थे। पूजा के लिए उन्हें कुछ दूर जाना पड़ता था। एक दिन सीताजी वह भारी धनुष उठाकर घर ले आईं। घर में जहाँ धनुष रखा था, वहाँ पूजने के लिए सीताजी की माता नित्य चौका देती थीं; किन्तु जिस कोने मे धनुष रखा था वह नित्य बिना लिपा ही रह जाता था। एक दिन सीताजी ने उसे उठाकर चारों कोने स्वयं लीप दिये।

महाराज जनक को जब यह ज्ञात हुआ, तो उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि जो कोई उस धनुष की प्रत्यंचा चढा कर उसे तोड़ेगा, उसी के साथ जानकी का विवाह होगा। महर्षि विश्वामित्र जब राम-लक्ष्मण को लेकर धनुष-यज्ञ देखने जनकपुर पधारे, तो पूजा के लिए पुष्प चयन करने को दोनो भाई भी पुष्प वाटिका मे गये। वहीं जानकीजी पार्वती-पूजन करने, माता की आज्ञा से, सखियों के साथ गई थीं। पार्वती की पूजा करने वह नित्य जाती थीं। एक दिन मार्ग में नारदजी मिले, तो सीता ने प्रणाम कर कहा—'मैं गिरिजा-पूजन के लिए पुष्प-वाटिका जा रही हूँ।' इस पर मुनि ने प्रसन्न होकर कहा—'इसी वाटिका मे तुम्हें श्रीराम मिलेंगे, जो तुम्हारे पति होंगे।' सीता ने पूछा कि मैं उन्हें कैसे पहचानूँगी, तो उन्होंने कहा कि जिन्हें देखकर तू मोहित हो जाय, उन्हे ही राम समझ लेना।

सीताजी ने जब पुष्प-वाटिका मे रामचन्द्रजी को देखा, तो वह प्रेमवश सुधबुध भूल गईं। फिर धनुप-यज्ञ मे श्रीराम ने धनुप तोड़ डाला और सीताजी को ब्याह कर अयोध्या लौट गये। विमाता की कुटिलता के कारण राम को वनवास हुआ। वनवास होने पर सीता को रावण हर ले गया, जिससे राम रावण युद्ध हुआ। रामचन्द्रजी पतिपरायण सीता की अग्नि-परीक्षा कर अयोध्या ले गये; किन्तु कुछ पुरवासियों ने निर्दोष सीता की निन्दा की। इस कारण श्रीराम ने गर्भवती सीता को तमसा नदी के किनारे महर्षि वाल्मीकि के आश्रम मे भेज दिया। वहाँ उनके लव-कुश नामक दो पुत्र हुए।

इधर अयोध्या में रामचन्द्रजी ने अश्वमेध यज्ञ करने का विचार किया। गुरु वसिष्ट ने जब यह कहा कि बिना पत्नी के यह यज्ञ नहीं होता, तो रामचन्द्रजी ने सीताजी की सुवर्ण-प्रतिमा बनवा कर यह यज्ञ किया। अश्व का पूजन कर उन्होंने घोड़े को छोड़ दिया कि जिसमें बल हो, वह घोड़े को पकड़े। सीताजी के दोनों पुत्रों—लव-कुश—ने घोड़ा पकड़ लिया, जिससे राम की सेना और लव-कुश में घनघोर युद्ध हुआ। अन्त में राम स्वयं लव-कुश के निकट युद्धभूमि मे गये और उनका परिचय पूछा। महर्षि वाल्मीक ने परिचय दिया और कहा कि सीताजी सर्वथा निर्दोष हैं। उसी समय सीताजी वहाँ आईं और बोलीं कि मैं श्रीराम को छोड़ दूसरे किसी पुरुष को नहीं जानती। यदि मेरी यह बात सत्य हो, तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोद मे स्थान दें। यह कहते ही पृथ्वी फट गई और उसमें से एक सिंहासन निकला। सिंहासन पर पृथ्वी देवी बैठी थीं। वे सीता को गोद में लेकर रसातल में चली गईं।

सुकेशि, रावण, कुंभकर्ण, सरमा, विभीषण

विद्युत्केश नामक एक राक्षस था। उसके पुत्र का नाम सुकेशि था। जब इसका जन्म हुआ तो इसकी माता इसे मंडर पर्वत पर छोड़कर अपने पति के साथ विहार करने चली गई थी। उस समय पार्वती के कहने पर महादेव जी ने सुकेशि को चिरंजीवि होने और आकाश मे गमन करने का वरदान दिया था। इस राक्षस ने एक गन्धर्व की पुत्री से विवाह किया, जिससे इसके तीन पुत्र माल्यवान्, सुमाली और माली नाम के राक्षस हुए।

राक्षस सुमाली की कन्या "कैकसी" का विवाह मुनि विश्रवा मुनि के साथ हुआ। उनके रावण, कुंभकर्ण और विभीषण तीन पुत्र तथा एक कन्या शूर्पणखा हुई। रावण लंका का राजा बना। सीताहरण करने के कारण रावण राम के हाथों मारा गया।

महाकाय कुम्भकर्ण ब्रह्माजी के वरदान के प्रभाव से एक गुफा में छः महीने सोता था और एक दिन जाग कर भोजन करता था।

बुध के पर्यायवाची शब्द :—ज्ञ, सोम, चान्द्र, चन्द्रसुत, उडुगणपतिसुत, राकेशसुत।

सुतीक्ष्ण

अगस्त्य मुनि के एक भाई तथा शिष्य का नाम सुतीक्ष्ण था। वे अगस्त्य से विद्या पढ़ चुके, तब गुरु से पूछा—महाराज, आपको क्या दक्षिणा दूँ? गुरु ने कहा—तुम प्रसन्न रहो, यही दक्षिणा है। पर जब सुतीक्ष्ण ने बहुत हठ किया, तब अगस्त्य ने हँसकर कह दिया कि अच्छा, तुम दक्षिणा में हमारे पास परमेश्वर को लाना।

वनवास के समय राम, लक्ष्मण और सीता अत्रि मुनि के आश्रम में होते हुए, शरभंग मुनि से मिले फिर सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में गये। सुतीक्ष्ण मुनि श्री रामचन्द्रजी के दर्शन पाकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'मैं दीर्घ काल से आपके आने की प्रतीक्षा कर रहा था इसी कारण ब्रह्मलोक नहीं गया।' महामुनि सुतीक्ष्ण फिर राम-लक्ष्मण और सीता को अपने गुरु अगस्त्य मुनि के आश्रम में ले गये और दक्षिणा देकर प्रसन्न हुए।

सुदक्षिण

काशीनरेश पौंड्रक का मित्र था। पौंड्रक अपने को अवतार समझता था। जब कृष्ण ने करूप देश पर चढ़ाई की, तो काशीनरेश की सेना उसकी सहायता करने के लिए गई। उस युद्ध में पौंड्रक को तो भगवान् ने वहीं मार गिराया, किन्तु काशिराज का सिर काटकर काशी में गिरा दिया। उसके सिर को देखकर उसकी रानियाँ और पुत्र विलाप करने लगे।

काशिराज के बेटे का नाम सुदक्षिण था। उसने प्रतिज्ञा की कि मैं अपने पिता की हत्या करनेवाले कृष्ण से बदला अवश्य लूँगा। यह प्रण करके वह समाधि लगाकर भगवान् शंकर की आराधना करने लगा। उसके घोर तप से शिवजी प्रसन्न हो गये। उन्होंने वरदान

माँगने को कहा। सुदक्षिणा ने पिता के हत्यारे के वध का उपाय पूछा। शिवजी ने कहा—'तुम 'मारण' का अनुष्ठान करो। यज्ञ के हवनकुंड से एक भयानक मूर्ति पैदा होगी; किन्तु ब्राह्मणों के भक्तों पर तुम्हारा मारण नहीं चलेगा।'

बस, सुदक्षिणा मारण के लिए अग्नि में होम करने लगा। अनुष्ठान समाप्त होने पर यज्ञकुंड में से एक भयानक लम्बा अग्निदेव-सा निकला। उसके केश ताँबे के रंग के थे। वह त्रिशूल तान कर सीधा द्वारका की ओर चला। उस समय भगवान् सभा में बैठे चौसर खेल रहे थे। नगर मे त्राहि-त्राहि मच गई, तो भगवान् ने अपना सुदर्शन चक्र चला दिया। मारण का अनुष्ठान ब्राह्मण-भक्त कृष्ण का अनिष्ट कैसे करता? वह उल्टे पाँव लौटा; किन्तु सुदर्शन चक्र पीछा करने लगा।

मारण का अनुष्ठान खाली नहीं जाता। जिस पर किया जाता है, उसे यदि न मार सका, तो करनेवाले को ही मार डालता है। उसने काशी में आकर सुदक्षिणा और उसके पुरोहित को मार डाला। उसके पीछे सुदर्शन चक्र ने काशीपुरी का बहुत सा भाग और राजमहल भस्म कर दिया। फिर वह कृष्णचन्द्र के पास लौट गया।

सुदर्शन

सुदर्शन नाम का एक विद्याधर था। विद्याधर देवताओं की एक जाति है जिसके अन्तर्गत खेचर, गन्धर्व, किन्नर आदि माने जाते हैं।

अंगिरा ऋषि के शाप से वह अजगर हो गया था। एक बार नन्द आदि सब गोप अंबिका देवी के मेले में गये। रात को उन्हे वहीं रहना पड़ा। उसी समय एक अजगर ने आकर नन्द का पैर डस लिया। नन्द के चिल्लाने पर सब गोप-गोपी दौड़े आये। वे जलती हुई लकड़ियों से अजगर को मारने लगे; किन्तु उस अजगर ने नन्द का पैर किसी प्रकार न छोड़ा। अन्त मे गोपो ने कृष्ण और बलराम से कहा। कृष्ण दौड़े आये और अजगर को छुआ ही था कि वह अजगर का शरीर

छोड़कर एक सुन्दर युवक हो गया। तब अपना परिचय देकर वह विमान में बैठकर अपने लोक को चला गया।

सुधन्वा, शंख, लिखित, अर्जुन

महाभारत का युद्ध समाप्त होने पर धर्मराज युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे। उन्होंने यज्ञ का घोड़ा छोड़ा, तो वह चंपकपुरी पहुँचा। वहाँ के राजा हंसध्वज को श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन की बड़ी अभिलाषा थी। उन्होंने सोचा, यदि हम घोडे की रक्षा करनेवाले महारथी अर्जुन को पकड़ लें, तो भगवान् अवश्य उनकी सहायता के लिए यहाँ आ जायँगे।

राजा हंसध्वज बड़े धर्मात्मा और भगवान् के भक्त थे। उनके राज्य के सभी पुरुष एकपत्नी-व्रत का पालन करते थे। घोड़ा पकड़ लिया गया और वहाँ के धर्मगुरु शख और लिखित ने आज्ञा निकाली कि नियत समय पर सब योद्धा युद्ध-क्षेत्र मे पहुँच जायँ। जो भी देर करेगा, उसे खोलते तेल के कड़ाहे मे डलवा दिया जायगा।

सभी योद्धा नियत समय पर पहुँच गये; किन्तु राजा का सबसे छोटा पुत्र सुधन्वा माँ और पत्नी से विदा होकर आया तो देर हो गई। शंख और लिखित बड़े क्रोधी थे। उन्होंने राजा को समझाया कि पुत्र के मोह मे पड़कर अपने वचन झूठे न करें। अपना अपराध स्वीकार कर सुधन्वा गोविन्द की स्तुति करता हुआ खौलते तेल के कड़ाहे मे गिर पड़ा किन्तु उसका बाल भी बाँका न हुआ।

राजा को बड़ा विस्मय हुआ। शंख ने एक नारियल तेल में डालकर देखा, तो वह तेल मे पड़ते ही फट गया और उसके टुकड़े उछलकर जो गिरे तो शख और लिखित के सिर फूट गये। तब प्रायश्चित्त करने के लिए शंख लज्जित हो स्वयं कड़ाहे मे कूद पड़ा; पर वह भगवान् की कृपा से जला नहीं। दोनों बाहर निकल आये। सुधन्वा का अपराध क्षमा हो गया, तो वह अर्जुन से लड़ने युद्ध-क्षेत्र में पहुँचा।

वीर सुधन्वा ने अर्जुन के सभी बाण काट डाले, तो उन्होंने श्रीकृष्ण

का स्मरण किया। श्रीकृष्ण का रथ आते ही अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि मैं तीन वाणों से तेरा सिर काटकर गिरा दूँगा। अर्जुन के दो वाण तो सुधन्वा ने काट डाले; किन्तु तीसरा वाण उसके मस्तक पर लग गया, जिससे उसका मस्तक कट गया। सुधन्वा का सिर श्रीकृष्ण का नाम लेता हुआ उनके चरणों मे गिर पड़ा और उसके मुख से एक ज्योति निकली जो कृष्ण में समा गई।

सुभद्रा-हरण, अर्जुन

एक समय अर्जुन तीर्थयात्रा करने के लिए निकले। प्रभास तीर्थ में पहुँचने पर उन्होंने सुना कि कृष्णजी की वहन सुभद्रा परम सुन्दरी और वीर नारी है। वलभद्र उसका विवाह दुर्योधन के साथ करना चाहते थे। कृष्णजी ने इस विवाह का विरोध किया, तो अर्जुन ने सुभद्रा के साथ स्वयं विवाह करने का निश्चय किया। वह त्रिदंडी संन्यासी का रूप धारण कर द्वारका पहुँचे। वहाँ चौमासे भर रहे, किन्तु कोई उन्हें पहचान न सका। एक दिन वलदेवजी उन्हें भोजन कराने अपने घर ले आये। वहाँ सुभद्रा को देखकर उसे पत्नी वनाने का उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया।

एक वार सुभद्रा देव-दर्शन के लिए रथ पर वैठकर महल से वाहर निकली। उसी समय अवसर पाकर महारथी अर्जुन अपना धनुप ले, रक्षकों को मारकर सुभद्रा को अपने रथ पर वैठा चल दिया। वलदेव ने यह समाचार सुना तो वहुत विगड़े। किन्तु कृष्णजी ने समझा-वुझाकर उन्हे शान्त कर दिया।

सुमन्त

सारथि सुमंत का जन्म सूत-कुल मे हुआ था। अयोध्या-नरेश महाराज दशरथ के ये वालमित्र, सखा और महाराज के निजी सारथि थे। यात्रा, विवाह, राज्याभिषेक आदि वड़े उत्सवों की व्यवस्था सुमंत ही किया करते थे। रामवनवास सुनकर इन्हे अपार व्यथा हुई थी। ये

ही राम, सीता और लक्ष्मण को, दशरथ की आज्ञा से, शृंगवेरपुर तक रथ मे बैठाकर ले गये थे। किन्तु राम को वहाँ से लौटाकर न ला सके।

अन्त समय पर दशरथ को सुमंत ने अनेक प्रकार से समझाया था। अयोध्या के अनाथ होने पर भरत के साथ सिंहासन पर रामपादुका प्रतिष्ठित कर सुमंत ने बडे धैर्यपूर्वक वहाँ की व्यवस्था सँभाली। श्रीराम उन्हे सदा पिता की भाँति सम्मान दिया करते थे। वनवास के उपरान्त रामचन्द्रजी के राज्य मे भी ये महामंत्री के पद पर अधिष्ठित थे।

सुरसा, हनुमान

सुरसा एक प्रसिद्ध "नाग-माता" थी। जिस समय हनुमानजी सीता की खोज मे लंका जा रहे थे, उस समय देवताओं ने सुरसा से कहा कि तुम विकराल राक्षसी बनकर उनको रोको। सुरसा समुद्र मे रहती थी। उसने अपना विकराल रूप धारण कर हनुमानजी को रोककर कहा—'मै तुम्हे खाऊँगी।' अब उसने अपना मुँह फैलाया। हनुमानजी ने उससे कहा—'जानकीजी की खबर श्री रामजी को देकर मै तुम्हारे पास आ जाऊँगा।' सुरसा ने कहा—'ऐसा नहीं हो सकता। पहले तुम्हे मेरे मुँह मे प्रवेश करना होगा।' तब हनुमानजी ने अपना शरीर बढ़ाया। ज्यों-ज्यो सुरसा अपना मुँह बढ़ाती गई, हनुमानजी भी अपना शरीर बढाते गये। अन्त मे हनुमानजी बहुत ही छोटा रूप धारण करके उसके मुँह मे प्रवेश कर बाहर निकल गये। तब सुरसा ने प्रसन्न होकर उनकी बुद्धि और बल से सन्तुष्ट हो उनकी सफलता की कामना की।

सुलोचना, मेघनाद

जब लक्ष्मण महापराक्रमी इन्द्रजित् मेघनाद का वध करने लगे, तो राम ने उन्हे सचेत किया कि मेघनाद का मस्तक युद्ध-भूमि मे न गिरने पाये। मेघनाद एकपत्नीव्रत का पालक था और सुलोचना भी

परम पतिव्रता थी। साध्वी पत्नी के शाप से राम की सेना ध्वंस हो जाती। अतएव लक्ष्मण अपने तीक्ष्ण शरों से मेघनाद का मस्तक उतारकर, राम के सम्मुख ले गये।

उधर मेघनाद की दक्षिण भुजा आकाश-मार्ग से उड़ती हुई सुलोचना के पास जा गिरी। सुलोचना दुःख से कातर हो विलाप करने लगी; किन्तु थोड़ा सन्देह होने पर कहने लगी कि यदि यह मेरे पति की भुजा हो, तो लिखकर युद्ध का सारा वृत्तान्त बतला दे। भुजा को लेखनी पकड़ाने पर वह सचमुच लिखने लगी। सब वृत्तान्त जानकर सुलोचना राम के निकट अपने पति का मस्तक माँगने गई, तो वानर-दल आश्चर्य-चकित हो गया।

सुग्रीव ने पूछा कि तुम्हे कैसे ज्ञात हुआ कि मेघनाद का शीश राम के पास है। उसने रोते-रोते कहा—पतिदेव की भुजा ने लिखकर सब बतला दिया है। सुग्रीव ने उसका विश्वास न कर कहा कि यदि तुम मेघनाद के सिर को हँसा दो तो हम जाने कि मेघनाद की कटी भुजा लिख भी सकती है।

भगवान् ने सुलोचना को मस्तक देकर कहा पतिव्रता के तेज से कटा मस्तक भी हँस सकता है। सुलोचना ने जब कहा कि यदि मेरा पति सच्चा हो तो यह निर्जीव छिन्न मस्तक हँस उठे, तो वह मस्तक खिल-खिलाकर हँस पड़ा। वानरों का सन्देह दूर हो गया।

चलते समय सुलोचना ने प्रार्थना की कि आज के दिन युद्ध बन्द करवा दें, कारण मेरे पति की अन्त्येष्टि क्रिया होगी। राम ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

सती सुलोचना लंका जाकर चन्दन की चिता मे जलकर सती हो गई।

सैरंध्री, अज्ञातवास

सैरन्ध्र नाम की संकर जाति राजाओं के अन्तःपुर मे दासियों का काम करती थी। अज्ञातवास के समय द्रौपदी को भी एक वर्ष तक सैरन्ध्री

का काम करना पड़ा था। इसी से द्रौपदी का नाम 'सैरन्ध्री' पड़ा। उसने अपने को गंधर्वों की पत्नी बतलाया और राजा विराट के यहाँ दासी बनी।

युधिष्ठिर "कंक" नामक ब्राह्मण बनकर विराट की राज-सभा के सभासद बने। उन्हे पाँसा खेलने का बड़ा चाव था। अत. उन्होंने राज-मंत्री और सभासदो को पाँसा खेलाकर प्रसन्न करने का काम स्वीकार किया।

भीम रसोई बनाने के काम मे चतुर थे, अतएव "वल्लभ" नामक रसोइया बनकर वे राजा के दरबार मे उपस्थित हुए।

अर्जुन ने हाथीदाँत की चूड़ियाँ पहन, सिर पर वेणी गूँथकर, अपने को नपुंसक घोषित किया और "वृहन्नला" नाम से राजा विराट के अन्त.पुर की स्त्रियों को संगीत और नृत्यकला की शिक्षा देनी चाही।

नकुल ने राजा विराट के यहाँ अश्वविद्या का कार्य करने के लिए अपना नाम "ग्रन्थिक" बताया और अश्वपाल बनकर रहना स्वीकार किया।

सहदेव ने "तन्त्रिपाल" नाम से गौओं की सेवा का कार्य लिया।

सैरन्ध्री के वेश मे द्रौपदी केशों के शृंगार मे अत्यन्त चतुर थी। इस प्रकार पाँचों पाडव और द्रौपदी राजा विराट की सेवा करते थे।

एक दिन राजा विराट के सेनापति महाबली सूत कीचक की दृष्टि द्रौपदी पर पड़ी। सेनापति कीचक राजा का साला भी था। वह द्रौपदी के निकट जाकर उससे प्रणय-भिक्षा माँगने लगा। कीचक ने अपनी बहन रानी सुदेष्णा से षड्यंत्र कर द्रौपदी को अपने निकट बुलवाया। हाथ पकड़ते ही द्रौपदी ने बड़े जोर से धक्का दिया। कीचक धम्म से पृथ्वी पर गिर पड़ा। पृथ्वी से उठकर उसने द्रौपदी के केश पकड़ लिये। किसी प्रकार बचकर वह राजा विराट के पास गई। उसने सभा मे पाडवो के सामने अपने अपमान का वृत्तान्त कहा। भीम चुपचाप नृत्यशाला मे जाकर कीचक की प्रतीक्षा करने लगे। द्रौपदी ने उसे नृत्यशाला मे बुलाया था। वहाँ कीचक को भीम ने मार डाला।

कीचक के भाई-बन्धु कीचक के वध करनेवाले का पता न पाकर क्रोध में सैरन्ध्री को भी पकड़कर उसे जलाने मरघट पहुँचे। किन्तु भीमसेन यह खबर पाकर कीचक के वेटों को मारकर पांचाली को छुड़ा लाये।

नगरनिवासियों ने जब महाबली सूतपुत्रों के वध का वृत्तांत सुना, तो समझ गये कि अवश्य यह कृत्य सैरन्ध्री के पति गन्धर्वों का है। राजा विराट ने यह सुनकर अपनी रानी सुदेष्णा से कहा कि सैरन्ध्री को अभी निकाल दो। पर अब अज्ञातवास के तेरह दिन और वाकी रह गये थे, अतएव उसने तेरह दिन और रहने की आज्ञा माँग ली। इसी बीच घटनाक्रम से विराट की पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से पक्का हो गया और सारा भेद खुल गया।

अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो जाने पर पाँचों पांडव और द्रौपदी प्रकट हो गये। कौरवों को कुछ सन्देह हुआ, तो उन्होंने राजा विराट की गायों को चुराकर उस पर आक्रमण कर दिया। तब अर्जुन विराट के पुत्र उत्तर का सारथी बन कौरवों से लड़ने गया और कौरवों को मार भगाया। विराट और उसका पुत्र उत्तर पांडवों की ओर से महाभारत-युद्ध मे लड़े थे। वहीं उत्तर की मृत्यु शल्य के हाथों हुई थी।

सौभरि, गरुड़, मांधाता, रमणक

"सौभरिसंहिता" के रचयिता सौभरि ऋषि वृन्दावन के निकट कालिन्दी के तट पर, रमणक नामक द्वीप में, रहते थे। यमुनाजल मे निमग्न हो इन्होंने वहुत वर्षों तक तपस्या की थी। एक वार मल्लाहों के जाल में फँसकर ये ऊपर चले आये तो मल्लाह घवरा गये। पर इन्होंने कहा—हम तुम्हारे जाल मे मछली की तरह फँस गये हैं तो तुम हमें भी वेच दो। पर ऋषि का मूल्य कौन दे सकता था? अन्त में राजा ने कपिला गौ को मूल्य रूप मे देकर ऋषि को मुक्त कराया।

एक वार ऋषि ने देखा कि गरुड़देव उनके स्थान के समीप मछलियाँ खा रहे हैं। एक मत्स्य को देखकर ऋषि को वड़ी दया आई। उन्होंने

गरुड़ को शाप दे दिया कि यहाँ आकर किसी भी जीव को खाओगे, तो तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।

रमणक द्वीप के सर्पों ने एक बार सलाह की कि गरुड़ हमारे समस्त परिवार का संहार करते है, अतः उनके पास पारी-पारी से सर्प भेजा करें तो हमारे कुल का नाश न हो। गरुड़ के पास जाने की पारी एक दिन कालिय नाग की आई, तो वह गरुड़ की बलि स्वय ही खा गया। इस पर गरुड़ क्रोधित हो, उस पर झपटे। कालिय जान लेकर भागा और सौभरि मुनि की शरण में गया। ऋषि ने कालिन्दी मे स्थान देकर कहा कि मेरे शाप से गरुड़ यहाँ नहीं आयेगा। सौभरि का आश्रम अहिवार और ऋषि के वंशज अहिवासी कहलाने लगे।

एक बार ऋषि जल के भीतर गये, तो वहाँ एक मत्स्य को स्त्री सहित सुख से विहार करते देख स्वयं भी गृहस्थ-सुख का उपभोग करने की कामना करने लगे। वे अयोध्या के राजा माधाता के पास गये और उनकी पचास कन्याओं मे से एक माँगी। माधाता वृद्ध ऋषि को देखकर घबराये; किन्तु शापभय से बोले—'मेरे अन्तःपुर मे जाइए। जो लड़की आपको पसन्द करे, उससे विवाह कर लीजिए।' वे पसन्द न करेंगी, यह सोचकर राजा प्रसन्न था, पर महर्षि उसके भाव को ताड गये। वे झटपट परम सुंदर युवा-रूप मे अन्दर गये, तो पचासों कन्याएँ उन पर मुग्ध हो गई। राजा ने पचासो कन्याओं का विवाह सोभरि से कर दिया। किन्तु अपना पतन देखकर ऋषि को होश आया और वे पुनः ब्रह्म में लीन हो गये।

सत्राजित, स्यमन्तक मणि, सत्यभामा, जांबवान्, अक्रूर

यदुवंशी सत्राजित भगवान् सूर्य का बड़ा भक्त था। सूर्य उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर उसके बहुत बडे मित्र हो गये थे। सूर्य भगवान् ने उसे दिव्य और अनमोल चमकीली स्यमन्तक मणि दी। सत्राजित उस मणि को पहनकर द्वारका गया तो श्रीकृष्ण ने कहा कि तु

यह मणि राजा उग्रसेन को दे दो; किन्तु वह बड़ा लोभी था। उसने स्वीकार नहीं किया।

एक दिन सत्राजित का भाई प्रसेनजित उस मणि को गले में पहन कर शिकार खेलने गया। वहाँ एक सिंह ने उसे मार डाला और उस मणि को छीन लिया; किन्तु पर्वत-गुफा मे रहनेवाले ऋक्षराज जाम्ववान् ने उस सिंह को मारकर मणि ले ली और अपने बच्चों को खेलने के लिए दे दी।

उधर अपने भाई प्रसेनजित के लुप्त होने पर सत्राजित को शंका हुई कि कदाचित् श्रीकृष्ण ने मणि के लोभ से उसे मार डाला है। श्रीकृष्ण ने सुना कि यह कलंक का टीका उन्हीं के सिर लगाया जा रहा है, तो स्वयं प्रसेनजित को ढूँढ़ने निकले। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जाम्ववान् के घर मणि मिली, तो जाम्ववान् उन पर क्रुद्ध हो लड़ने लगा। अन्त में रामभक्त सुग्रीव के मंत्री जाम्ववान् ने भगवान् कृष्ण के रूप में अपने स्वामी राम को पहचान लिया और वड़े प्रेम से उन्हें मणि देकर क्षमा माँगी। जाम्ववान् ने अपनी कन्या जाम्ववती भी मणि के साथ उनके चरणों मे अर्पित कर दी। श्रीकृष्ण ने जाम्ववती को वधूरूप मे स्वीकार कर सत्राजित को राजसभा मे मणि लौटा दी और सब कथा सुना दी।

सत्राजित झूठा कलंक लगा चुका था, अतएव बड़ा लज्जित हुआ। उसने अपनी पुत्री सत्यभामा और स्यमन्तक मणि दोनों ही श्रीकृष्ण को दे दीं। श्रीकृष्ण ने स्यमन्तक मणि लौटा दी; पर वह प्रतिदिन आठ भार सोना दिया करती थी। वह सोना उन्होने राजा उग्रसेन के कोष के लिए ले लिया और सत्यभामा से विधिपूर्वक पाणिग्रहण कर लिया।

कुछ दिनों वाद अक्रूर की सम्मति से शतधन्वा सत्राजित से मणि छीनकर और उसे मारकर वहाँ से चंपत हो गया। श्रीकृष्ण तब द्वारका मे नहीं थे। आकर जब उन्होंने यह वृत्तान्त सुना, तो शतधन्वा को मारने दौड़े। शतधन्वा डरकर स्यमन्तक मणि अक्रूर के पास छोड़ द्वारका से भाग गया। उधर श्रीकृष्ण ने शतधन्वा को ढूँढ़कर पकड़ लिया और उसे मार डाला; पर उन्हे मणि न मिली तो पछताये

हनुमानजी ने सूर्य से विद्याभ्यास किया था। दक्षिणा-रूप में उन्होंने सूर्य को वचन दिया था कि वे सदैव सूर्य के पुत्र सुग्रीव की रक्षा करेंगे। जब तक सुग्रीव को राज्य नहीं मिला, तब तक बराबर ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव की रक्षा करते हुए उनके सचिव होकर रहते थे।

हनुमानजी पवनदेव के वीर्य से उत्पन्न थे। केसरी वानर की स्त्री अंजनी एक दिन शृंगार कर खड़ी थी। इतने मे पवनदेव उधर से निकले और उसके अनुपम लावण्य पर मुग्ध हो गये। उन्हीं के वीर्य से अजनी के गर्भ से, हनुमानजी का जन्म हुआ। इसी से इनको पवनकुमार अथवा वातात्मज कहते है।

महाभारत में हनुमान के संबंध मे दो कथाएँ बहुत प्रसिद्ध है। पांडव वनवास के समय एक दिन भीम को मार्ग मे एक बड़ा भारी बन्दर आड़ा लेटा हुआ मिला। भीम की गर्जना से बन्दर की आँख खुल पड़ी। भीम ने कहा—'भाई, मार्ग से हट जाओ।' बन्दर ने उत्तर दिया—'मैं बूढ़ा हूँ। उठने-बैठने मे कष्ट होता है। मेरी पूँछ हटाकर क्यों नहीं चले जाते?' भीम ने अपनी सारी शक्ति लगाकर पूँछ हटाई, पर वह टस से मस न हुई। भीम समझ गये कि वह बन्दर हनुमान ही है। तब उन्हें साष्टांग प्रणाम कर वह चले गये। तभी हनुमानजी ने अर्जुन के कपिध्वज रथ पर बैठना स्वीकार किया था।

एक बार भीम ने हनुमान से कहा—'मुझे आप अपना वह रूप दिखाइए, जो राम-रावण-युद्ध में आपने धारण किया था।' हनुमानजी बोले—'मेरा वह रूप बड़ा ही विकराल है। तुम देखते ही डर जाओगे।' भीम ने गर्ववश बहुत आग्रह किया, तो हनुमानजी अपने उस महा प्रचंड रूप मे देखते-देखते परिवर्त्तित हो गये। भीम की आँखें बन्द हो गई और शरीर थर-थर काँपने लगा। वे हाथ जोड़कर उनके चरणों पर गिर पड़े।

कहते है, हनुमानजी ने श्रीरामचरित का वर्णन करते हुए अपने वज्रनख से पर्वत-शिलाओं पर एक महानाटक लिखा था; किन्तु

यथेष्ट अधिकारी न पाकर उन शिलाओं को समुद्र में फेंक दिया। कहते हैं, उसका कहीं-कहीं का अंश बच रहा, जिसका पीछे से संकलन करके दामोदर मिश्र ने वर्तमान हनुमान नाटक का निर्माण किया।

हनुमानजी के विषय में प्रसिद्ध है कि जहाँ कहीं भी रामायण की कथा कही जाती है, वहीं वह अवश्य पहुँच जाते हैं। एक बार किसी बादशाह ने गोसाईं तुलसीदास को बुलाकर उनसे कहा—'महात्माजी, कुछ करामात दिखाइए। तुम तो पहुँचे हुए फकीर सुने जाते हो।' तुलसीदासजी ने कहा—'मैं तो सिवा राम-नाम के और कोई करामात नहीं जानता।' बादशाह ने यह समझकर कि यह गुस्ताखी कर रहा है, उन्हे जेल में बन्द कर दिया। कारागार में कलियुग के अत्याचारों से दुखी हो तुलसीदासजी ने हनुमान से विनय करते हुए एक पद गाया, तो लाखों बन्दरों ने बादशाह के महलों में जाकर उपद्रव मचाना प्रारंभ कर दिया। देखते-देखते बन्दरों ने सारा राजसी ठाट-बाट ध्वंस कर डाला। तब बादशाह की आँखें खुलीं और गोसाईंजी के पैरों पर गिरकर उसने क्षमा माँगी और उपद्रव को बन्द कराने की प्रार्थना की।

सौ योजन समुद्र लाँघकर हनुमानजी सिंहिका राक्षसी को मारकर लंका पहुँचे थे और अशोकवाटिका मे जाकर उन्होंने सीताजी को राम-मुद्रिका दी थी। फिर रावणपुत्र अक्षयकुमार को मारकर वे लंकापुरी में आग लगाकर लौटे।

राम-रावण-युद्ध में मेघनाद की वीरघातिनी शक्ति के लगने से जब लक्ष्मण मूर्छित हो गये तो हनुमान संजीवनी बूटी लेने चले; किन्तु औषधि न पहचान सकने के कारण पूरा पर्वत ही उखाड़कर लंकापुरी ले चले। इस प्रकार जब वह जा रहे थे, तो मार्ग में अयोध्यापुरी के ऊपर से निकले। भरतजी इस समय धनुष-बाण पास लिये पूर्णाहुति कर रहे थे। बात यह थी कि सुमित्रा ने स्वप्न में देखा था कि उनकी बाईं भुजा को सर्प निगल गया है। अतएव वशिष्ठजी उस समय भरत से स्वप्न की शान्ति करा रहे थे। इसी समय हनुमान के भीमकाय रूप को पर्वत सहित आकाश से जाते देखा तो राक्षस जानकर कान

गाँगीं, तो हरिश्चन्द्र चिन्तित हो गये। इस पर विश्वामित्र ने कहा कि एक मास के भीतर मेरा ऋण नहीं दिया, तो तुम्हे शाप दे दूँगा।

राजा हरिश्चन्द्र भिखारी हो, पत्नी शैव्या और पुत्र रोहिताश्व के साथ, अयोध्या से निकल पड़े। काशी मे अपनी पत्नी और पुत्र को उन्होंने एक धर्मात्मा ब्राह्मण के यहाँ बेच दिया और अपने को कालसेन नामक डोम के हाथ बेचकर विश्वामित्र का ऋण चुका दिया।

एक दिन साँप के काटने से रोहिताश्व की मृत्यु हो गई। रानी शैव्या अपने बच्चे का शव उठाकर मरघट पर गई। हरिश्चन्द्र ने उन्हें पहचान लिया, किन्तु बिना कफ़न लिये, शव को न जलाने दिया। रानी जब अपनी साड़ी फाड़कर कर के रूप में देने लगी तो धर्म, इन्द्र आदि सब देवता प्रकट हो गये और पुत्र-पत्नी के साथ उन्हें स्वर्ग ले गये।

हिडिम्बासुर, भीम, हिडिम्बा, घटोत्कच

लाक्षागृह से बचकर पाण्डव जब वन मे दूर निकल गये, तो एक शालवृक्ष के नीचे सो गये। केवल भीम, सबकी रक्षा के लिए, अकेले जागते रहे। इसी समय क्रूर पराक्रमी मासभक्षी हिडिम्बासुर आया। उसने अपनी बहन हिडिम्बा को बुलाकर मनुष्य-मास मिलने का लोभ दिखाया; किन्तु वह राक्षसी भीम को देखकर उन पर मुग्ध हो गई।

हिडिम्बा ने एक मानुषी स्त्री का रूप धरकर भीमसेन से कहा—'यहाँ नरभक्षी एक राक्षस है। वह तुम्हारा मास खाना चाहता है। यदि तुम मुझसे विवाह कर लो, तो मैं तुम्हे बचा लूँ।'

भीमसेन ने उसकी तरफ ध्यान न देकर हिडिम्ब को ढूँढ़ उसे मार डाला, किन्तु हिडिम्बा उनका पीछा करती रही। अन्त मे भाइयों और माता की आज्ञा से भीम ने हिडिम्बा से विवाह कर लिया, जिससे उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो जन्मते ही युवा हो गया। उसके केशहीन मस्तक को देखकर उसका नाम रखा गया घटोत्कच।

घटोत्कच रावण और इन्द्रजित् के समान पराक्रमी और विशालकाय

निकला। उसका नाम स्मरण करते ही वह पांडवों के पास आ जाता था। उसकी मृत्यु महाभारत-युद्ध में कर्ण के हाथों हुई। उसका पुत्र ववेरीक भी बड़ा वीर था।

हिरण्याक्ष, वराहावतार

ब्रह्मा के पुत्र कश्यप ऋषि के दिति और अदिति नाम की दो स्त्रियाँ थीं। अदिति से सब देवता और दिति से सब दैत्य उत्पन्न हुए। इन्हीं दिति के गर्भ से कश्यप के हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दैत्य उत्पन्न हुए। छोटे पुत्र हिरण्याक्ष को अपने बल पर बड़ा घमंड था। वह गदा लेकर दिग्विजय करने के लिए चला और पृथ्वी को ले जाकर रसातल मे रख दिया।

इधर ब्रह्मा सोच में पड़ गये कि बिना आधार के अपनी सृष्टि कैसे बढ़ायें। ब्रह्मा यह सोच-विचार कर ही रहे थे कि उन्हें छींक आ गई। छींक के साथ ही अँगूठे के पोर के बराबर एक शूकर का बच्चा उनकी नाक से निकल पड़ा। वह वराह भगवान् थे। वह देखते-देखते एक हाथी से भी बड़े हो गये। ब्रह्मा ने समझ लिया कि पृथ्वी का उद्धार करने के लिए भगवान् विष्णु ने अवतार लिया है।

वराहजी झट महासागर में कूद पड़े। उन्होंने पृथ्वी को खोज निकाला। उसे अपने दाँत पर उठाकर ऊपर को चले कि हिरण्याक्ष से भेंट हो गई। हिरण्याक्ष बहुत देर तक लड़कर वराहजी के द्वारा मारा गया। इस प्रकार भगवान् की कृपा से पृथ्वी फिर ज्यों की त्यों स्थित हो गई।

हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद

हिरण्यकशिपु कश्यप मुनि का पुत्र था। वह बड़ा बलवान् था। उसने ब्रह्मा से वर माँगा कि मै अमर हो जाऊँ। इस पर ब्रह्मा ने कहा कि जिसका जन्म हुआ है, वह अमर नहीं हो सकता। इसलिए दूसरा वर माँगो।

हिरण्यकशिपु ने दूसरी बार माँगा कि मै न तो रात में मरूँ और न दिन मे; न धरती पर और न आकाश मे; न मनुष्य से मारा जाऊँ, न पशु से। ब्रह्मा की बनाई सृष्टि के किसी जीव से न मरूँ। देव-दानव, मुझे अस्त्र-शस्त्र से न मार सकें।

ब्रह्मा ने कहा—'एवमस्तु'। इस पर हिरण्यकशिपु मदान्ध हो नाना प्रकार के अत्याचार करने लगा। वह अपने को ही ईश्वर समझने लगा। यहाँ तक कि अपने पुत्र प्रह्लाद को भगवद्भक्त देखकर उसे भी मारने दौड़ा। तब भगवान् ने नृसिंह रूप मे खंभे से प्रकट होकर, रात-दिन की सन्धि वेला मे, घर और वाहर के वीच देहली पर बेठकर हिरण्यकशिपु को अपनी जंघा पर रखकर, विना अस्त्र-शस्त्र के, अपने नाखूनों से चीरकर मार डाला और प्रह्लाद को राजगद्दी पर बैठाकर अन्तर्धान हो गये।

कुछ कही-सुनी बातें

(१) अजगर—स्थूलकाय सर्प की एक जाति। भारी और मोटा होने के कारण यह एक स्थान पर बिना हिले-डुले पड़ा रहता है। अतएव आलस्य और निरुद्यम जीवन का प्रतीक है। प्रसिद्ध भी है :—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

(२) अशोक—एक सुन्दर, घना, हरा-भरा वृक्ष। यदि कोई सुन्दर सौभाग्यवती स्त्री अथवा गर्भवती स्त्री अशोक के वृक्ष को बाँयें पैर से लात मार दे, तो अशोक में लाल-लाल रंग के फूल आ जाते हैं। शुभ अवसरों पर इसकी पत्तियों के वन्दनवार लगाए जाते हैं। कामदेव के पंच-पुष्पबाण में अशोक के फूल भी हैं।

(३) अरुन्धती—वशिष्ठ की पतिव्रता पत्नी का नाम अरुन्धती था, जो नक्षत्र रूप मे आकाश में प्रातःकाल दिखलाई पड़ती है। जो व्यक्ति गतायुष होता है—जिसकी मृत्यु शीघ्र होनेवाली होती है, उसे यह नक्षत्र दृष्टिगोचर नहीं होता।

(४) आम्र—आम्र-वृक्ष और अशोक की पत्तियाँ प्रायः एक समान होती है। वसन्त ऋतु में इन दोनों वृक्षों में सुन्दरियों के स्पर्श से बौर आते हैं, जिन की मादक सुगन्ध से प्रेमियों के हृदय में प्रेम का संचार होता है और विरही और विरहिणी का दुःख बढ़ जाता है। आम्र-बौर "वसन्त दूत" कहलाता है। कामदेव के पुष्पबाण में आम्र बौर भी है।

(५) इन्द्रधनुष—वर्षा ऋतु में आकाश में अर्धवृत्त की आकृति में एक विशाल सुन्दर रंग-बिरंगा धनुष दिखलाई पड़ता है। यह सदैव सूर्य की विरुद्ध दिशा में दिखाई पड़ता है। एक मत से यह देवांगनाओं का सेतुपुल माना जाता

है। इसमें सात रंग दिखलाई पड़ते हैं :—बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल। इसे राम-धनुष भी कहते हैं।

(६) उलूक—दिन भर छिपकर रहनेवाला एक पक्षी, जो रात्रि में अन्य पक्षियों के सोते हुए बच्चों को मारकर खा जाता है। निर्जन और अंधकारमय स्थानों में रहने के कारण इसकी भयावनी बोली अशुभ मानी जाती है। उल्लू कहीं तो बुद्धि का और कहीं मूर्खता का प्रतीक माना जाता है। उल्लू कहीं कहीं शुभ भी माना जाता है, कारण उल्लू—धन, वैभव और सम्पत्ति की देवी लक्ष्मी का वाहन है।

(७) कदली—स्त्री और पुरुष के पैर—जंघा से लेकर टखने तक—की सुघड़ता की तुलना कदली अथवा केले के स्तंभ से की जाती है। स्वाति नक्षत्र की बूँद कदली पर गिरने से कपूर बन जाती है।

(८) कदम्ब—एक ऊँचा वृक्ष, जिसमें वर्षा ऋतु में गोल-गोल, पीले रंग के फूल लगते हैं। श्रीकृष्ण को यह पेड़ बहुत प्रिय था। वे इसके नीचे त्रिभंगी रूप में खड़े होकर बंसी बजाया करते थे।

(९) कमठ या कछुआ—अपनी धीमी चाल के लिए प्रसिद्ध है, अतएव सुस्त व्यक्ति का प्रतीक है। कछुआ तट पर अंडे रखकर जल में रहता है तो चिन्तित रहता है, अतएव अपने सम्बन्धियों या कुटुम्बियों की चिन्ता 'कमठ चिन्ता" कहलाती है। कच्छप भीरु और डरपोक होता है। भयभीत होने पर यह अपने अंग-प्रत्यंग सिकोड़कर पीठ के अन्दर छिपा लेता है। सम्मुख न आने वाले जनभीरु, डरपोक, व्यक्ति की "कच्छप वृत्ति" प्रसिद्ध है। कच्छप अवतार से ही एक प्रजापति कश्यप मुनि कहलाते हैं।

(१०) कमल—जल, जीवन और सुन्दरता का प्रतीक एक पुष्प। कमल-नेत्र कर-कमल, पद-पद्म या कमल-चरण अपनी सुन्दरता, सुकुमारता और सुघड़ता के लिए प्रसिद्ध हैं। कीचड़ में उत्पन्न होने के कारण इसकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती है। कमल की कली सूर्य के उदय होने पर प्रातःकाल खिलती है और सायंकाल होते ही बन्द हो जाती है। मधुमक्खियों को इसका रस और भौंरों को इसकी सुगंध बड़ी प्यारी लगती है।

नीलकमल कामदेव के पुष्पबाण में प्रमुख है और शिव और शनि की पूजा विशेष रूप से नील कमल के पुष्पों से होती है। विष्णुभगवान् की नाभि से उत्पन्न कमल पर ब्रह्मा विराजमान रहते हैं। कमल में 'लक्ष्मी' का निवासस्थान माना जाता है। कमलपत्र जल मे रहते हुए भी जलसिक्त नहीं होता। कमल पर जल-बिन्दु ऐसे व्यक्ति का प्रतीक है जो संसार में रहते हुए भी संसार से विरक्त रहता है।

(११) कर्णिकार—देवी-देवताओं को इस वृक्ष के पीले अथवा लाल फूल बहुत प्रिय है। देवाङ्गनाएँ इसके पुष्पों के आभरण पहनती हैं। स्त्रियों के नृत्य करने से यह वृक्ष फूलता है। कर्णिकार पुष्प से शिवजी की पूजा होती है। इस पुष्प में सुगंध नहीं होती। इसका रंग बहुत सुन्दर होता है।

(१२) कर्मनाशा—यह एक बहुत अपवित्र नदी मानी जाती है। त्रिशंकु राजा की लार से उत्पन्न इस नदी में स्नान करने से सब पुण्य नष्ट हो जाते हैं।

(१३) कस्तूरी—एक सुगंधित द्रव्य, जो नर-मृग की नाभि से प्राप्त होता है। मृग इसकी सुगंध को खोजता फिरता है। उसे यह ज्ञात नहीं होता कि जिस वस्तु को ढूँढ रहा है, वह उसी की नाभि में विद्यमान है। कबीरदास कहते हैं—

तेरा साईं तुज्झ में, ज्यो पुहुपन मे बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर-फिर ढूँढ़ै घास।

(१४) काक—जब इन्द्र के पुत्र जयन्त ने कौए का रूप धारण कर सीताजी के सम्मुख दुस्साहस किया, तब श्री रामचन्द्रजी ने पास में पडी सींक उठा, उसके बाण से जयन्त की एक आँख फोड दी थी। तब से कौआ एक आँखवाला कहा जाता है। कौए का काँव-काँव अशुभ समझा जाता है। कौआ कुरूपता का प्रतीक है। मोर के पंख लगा लेने से अथवा हंस की चाल चलने से वह सुन्दर नहीं बन सकता।

काकभुशुंडि एक ब्राह्मण थे, जो लोमश ऋषि के शाप से कौए हो गए थे। श्राद्ध के दिनों में ही कौए को सम्मानपूर्वक बुला कर खिलाया जाता है, अन्यथा

सब उससे घृणा कर उसे उडा देते हैं। जहाज का काक अपने स्वभाव-वश उडता है, लेकिन चारो ओर जल ही जल देखकर घबरा उठता है फिर घूम-फिरकर उसी जहाज पर आ बैठता है। जहाज ही उसका एकमात्र आश्रय रहता है। विरहिणी स्त्रियाँ मुँडेरे पर बैठे हुए काँव-काँव करते कौए को उडाकर अनुमान करती है कि अब उनका प्रियतम आयेगा। कौआ दीर्घायु समझा जाता है इसीलिए दीर्घायु वृद्ध व्यक्ति से घबराकर लोग कहते हैं कि क्या कौआ बनकर आए हो ?

(१५) कालिदास--एक प्रसिद्ध नाटककार और कवि। कालिदास पहले बहुत मूर्ख थे। एक बार एक राजकन्या ने इनको वाक्शून्य और मूर्ख देख, इनकी हँसी करके पूछा—अस्ति कश्चित् वाग्विशेषः ? तो उन्हे बहुत बुरा लगा। बाद में ये इतने विद्वान् हो गए कि राजकन्या के मुख से उच्चरित उन चार शब्दों से प्रारम्भ करते हुए चार प्रसिद्ध महाकाव्य—कुमारसम्भव, मेघदूत, रघुवश और शकुन्तला लिख डाले।

कालिदास शब्द का प्रयोग विद्वान् और मूर्ख दोनों के लिए होता है। व्यंग्य में मूर्ख व्यक्ति कालिदास कहलाता है।

(१६) काशी—यह शिवजी के त्रिशूल पर स्थित विश्वनाथ भगवान् शिव की प्रिय नगरी है, जहाँ मरने से मुक्ति अवश्य प्राप्त हो जाती है। काशी "मोक्षदा-पुरी" कही जाती है। मुक्ति की कामना से लोग काशीवास करते हैं और यहाँ मरने में अपना सौभाग्य समझते हैं।

(१७) कीटभृंग—भृंग या भ्रमरी कीडे के विषय में प्रसिद्ध है कि वह दूसरे कीडों को अपने बिल में पकडकर ले आता है और उसके सामने गुनगुनाता है, तो वे कीडे भृंग का रूप धारण कर लेते हैं। जब दो या कई वस्तुएँ एक रूप हो जाती हैं, तो कीटभृंग न्याय कहलाता है।

गुरु-शिष्य का संबंध भृंग और कीट जैसा माना जाता है। भय से भृंग का चिन्तन करते-करते कीड़ा तद्रूप हो जाता है, इसी प्रकार मनुष्य यदि अन्य वस्तु का चिन्तन न कर केवल परमात्मा का चिन्तन करे, तो उसे आत्मज्ञान होता है।

(१८) कुंडलिनी—हठयोग के अनुसार एक सर्पाकार वस्तु, जो मूलाधार में सुषुम्ना नाडी के मूल मे पडी सोती रहती है। योगी इसे जगाकर ऊपर चढ़ाते हैं। वह शरीरस्थ अनेक चक्रों को पार करती हुई मस्तक में सहस्रार चक्र तक जाती है, जहाँ इस पर अमृत वर्षा होती है तभी योगी का योगाभ्यास सफल होता है।

(१६) कुमुदिनी— इसका पुष्प कुमुद चन्द्रमा को देखकर विकसित होता है और प्रातःकाल बन्द हो जाता है। जिस प्रकार कमलिनी का प्रियतम सूर्य होता है उसी प्रकार कुमुदिनी का प्रियतम चन्द्रमा होता है।

कुमुद नाम का एक तारा भी होता है, जो पश्चिम दिशा में केवल एक रात्रि के लिए उदय होता है। इसके उदय होने से दस वर्ष तक दुर्भिक्ष रहता है। इसका एक नाम "कैरव"या 'कुई' भी है।

(२०) कुररी—कुररी क्रौञ्च अथवा टिटहरी नामक एक पक्षी होता है, जिसका विलाप अत्यन्त करुणोत्पादक होता है। सन्तान की मृत्यु से माँ के और पति की मृत्यु से पत्नी के हृदय में जो हाहाकार होता है, उसकी तुलना इस पक्षी के करुण क्रन्दन से की जाती है।

(२१) कुलिश—वज्र या बिजली या हीरे का एक नाम है। यह अपनी कठोरता के लिए प्रसिद्ध है। इन्द्र का अस्त्र वज्र है, इसलिए वह वज्रधर या कुलिशधर कहा जाता है। भूतललोक के स्वामी बलि से डरकर इन्द्र वर्षाकाल में वज्र गिराते है, किन्तु वह पृथ्वी में ही समा जाता है।

(२२) कुश—कुश एक प्रकार की घास होती है। एक बार गरुड ने सर्पों के लिए कुछ घास पर अमृत-पात्र रख दिया था, जिसको इन्द्र उठा ले गया। सर्पों को अमृत न मिला तो वे कुश की नुकीली, तीखी और कडी पत्तियो को ही चाटने लगे, जिससे उनकी जीभ चिरकर एक से दो हो गई। कुश घास पवित्र मानी जाती है। यज्ञों, तर्पणादि और शुभ संस्कारों में इस घास का उपयोग होता है।

कुशाग्र-बुद्धि—तीक्ष्ण बुद्धि की तुलना कुश की पैनी नोक से की जाती है।

कुशासन—पूजा-पाठ में कुश का बना आसन काम में लाया जाता है। कुश घास पर राम-सीता के पुत्र कुश का जन्म हुआ था, अतएव उसका नाम ही कुश रक्खा गया।

(२३) कूकर-शूकर—काम और विषयवासना के प्रतीक दो पशु। दूसरे पर निर्भर रहनेवाले लालची, तुच्छ सेवक की कूकर से तुलना की जाती है गन्दी मलिन घृणित वस्तुओं से प्रेम करनेवाले की तुलना शूकर से की जाती है।

(२४) कूपमण्डूक—कुएँ में रहनेवाला मेंढक जब तक नदी, नद और साग को नहीं देखता, कूप को ही बड़ा समझता है। जो व्यक्ति अपने सीमित स्थान को छोड़कर विशाल जगत् से अनभिज्ञ रहता है, वह कुएँ का मेंढक कहलाता है।

(२५) केतकी—एक बार सब देवताओं में बहस छिड़ गई कि कौन पहले अनादि ज्योतिर्लिंग तक पहुँच सकता है। सब देवता दूर-दूर तीनों लोकों में घूम आये, किन्तु ज्योतिर्लिंग का पता न मिला। ब्रह्माजी अपनी असफलता को व्यक्त करना नहीं चाहते थे। उन्होंने केतकी के कुछ फूल मार्ग में उठा लिये। उन्हीं पुष्पों को दिखा ब्रह्माजी ने प्रमाणित करना चाहा कि वे अनादि ज्योतिर्लिंग तक हो आये। किन्तु शिवजी समझ गये कि यह असत्य है। तब से मिथ्या का साक्षी होने से शिवजी ने केतकी-पुष्प को अपनी पूजा में वर्जित कर दिया।

(२६) कोयल—वसन्त ऋतु में कोयल कूकती है। इस पक्षी का रंग कौआ जैसा काला होता है, किन्तु उसका स्वर बहुत ही कर्णप्रिय, मधुर और सुरीला होता है। अन्य ऋतुओं में कोयल की कूक कम सुनाई पड़ती है, इसलिए यह वसन्त ऋतु की दूत मानी जाती है।

अपने पंचम स्वर में जब वह कूकती है, तो प्रेमियों के प्रेम और विरह को उद्दीप्त करती है। चतुर कोयल अपने अंडे स्वयं नहीं सेती। कौओं के घोंसले में जाकर अंडे दे आती है। मूर्ख कौआ उसे अपना ही अंडा समझता है और

अपने बच्चों की तरह पालता है। बड़े होने पर उनका स्वर पहचानकर कौआ उन्हें अपने घोंसले से उड़ा देता है।

जिस प्रकार कोयल और कौए की पहचान उनके स्वर से होती है, उसी प्रकार एक-सी वेश-भूषा पहने मूर्ख और विद्वान् की पहचान उनके बोलने से ही होती है।

(२७) खंजन—सफेद और काले पंखवाली एक बहुत ही चंचल चिड़िया। इसकी चंचलता और शरीर के आकार से लम्बी, नुकीली और चंचल आँखों की तुलना की जाती है।

(२८) गंगाजल—सब प्रकार के जलों में गंगा का जल सबसे अधिक शुद्ध और पवित्र माना जाता है। इसमें स्नान करने से सब प्रकार के पाप धुल जाते हैं और पुण्य प्राप्त होता है। गंगाजल पीने से तथा मृत्यु-समय मुँह में छोड़ने से स्वर्ग प्राप्त होता है। गंगाजल में कभी कीड़े नहीं पड़ते।

(२९) गंडकी—गंगा की एक सहायक नदी। इसमें काले रंग के गोल-गोल पत्थर मिलते हैं, जो शालग्राम भगवान् कहलाते हैं। शालग्राम भगवान् विष्णु के प्रतीक हैं, अतएव इस पत्थर को भगवान् की मूर्ति मानकर लोग पूजते हैं।

जलंधर दैत्य की पत्नी पतिव्रता वृन्दा (तुलसी) के शाप से भगवान् को 'शिला' बनना पड़ा। पतिव्रता तुलसी के शरीर से एक नदी और एक पौदा बना। तुलसी का पौदा इसी कारण घर-घर में पवित्र माना जाता है और गंडकी नाम की नदी में ही शालिग्राम प्राप्त होते हैं, इसलिए यह नदी परम पुण्यदायिनी हो गई।

(३०) गज—गज के समान मंद गति से चलनेवाली स्त्री सुन्दर मानी जाती है और गजगामिनी कहलाती है। देवी-देवताओं और पुरुषों की भुजा की तुलना हाथी की सूँड से की जाती है। गज ही दसों दिशाओं के रक्षक माने जाते हैं। हाथी दो बार पानी पीता है—एक बार सूँड से, फिर मुँह से, इसलिए द्विप कहलाता है।

गजकूप—जंगली हाथी को पकड़ने के लिए मैदान में एक गड्ढा खोदते

जाती है। चन्दन दो प्रकार का होता है—रक्त और श्वेत। दोनों विशेष-विशे देवताओं की पूजा में प्रयुक्त होते हैं।

(४०) चम्पा—कृष्ण का सेवक भ्रमर चम्पा के फूलों पर नहीं बैठता, कार स्वामी की प्रियतमा राधा का वर्ण चम्पा के समान था। प्रसिद्ध है :

चम्पा तुझ में तीन गुण, रूप रंग अरु बास।
अवगुण तू में कौन है, भँवर न आवे पास॥
चम्पकवर्णी राधिका, भँवर कृष्ण को दास।
या कारण चम्पा तजी, भँवर न आवै पास॥

(४१) चकवा-चकवी—ये जल-पक्षी दिन में तो एक साथ रहते हैं, किन्त रात्रि में नदी के एक किनारे पर मादा और दूसरे किनारे पर नर अलग-अलग हो बिछुड जाते हैं। चकवा-चकवी वियोगावस्था के द्योतक हैं। इन्हें 'चक्रवाक भी कहते हैं।

(४२) चकोर—एक पक्षी जो चन्द्रमा के प्रति अपने अखंड एकरस प्रेम के लिए प्रसिद्ध है। वह चन्द्रमा को रात भर एकटक निहारा करता है। अगारो को तथा आग की चिनगारियों को चन्द्र के विरह में चन्द्रमा की किरणें समझ कर खा जाता है। शरद्कालीन चन्द्रमा से इसे विशेप प्रेम होता है और वह चाँदनी का पान करता है। कबीरदासजी कहते हैं—

लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठो कहा अगार में, जाहि चकोर चबाय॥

(४३) चमगादड़—दिन में बाहर न निकलनेवाला एक स्तनपायी जन्तु जो चूहे की तरह होता है, किन्तु पक्षियों के समान पंख होने से पेट पर उलटा लटका रहता है। उल्लू के समान इसे भी निर्जन अंधकारमय स्थान प्रिय है। खँडहरों में या वृक्षों की डाल पर ये झुंड के झुंड दिन में लटके रहते हैं। और रात में उड़ते हैं। एक बार पशु-पक्षियों का युद्ध हुआ। चमगादड़ पशुओं के जीतने पर अपने को पशु कहता और पक्षियों के जीतने पर अपने को पक्षी कहता। तब से दोनों पक्षों से मित्रता का संबंध जोड़नेवाले कायर मनुष्यों को "चमगादड़" कहा जाता है।

(४४) चातक—एक पक्षी जो नदी, तालाब, सरोवर आदि का संचित जल नहीं पीता। वर्षाजल भी नहीं पीता। वह केवल स्वाति-नक्षत्र की बूँदों से ही अपनी प्यास बुझाता है। काले-काले बादलों से निरन्तर याचना करने में चातक कभी नहीं थकता। चातक अनन्य प्रेम का प्रतीक है। कबीरदास का यह दोहा प्रसिद्ध है :—

चातक सुतहि पढ़ावही, आन नीर मति लेय।
मम कुल यही सुभाव है, स्वाति बूँद चित देय॥

चातक पक्षी ही पपीहा कहलाता है। 'पपीहा' काले बादलों को देखकर वसन्त और वर्षा-ऋतु में बड़े मधुर शब्द से 'पिय-पिय' की रट लगाता है। इसके स्वर को सुन विरहिणी का दुःख और बढ़ जाता है।

(४५) जल—पंच महाभूतों में से एक तत्त्व। जल से बना हुआ बुलबुला क्षण भर रहकर टूट जाता है, अतएव क्षणभंगुर वस्तु या पदार्थ "पानी का बुलबुला" कहलाता है। जल से मीन, कमल, कुमुद और हंस को बहुत प्रीति होती है। जल को पृथ्वी से बहुत प्रेम होता है। इस पृथ्वी से जो जल भाप बनकर आकाश में मेघ रूप में एकत्रित होता है, वह फिर वर्षाजल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है। आत्मा और परमात्मा का संबंध जल और जल कुंभ से, या जलधि और जल बिन्दु से माना गया है।

(४६) तुलसी—एक पौधा। तुलसी भगवान् शालग्राम की पत्नी होने से अत्यन्त पवित्र मानी जाती है।

राधा की सखी "तुलसी" नामक एक गोपी राधा के शाप से पृथ्वी पर राजकन्या वृन्दा होकर जन्मी। उसने उग्र तप कर ब्रह्माजी से वर माँगा कि मैं कृष्ण भगवान् को पति रूप में वरण करना चाहती हूँ। तब तुलसी के शरीर से गंडकी नदी और केश से तुलसी वृक्ष उत्पन्न हुआ, जिसको भगवान् ने शिला होकर स्वीकार किया। तुलसी से विवाह कर कन्याओं के वैधव्य योग का खंडन किया जाता है।

(४७) त्रिशूल—महादेवजी का प्रिय अस्त्र, जिस पर काशी नगरी अवस्थि
मानी जाती है।

(४८) दर्पण—वह काँच, जिस पर उज्ज्वलता के कारण प्रतिबिम्ब पडता
अत: यह स्वच्छता, उज्ज्वलता, निर्मलता का प्रतीक है। जैसे दर्पण मैला होने
प्रतिबिम्ब साफ नहीं दिखलाई पडता, वैसे ही मन मैला होने पर भगवान्
साक्षात्कार नहीं होता।

प्रतिबिम्बवाद—वेदान्त में जीव ईश्वर का प्रतिबिम्बमात्र समझा जा
है। भक्तों को प्रकृति में ईश्वर का प्रतिबिम्ब दिखलाई पडता है।

(४९) दव—वन में बाँस के वृक्ष परस्पर रगड़ खाकर जल उठते हैं, जि
समस्त वन में आग लग जाती है। वन की अग्नि दावाग्नि कहलाती है।

(५०) दादुर—जल और स्थल दोनों में रहनेवाला जन्तु। मंडूक
मेढक वर्षा काल में टर्र-टर्र ध्वनि से रात भर निरर्थक चिल्लाते हैं। अत
यह ऐसे मूर्ख, जड और नीरस व्यक्ति का प्रतीक है, जो व्यर्थ अपना विज्ञा
करने के लिए शोर मचाता है। वर्षा में उत्पन्न होने के कारण यह "वर्षा
कहलाता है। शीतकाल में मंडूक पृथ्वी में मुँह छिपाये हुए मिट्टी
अन्दर रहते हैं।

(५१) ध्रुव—राजा उत्तानपाद का ध्रुव नामक पुत्र, जो अपनी भगवद्भ
से ध्रुवलोक में पहुँचा, ध्रुव नामक अचल तारा बन गया था। निश्चित, ह
अचल, एक ही स्थान में, रहनेवाला "ध्रुव" कहलाता है।

(५२) नवग्रह—फलित ज्योतिष मे सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, श
शनि, राहु और केतु नवग्रह माने जाते हैं। इन ग्रहों के अपने अपने वि
रंग और रत्न होते हैं। मङ्गल और सूर्य का रंग लाल होता है, चन्द्रमा
शुक्र का सफेद, गुरु और बुध का पीला, शनि और राहु-केतु का काला ह
है। सूर्य का रत्न माणिक, चन्द्रमा का मोती, मङ्गल का मूँगा, बुध का प
गुरु का पुखराज, शुक्र का हीरा, शनि का नीलम, राहु का गोमेद और केतु
लहसुनिया होता है।

(५३) नवनीत या मक्खन—वह दूध-दही के मथने से निकाला हुआ

कारक तत्त्व है अतएव सार तत्त्व का प्रतीक है। श्रीकृष्ण को मक्खन वहुत प्रिय था, जिसे वे गोपियों के घर से चुरा लाते थे, इसलिए "माखनचोर" कहलाते थे। दूध-दही के मथने से मक्खन निकलता है। सफेद कोमल सुकुमार, उज्ज्वल नरम वस्तु मक्खन जैसी कही जाती है।

(५४) नारियल—यह खजूर के वृक्ष जैसा ऊँचा वृक्ष होता है। इसके फल से देवताओं का पूजन होता है। किसी को विदा करते समय हाथों में नारियल दिया जाता है, अतएव नारियल देने के अर्थ है सम्मानपूर्वक विदा करना। नारियल एक ऐसे व्यक्ति का प्रतीक है जो ऊपर से कठोर प्रतीत होता है किन्तु जिसका हृदय वडा कोमल और मधुर होता है।

(५५) न्याय :—(क) अंधगजन्याय—सात अंधे हाथी को टटोलकर हाथी के प्रत्येक अंग को हाथी समझ वैठे। अतएव अज्ञानी मूर्ख व्यक्ति जब अपूर्ण ज्ञान को अपनी बुद्धि के अनुसार पूर्ण ज्ञान समझ वैठता है, तो इस उक्ति का प्रयोग होता हे।

(ख) अरण्यरोदन न्याय—जंगल में रोने से कोई नहीं सुनता, अतएव जहाँ कोई सुननेवाला न हो, वहाँ इस उक्ति का प्रयोग होता है।

(ग) काकतालीय न्याय—संयोगवश कोई वात होने पर इस उक्ति का प्रयोग होता है, जैसे ताड के वृक्ष के नीचे लेटे पथिक पर जब कौए के उडने के साथ ही साथ पका फल भी गिरता है, तो वह समझता है, कौए के उड़ने से फल गिरा।

(घ) घुणाक्षर न्याय—घुन नामक कीडों के काटने और खाने से लकडी में अनायास ही अक्षर से लिख जाते हैं। अतएव ऐसी कृति या रचना, जो अपने आप ही अनजाने में हो जाय।

(ङ) जलतरङ्ग न्याय—जल से ही तरंगें उठती हैं। दोनों एक ही हैं; किन्तु नाम भिन्न-भिन्न हैं। अतएव जहाँ दो में अभेद दिखाना हो, वहाँ इस उक्ति का प्रयोग होता है।

(च) तिल-तंडुल न्याय—चावल और तिल दोनों मिले रहते हैं; किन्तु स्पष्टतः अलग-अलग दिखलाई पडते हैं।

कारक तत्त्व है अतएव सार तत्त्व का प्रतीक है। श्रीकृष्ण को मक्खन बहुत प्रिय था, जिसे वे गोपियो के घर से चुरा लाते थे, इसलिए "माखनचोर" कहलाते थे। दूध-दही के मथने से मक्खन निकलता है। सफेद कोमल सुकुमार, उज्ज्वल नरम वस्तु मक्खन जैसी कही जाती है।

(५४) नारियल—यह खजूर के वृक्ष जैसा ऊँचा वृक्ष होता है। इसके फल से देवताओं का पूजन होता है। किसी को विदा करते समय हाथों में नारियल दिया जाता है, अतएव नारियल देने के अर्थ हैं सम्मानपूर्वक विदा करना। नारियल एक ऐसे व्यक्ति का प्रतीक है जो ऊपर से कठोर प्रतीत होता है किन्तु जिसका हृदय बडा कोमल और मधुर होता है।

(५५) न्याय :—(क) अंधगजन्याय—सात अंधे हाथी को टटोलकर हाथी के प्रत्येक अंग को हाथी समझ बैठे। अतएव अज्ञानी मूर्ख व्यक्ति जब अपूर्ण ज्ञान को अपनी बुद्धि के अनुसार पूर्ण ज्ञान समझ बैठता है, तो इस उक्ति का प्रयोग होता है।

(ख) अरण्यरोदन न्याय—जंगल में रोने से कोई नहीं सुनता, अतएव जहाँ कोई सुननेवाला न हो, वहाँ इस उक्ति का प्रयोग होता है।

(ग) काकतालीय न्याय—संयोगवश कोई बात होने पर इस उक्ति का प्रयोग होता है, जैसे ताड के वृक्ष के नीचे लेटे पथिक पर जब कौए के उडने के साथ ही साथ पका फल भी गिरता है, तो वह समझता है, कौए के उडने से फल गिरा।

(घ) घुणाक्षर न्याय—घुन नामक कीडों के काटने और खाने से लकडी में अनायास ही अक्षर से लिख जाते है। अतएव ऐसी कृति या रचना, जो अपने आप ही अनजाने में हो जाय।

(ङ) जलतरङ्ग न्याय—जल से ही तरंगें उठती है। दोनों एक ही हैं; किन्तु नाम भिन्न-भिन्न हैं। अतएव जहाँ दो में अभेद दिखाना हो, वहाँ इस उक्ति का प्रयोग होता है।

(च) तिल-तंडुल न्याय—चावल और तिल दोनो मिले रहते हैं; किन्तु स्पष्टतः अलग-अलग दिखलाई पडते हैं।

(छ) दशम न्याय—दस आदमी विदेश जाकर गिनने लगे कि कोई खोया तो नहीं। सब ने गिना, पर सब अपने को गिनना भूल गये। तब एक पथिक ने गिनकर कहा—दसवें तुम हो। अज्ञानी व्यक्ति को गुरु से कैसे ज्ञान मिलता है, यही इस उक्ति से बोध होता है।

(ज) पिष्टपेषण न्याय—पिसे को पीसना निरर्थक होता है। किए हुए काम को फिर से करना व्यर्थ है।

(झ) रज्जुसर्प न्याय—अज्ञानी भ्रमवश अँधकार में रस्सी को सर्प समझ लेता है। मायामय जगत् सत्य तभी तक दिखलाई पड़ता है, जब तक ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता।

(ञ) वह्निधूम न्याय—कार्य को देखकर कारण जानना, जिस प्रकार धुएँ को देखकर अग्नि के अस्तित्व को समझ लिया जाता है।

(ट) बिल्वखल्वाट न्याय—धूप से व्याकुल गंजा छाया के लोभ से बेल के वृक्ष के नीचे बैठा ही था कि एक बेल उसके सिर पर गिरा। कोई कार्य करने पर जब विपत्तियाँ एक के बाद एक आती जायँ, तब इस उक्ति का प्रयोग होता है।

(ठ) सुन्दोपसुन्द न्याय—तिलोत्तमा के लिए सुन्द और उपसुन्द नाम के दो दैत्यों में फूट पड़ गई थी। अतएव परस्पर फूट से नाश होने पर इस उक्ति का प्रयोग होता है।

(५६) पतंग—एक विशेष कीड़ा, जिसके पंख निकल आने पर दीपक की लौ से विशेष प्रेम हो जाता है। पतंग दीपक के निकट आकर उड़ता है, तो उसके पर जल जाते हैं, और वह स्वयं झुलसकर मर जाता है।

पतंग अनन्य प्रेम का प्रतीक है, जो अपने प्रेमी के लिए अपने प्राणों को भी न्योछावर कर देता है।

(५७) परशु—हैहयवंश का नाश करने के लिए भगवान् के एक अवतार परशुराम का अस्त्र। इस फरसे से उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर दिया था।

(५८) पारस—एक प्रकार का काल्पनिक पत्थर। इसके स्पर्श से लोहा भी सुवर्ण हो जाता है। सत्संग अथवा लाभदायक उपयोगी वस्तु का प्रतीक है। यह 'स्पर्शमणि' भी कहलाता है।

(५९) पाषाण—पाहन या पत्थर—कंजूस, कठोर, दया-माया करुणादि से हीन, गतिहीन व्यक्ति का प्रतीक। पत्थर तिरस्कार या तुच्छता को भी व्यक्त करता है। यों तो पत्थर का सर्वत्र तिरस्कार होता है, किन्तु उसी पत्थर की मूर्ति बन जाने से उसकी पूजा होती है। पत्थर मूर्खता, जडता का भी प्रतीक है। शिला से अहल्या और लक्ष्मी नारायण विष्णु भगवान् दोनों के अर्थ होते हैं क्योंकि दोनों को शापवश पत्थर, पाहन या शिला बनना पडा था। बिल्लौरी पत्थर या स्फटिक बहुत ही स्वच्छ, पारदर्शक पत्थर होता है।

पार्वती ने एक बार देवताओं से रुष्ट होकर शाप दिया था, जिससे उन्हें मर्त्यलोक में प्रस्तर-प्रतिमा होना पडा।

(६०) बकुल या मौलश्री—एक वृक्ष, जो सुन्दरियो के स्पर्श से फूलो से लद जाता है। वसन्त ऋतु में इसके पुष्प अपनी मादक सुगन्ध से सबका मन हरते है।

(६१) बड़वानल—समुद्र की अग्नि। और्व मुनि ने अपनी क्रोधाग्नि को बडवा (घोडी) के रूप में समुद्र में डाल दिया था।

(६२) बगुला भगत—श्वेत रंग का, लम्बी टाँगोंवाला बगुला नाम का एक पक्षी, जो तालाब में चुपचाप मैत्री भाव से खडा रहता है; किन्तु मछली, केकड़े आदि पकडने की ताक में रहता है। अतएव मित्र-रूप में आये हुए धोखे-बाज शत्रु अथवा पाखंडी कपटी पुरुष का प्रतीक।

(६३) बाँसुरी—बाँस का बना हुआ एक वाद्य जिसके फूँकने से मधुर स्वर निकलता है। श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाते थे इसलिए वंशीधर और मुरलीधर कहलाते थे। मुरली श्रीकृष्ण को राधा से भी अधिक प्रिय थी। मुरली भगवान के परम भक्तों का प्रतीक है। मुरली की तप और साधना भक्तो के लिए अनुकरणीय है। प्रथम तो मुरली वंश-कुल में जन्म लेकर वन में वर्षों शीत-धूप और वर्षा सहती है। तत्पश्चात् बाँस काटकर मुरली के अंग में जलते हुए लोहे

से छेद किया जाता है। वह अपने अन्तर को समस्त विकार राग-विराग, अह से शून्य कर खोखला कर देती है जिससे भगवान् जैसी फूँक मारते है वैर राग यह उत्पन्न करती है। अतएव मुरली आत्मसमर्पण का उच्चादर्श है जिस कारण भगवान के अधररस के पान करने का उसे ही सौभाग्य प्राप्त है।

(६४) वानर, कवि या वन्दर—एक पशु होता है, जो सदैव हिन्दुओं द्वा महावीर हनुमानजी के समान पूज्य माना जाता है। वन्दर मनुष्यों की नक करने के लिए प्रसिद्ध है। शीतकाल में बन्दर लाल-लाल घुँघची को अंग समझ तापने लगते हैं। ऊधमी, चंचल, नटखट, बालक "वानर" क जाते हैं।

बदरों का शरीर-मनुष्य शरीर से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है, अत आ मनुष्य होने के कारण ये वा + नर कहलाने लगे। बंदर सामने देखकर गुर्राता इसी से "बदर-घुड़की" शब्द का प्रयोग केवल डरानेवाली मिथ्या डाँट के अ में होता है।

अर्जुन के रथ पर कपिध्वज नामक पताका थी, अर्थात् अर्जुन के झडे हनुमानजी बैठते थे। कहते हैं, जहाँ कहीं भी रामायण क कथा कही जाती वहाँ हनुमानजी उसे सुनने को अवश्य पधारते हैं। वानर शाखामृग भी कहला है, क्योंकि यह वृक्ष की एक शाखा से दूसरी पर कूदता-फिरता है।

(६५) बिम्बफल—कुँदरू का फल जब पककर लाल हो जाता है, उसकी लालिमा से ओष्ठ की तुलना की जाती है। कुँदरू का फल तोते बहुत प्रिय है।

(६६) विड़ाल या बिल्ली—एक मासाहारी पशु, जो शेर की मौसी के न से प्रसिद्ध है। शेर को इसने अपने सब गुण सिखाये, केवल एक गुण पेड चढ़ना नहीं सिखाया। यदि सिखा देती तो वह शेर-जैसे भयंकर जीव से अ प्राणों की रक्षा किस प्रकार करती ? बिल्ली का भक्ष्य चूहा है। बिल्ली स्वा भक्त नहीं होती, स्वार्थी होती है। बिल्ली की मृत्यु शीघ्र नहीं होती। नौ मरती है तो नौ बार जीती है।

(६७) भौंरा—एक श्याम वर्ण का उडनेवाला षट्पद कीडा। कीड़े के रूप में इसका जन्म बाँस की खोह से होता है। पंख निकल आने पर बाँस को काट कर यह उडता है और फूलों का रस पान करता है। इसे कमल का फूल बहुत प्रिय है। रस पान करने में यह इतना मग्न हो जाता है कि सूर्यास्त के समय जब कमल की पंखडियाँ बंद होने लगती है, तब यह भी उसमें रात भर बन्द रहता है; किन्तु प्रेम के कारण कमल की सुकुमार पंखडियों को काटकर बाहर नहीं निकलता। यह चंपा के फूलो के अतिरिक्त सब फूलो पर बैठता है। एक फूल को छोड दूसरे फूल पर बैठता है, अतएव स्वार्थी, कामुक, लोभी प्रेमी के लिए भौंरे की उपमा दी जाती है। गोपियों ने ऊधो के ज्ञान-संदेश से खीझ कर उन्हे भी भौंरा कहकर खूब खरी-खोटी सुनाई थीं। ऊधो और गोपी का संवाद "भ्रमर गीत" के नाम से प्रसिद्ध है।

(६८) मगंलाचरण—मङ्गल की कामना से कार्य को आरम्भ करते समय जो श्लोक या पद लिखे या कहे जाते हैं वे मङ्गलाचरण कहलाते है। इन पदो में देवी देवताओं की विशेष कर अपने इष्टदेव की स्तुति रहती है।

(६९) महिष या भैंस—यह यमराज का वाहन है। ध्वजा पर महिष का चिह्न होने से यमराज "महिषध्वज" कहलाता है। महिष नामक राक्षस को मारने से दुर्गा महिषमर्दिनी कहलाती हैं। भैंस नीरस और मूर्ख व्यक्ति का प्रतीक है। भैंस के आगे बीन बाजे भैंस पडी पगुराय "काला अक्षर भैंस बराबर।।"

(७०) मगहर—उत्तर प्रदेश में एक अपवित्र स्थान, जहाँ त्रिशंकु की छाया पडने के कारण मनुष्य मरने पर पुण्यक्षीण होकर नरकवासी होता है। एक और मत से मगहर स्थान में मरनेवाले को अगले जन्म में गदहे का जन्म लेना पडता है। उसे मुक्ति नहीं मिलती।

(७१) मयूर—वर्षा प्रारंभ होने पर सुन्दर मोर नाचने लगते है। नर-मयूर, मयूरी को आकर्षित करने के लिए मतवाला हो नाचता है। मयूरी के पंख-पुच्छ नहीं होते। वर्षा के समाप्त होने पर मोर के पंख गिरने लगते हैं।

कृष्णजी को मोरपंख का मुकुट बहुत प्रिय था। पार्वतीजी भी मोरपंख को कानों में आभरण के समान धारण करती थीं। मोरपंख में बनी आँखें अथवा मोरपंख में बनी चन्द्राकार चित्तियाँ-मोर चन्द्रिका कहलाती है। शिवजी के पुत्र कार्त्तिकेय का वाहन मयूर था।

मोर काले-काले बादलों को देख उनका गर्जन सुन, मत्त होकर हर्ष से नाचने लगता है और कर्णकटु-स्वर से कूकता है। अतएव मयूर का नृत्य अपार हर्ष का सूचक है। मोर के पैर बड़े कुरूप होते हैं।

(७२) मालती—मालती लता के श्वेत, सुगधित पुष्प भौंरो को बहुत प्रिय हैं। यह लता वर्षा और शरद काल में सफेद फूलों से लद जाती है।

(७३) मीन—विशाल और सुन्दर नेत्रों की तुलना मछली की आकृति से की जाती है। नेत्र मछली के समान चचल होते हैं। नेत्र और मछली दोनों को जल (अश्रु) बहुत प्रिय है। मछली जल के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती, अतएव उसका प्रेम सच्चे प्रेम का द्योतक है। कामदेव के झंडे पर मछली का चिह्न है। मीन एक राशि का भी नाम है।

(७४) मुक्ता—स्वाति नक्षत्र का जल जब समुद्र की सीप पर पड़ता है, तो उससे मोती उत्पन्न होता है। हाथी, मेघ, शूकर, मछली, सीपी, बाँस, साँप और मेंढक इन आठ वस्तुओं में मोती पैदा होता है। सीपी का मोती ही बहुमूल्य माना जाता है। नौ रत्नों में मोती की गणना होती है। मोती स्वच्छता, सुन्दरता और सुघड़ता का प्रतीक माना जाता है। दाँतों की तुलना मोती से की जाती है।

(७५) मूषक या चूहा—गणेशजी का वाहन है। मूषक की उपमा उस दुष्ट व्यक्ति से दी जाती है जो बिना किसी कारण, अपनी स्वार्थ-सिद्धि न होने पर भी दूसरे की हानि किया करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं :—

खल बिन स्वारथ पर अपकारी।
अहि मूषिक इव सुनु उरगारी॥

(७६) मृग या हिरन—इसके आतुर और किसी को खोजते हुए मदभरे

नयनों से सुन्दर नेत्रों की तुलना की जाती है। मृग को संगीत से बडा प्रेम होता है, संगीत से आकर्षित हो वह तनमन की सुधि भूलकर जाल में फँस जाता है। मृगचर्म—हिरन का चमडा—पवित्र माना जाता है। साधु संन्यासी उसका आसन की तरह प्रयोग करते हैं। कस्तूरी-मृग की नाभि से कस्तूरी निकलती है।

(७७) मृगतृष्णा—मैदानों और रेगिस्तानों में धूप के कारण दूर से जल की लहरों का मिथ्या भ्रम हो जाता है। मृग उसे बहता हुआ जल समझकर उस दिशा में दौडता है, किन्तु उस स्थान पर पहुंचकर निराश हो, फिर दूर पर "मृग जल या मृग मरीचिका" देखता है तो फिर दौडता है। इस प्रकार उसे निरन्तर धोखा होता है, अतएव मिथ्या वस्तु जिससे निरन्तर धोखा हो, मृगतृष्णा कहलाती है। पुत्र-कलत्र, धर्म-धाम इत्यादि मृगजल कहे जाते है।

(७८) मेघ—बादल या मेघ इन्द्र की सेना के योद्धा समझे जाते हैं। काले-काले बादलों के वर्ण से श्रीकृष्ण के वर्ण की समानता होने से वे "घन श्याम" कहे जाने लगे। मेघ-गर्जन के समय वेदाध्ययन तथा यज्ञोपवीत निषिद्ध है। प्रलयकालीन मेघों में "मेघवर्ण" और "संवर्तक" मेघ प्रसिद्ध हैं। वायु के चलने से मेघ-माला तितर-बितर हो जाती है। काले-काले बादलों में जब बिजली कडकती है, तो एक तीव्र प्रकाश की चंचल रेखा दिखलाई पडती है, जो विद्युत्‌रेखा, चपला या चंचला कहलाती है। बिजली चंचलता का प्रतीक है।

(७९) यमुना—एक नदी, जो सूर्य की पुत्री और यम की बहिन होने से 'भानुजा' और 'यमुना' कहलाती है। इसमें स्नान करने से स्वर्ग प्राप्त होता है और स्नान करनेवालों के समस्त अपराधों को यमराज क्षमा कर पापो का दंड नहीं देते। भैयादूज (यमद्वितीया) के दिन यमुना का भ्रातृप्रेम स्मरणीय है।

(८०) रात्रि—रात अंधकार, कष्टपूर्ण जीवन, दुःख और अज्ञानता की प्रतीक है। कुमुदनी रात को खिलती है। रातकी रानी और रजनी-गंधानामक पुष्प रात को ही महकते है। राक्षस रजनीचर कहलाते हैं, क्योंकि वे रात भर घूमते हैं। चन्द्रमा रजनी-पति और रजनीश है। सायं-काल का समय रजनीमुख कहलाता है। वर्षा ऋतु में रात्रि में अनेक जुगनू चमकते है। रात में असंख्य नक्षत्रगण भी चमकते है, किन्तु रजनी का अंध-

खेलते हैं। इसकी बिसात में ६४ खाने होते हैं। सोलह मुहरों (१ बादशाह, १ वजीर, दो ऊँट, दो घोड़े, दो हाथी और ८ प्यादों) से यह खेल खेला जाता है। वजीर की चाल टेढ़ी होती है। प्यादा जब वजीर के घर पर आकर वजीर बन जाता है तो उसकी चाल भी टेढ़ी हो जाती है। इसी प्रकार तुच्छ व्यक्ति उच्च पद को प्राप्त कर इतराने लगते हैं। यह संसार शतरज की बिसात के समान माना गया है। पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, मनुष्य सब इस बिसात के मुहरे हैं, जो विधाता के इशारे पर घूमते हैं।

(८९) शुक-सारिका—अथवा तोता-मैना पढ़ाने से मनुष्य की तरह बोलने लगते हैं, किन्तु समझते कुछ नहीं।

शुकफल—शुक सेमर के वृक्ष के लाल-लाल फूलों से आकर्षित हो सोचता है कि जब इसके फूल इतने सुन्दर होते हैं, तो फल तो और भी अधिक सुन्दर और स्वादिष्ट होंगे। कुछ दिन वह इसी लोभ में सेमर के वृक्ष की सेवा करता है। एक दिन जब काले-काले फलों के चटकने से रुई उड़ने लगती है, तो वह निराश होकर उस वृक्ष पर बैठना छोड़ देता है।

शुक नलिका न्याय अथवा "नलनी के सुअटा" के अर्थ हैं लोभ के कारण फँसना, क्योंकि तोता खोखली नली पर बैठते ही औंधा हो लटक जाता है, जिससे वह फँस जाता है।

कीर या शुक को लाल अनार या लाल मिर्च बहुत प्रिय होती है। तोते की चोंच के समान ऊँची और नुकीली स्त्री-पुरुषों की नाक सुन्दर मानी जाती है। शुक और पिक कामदेव के वाहन कहे जाते हैं। शुक सारिका उषःकाल में चहचहाते हैं और मधुर कलरव से सोते हुए संसार को जगाते हैं।

(९०) शुक्र—आकाश का एक सबसे अधिक चमकनेवाला शुभाशुभ फल का द्योतक तारा जो दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। शुक्राचार्य भृगु मुनि के पुत्र थे। दैत्यराज बलि को पृथ्वी दान करते समय शुक्राचार्य उन्हें रोकने लगे, तो सींक से उनकी एक आँख फूट गई थी। अतएव काना आदमी शुक्राचार्य कहा जाता है। शुक्राचार्य का एक नाम 'उशना' है, जो उनकी विद्वत्ता का द्योतक है। शुक्र तारा जब अस्त हो जाता है, तो कोई मांगलिक कार्य या

ात्रा नहीं की जाती। शुक्र नक्षत्र केवल संध्या काल और उपःकाल में ही दृष्टि-ोचर होता है।

(६१) शुतुरमुर्ग—रेगिस्तान में रहनेवाला एक बहुत बडा विदेशी पक्षी। ाह उड नहीं सकता, किन्तु घोड़े से भी अधिक तेज गति से दौड सकता है। ्सके अंडे और पंख बहुमूल्य होते हैं। शुतुरमुर्ग का स्वभाव होता है कि शत्रु ो देखकर यह जब भयभीत हो जाता है तो अपना मुँह बालू में धँसा लेता है और स्थिर खडा हो जाता है। मूर्खतावश वह यह सोचता है कि मैं किसी को नहीं देखूँगा, तो दूसरे भी मुझे न देख सकेंगे। इस प्रकार की पलायन वृत्ति ुतुरमुर्गी वृत्ति कहलाती है।

(६२) सर्प—रेंगनेवाला एक प्रसिद्ध कीडा। उर से रेंगने के कारण इसे 'उरग' कहते हैं। जिस सर्प के फन होता है, वही 'नाग' कहलाता है। वृद्ध सर्पों के मस्तक पर एक द्युतिमान् मणि होती है, जो रात्रि के अंधकार में चारों ओर प्रकाश करती है। इस मणि के खोने से सर्प अंधा हो जाता है। ऐसे मणिधर नाग गड़े हुए धन की रक्षा किया करते हैं। चूहे के धोखे में साँप यदि छछूँदर को पकड ले, तो उसे खाने पर तो वह मर जाता है; किन्तु यदि न खाय और छोड़ दे, तो वह अंधा हो जाता है। अतएव साँप-छछूँदर की दशा भारी असमंजस की दशा कहलाती है। सर्प कुटिल व्यक्ति का प्रतीक है। उसकी चाल ही बडी कुटिल और टेढी-मेढी होती है।

विषदन्त—सर्प अपने विषैले दाँतों से जिसको काट लेता है, वह मर जाता है। सर्प काटने से जिसकी मृत्यु हो जाती है, उसे जलाया नहीं जाता; बल्कि दफना या प्रवाहित कर दिया जाता है। उसका विषदन्त तोडने से वह निरस्त्र हो जाता है। मोर, गरुड और नेवला साँप के शत्रु होते हैं। सर्प को संगीत से बहुत प्रेम होता है। सर्पराज सहस्रफन शेषनाग पर विष्णु भगवान् क्षीर सागर में शयन करते हैं। सर्प के समान गठीली, सुघड भुजाएँ और सर्प के समान काले, चिकने, कुंचित केश सुन्दर माने जाते हैं। सर्पों को बाँस और चन्दन का पेड बहुत प्रिय है। राजा जनमेजय ने सर्प-यज्ञ किया था, अतएव वे "सर्प सत्री" कहलाते हैं। विषमय संसार "भवव्याल" कहलाता है। गरुड के द्वारा लाये अमृत

को ढूँढने के लिए कुशघास चाटने से सर्पों की जीभ बीच से चिर गई, इस-लिए वे "द्विजिह्व" (दो जीभवाले) कहलाते हैं।

विषकन्या—सर्पों में पली अथवा सर्पविष के कारण विषैली पाप ग्रहवाली कन्याएँ विषकन्या कहलाती हैं। उनके संसर्ग से पुरुषों की मृत्यु हो जाती है।

(६३) समुद्र—समुद्र अपनी गंभीरता के लिए प्रसिद्ध है। समुद्र मंथन के समय इसमें से चौदह रत्न निकले थे। सब प्रकार के रत्न मोती, हीरा, पन्ना आदि समुद्र में से ही निकलते हैं, अतएव वह "रत्नाकर" कहलाता है। भगवान् समुद्र में ही योगनिद्रा के समय शयन करते हैं। इसलिए नार (जल) में शयन करने से नारायण कहलाते हैं। सब नदियाँ समुद्र में गिरती हैं, अतएव नदी और समुद्र में पत्नी और पति का सम्बंध माना जाता है। अगस्त्य ऋषि ने राम नाम का उच्चारण कर समुद्र के पानी को पी लिया था; किन्तु फिर लघुशंका से निकाल दिया, इसलिए समुद्र का जल खारा हो गया है। समुद्र अपनी मर्यादा कभी भंग नहीं करता। पृथ्वी में तीन भाग समुद्र का जल है और एक भाग स्थल है, किन्तु समुद्र कभी अपनी मर्यादा को त्यागकर स्थल को प्लावित नहीं करता। पृथ्वी पर उसकी लहरें आती हैं, पर अपनी सीमा में पुनः लौट जाती हैं। यह मर्यादा पुरुषोत्तम का प्रतीक है। समुद्र में फेंकी वस्तु वापस लौट आती है। रत्नाकर होने के कारण उसकी लहरें तुच्छ वस्तुओं को लाकर फिर किनारे पर पटक देती हैं।

(६४) सिंह—पशुओं में सबसे अधिक बलवान और पराक्रमी होने से सिंह पशुओं का राजा माना जाता है। बलवान और पराक्रमी व्यक्ति पुरुषसिंह कह-लाता है। दुर्गा का वाहन सिंह है अतः वह "सिंहवाहिनी" कहलाती है। सिंह के समान पतली कमरवाली स्त्री "सिंहोदरी" कहलाती है। सिंह का गर्जन बड़ा भयानक होता है, अतएव किसी व्यक्ति के भयंकर उच्च स्वर को "सिंहनाद" कहते हैं। उत्साहवर्धक, वीरतासूचक नारे भी सिंहनाद कहलाते हैं।

(६५) सुवर्ण—सुन्दर चमचमाती पीले रंग की एक बहुमूल्य सर्वश्रेष्ठ धातु। सोने के आभूषण बनते हैं। सुवर्ण में कलि का निवास माना जाता है। सोने का मुकुट पहनने से भ्रष्ट-बुद्धि राजा परीक्षित ने मुनि के गले में मरा

हुआ सर्प डाल दिया था। सोना बहुत पवित्र धातु माना जाता है। सोना लक्ष्मी का रूप भी समझा जाता है। कसौटी नामक काले पत्थर पर कसकर सोने की परीक्षा की जाती है।

सोने में सब गुण होते है केवल सुगंधि ही नही होती। तेजस्वी व्यक्तियों का शरीर सुवर्ण के समान दीप्त और कान्तिमान होता है। सुवर्ण तप और साधना का प्रतीक हे। प्रचंड अग्नि में तपाकर सोना जिस प्रकार शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार अनेक साधनाओं, कष्टों और आत्मत्याग से मनुष्य का मन शुद्ध हो जाता है। सुन्दर स्त्रियों की देह का वर्ण सोने के समान कान्तिमान कहा गया है।

(९६) सूर्य—सबसे बडा और श्रेष्ठ ग्रह। इसके चारों ओर पृथ्वी, शनि, मंगल आदि ग्रह परिक्रमा करते हैं। जीवनदाता होने के कारण सूर्य की देवताओं के तुल्य उपासना की जाती है। सूर्य आकाश का स्वामी है। इसके रथ में सात घोड़े हैं और कश्यप पुत्र अरुण उसके सारथि हैं। अदिति का पुत्र होने से यह "आदित्य" कहलाता है। सूर्य का नाम विवस्वत् भी है इसने घोडा होकर देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमारों को जन्म दिया था। सूर्य के अन्य पुत्रों में शनि, यम, वरुण, सुग्रीव और कर्ण की गणना होती है। बिजली और यमुना सूर्य की पुत्रियाँ हैं। सूर्य कान्तिमणि को सूर्य के सामने रखने से अग्नि उत्पन्न हो जाती है। अंधकाररूपी अज्ञान को दूर करने के लिए आलोकरूपी ज्ञान की आवश्यकता होती है, अतः सूर्य का आलोक, प्रकाश, कान्ति और ज्ञान का प्रतीक है। बारह प्रकार के सूर्य होने से सूर्य बारह की संख्या का द्योतक है। सूर्य निष्पक्ष होता है। उसकी किरणें राजा, रंक, ब्राह्मण और शूद्र सबके घर जाती हैं। कमल का फूल सूर्य को देखकर खिलता है। सूरजमुखी का फूल सूर्य की ओर सदैव मुख किए रहता है। राहु जब सूर्य को खाने दौडता है, तो सूर्य में ग्रहण लगता है। सूर्य प्रातःकाल ब्रह्मा-रूप, मध्याह्नकाल मे शिवरूप और सायंकाल में विष्णुरूप माना जाता है।

बारह आदित्यों में से ग्यारह आदित्यो को हनुमानजी खा गए थे। देवताओं के अनुनय-विनय से एक सूर्य ही बच गया।

(९७) स्वाति नक्षत्र—नक्षत्रो में से एक नक्षत्र। इस नक्षत्र में जब वर्षा

होती है, तो मोती उत्पन्न होता है। "चातक" नाम के पक्षी की तृष्णा इसी के जल से दूर होती है।

(६८) हंस—सरोवर में रहनेवाला एक सफेद रंग का पक्षी। वर्षाकाल में सरोवर का जल गँदला हो जाने से हंस मानसरोवर में चले जाते हैं और फिर शरद ऋतु में वहाँ सर्दी अधिक पड़ने से लौट आते हैं। जिन जलाशयों में हंस रहते हैं, वे शुभ फलप्रद माने जाते हैं। हंस के जोड़े उर्वरता और रस के प्रतीक हैं।

हंस अपनी सुन्दर धीमी चाल के लिए प्रसिद्ध है, इसी कारण सुन्दर चाल-वाली स्त्री "हंसगामिनी" कहलाती है। सरस्वती देवी का वाहन हंस है। यह मोती चुगता है। राजहंस में नीर-क्षीर विवेक होता है। यदि दूध और पानी मिलाकर उसे दिया जाय, तो वह दूध-दूध पीकर पानी छोड़ देता है, अतएव ज्ञानी, विवेकी, भले और बुरे की पहचान समझनेवाला व्यक्ति "हंस" के समान होता है। परम ब्रह्म का साक्षात्कार करनेवाला संन्यासी 'परमहंस' कहलाता है। हंस 'आत्मा' और "प्राण" का प्रतीक है। सूर्य को भी "हंस" कहते हैं। राजहंस की शुभ्रता प्रसिद्ध है।

(६६) हरसिंगार या शेफालिका—इसके फूल केवल रात्रि में झरते हैं। स्वर्ग का यह "पारिजात" वृक्ष समझा जाता है। दुर्गापूजा में इस फूल का प्रयोग होता है। यह फूल शरद्काल के आगमन का द्योतक है। इसकी श्वेत पंखुड़ियों की सुगन्ध और पीले डंठल का पीला रंग प्रसिद्ध है। इसका पुष्प क्षणभंगुरता का प्रतीक है। कारण रात में खिलता है और उषाकाल में झरता है।

(१००) हल—श्रीकृष्ण के भाई बलराम का अस्त्र हल माना जाता है। हल की नोक (सीत) से सीता की उत्पत्ति हुई थी। इन्द्र का वज्र हल के आकार का था।

(१०१) हारिल—एक प्रकार का छोटा पक्षी, जो सदैव अपने पंजों में एक लकड़ी का टुकड़ा या तिनका लिये रहता है। लकड़ी से उसे इतना प्रेम होता है कि वह एक क्षण भी उसे छोड़ नहीं सकता, इसीलिए भक्ति के आवेश में सूरदास ने कहा है :—

"हमारे हरि हारिल की लकड़ी"

संख्या-कोश

शून्य ०

अभ्र, आकाश, नभ, व्योम, खः—शून्य संख्या के द्योतक हैं।

एक

एक—भगवान्, चन्द्रमा, पृथ्वी, क्षिति, इला, भू, ब्रह्म।

एकदन्त—गणेश

एकचक्र—सूर्य जिसके रथ में एक पहिया है।

एकाक्ष, एकनयन—कौआ, कुबेर, शुक्राचार्य।

एकेश्वरवाद—वह सिद्धान्त जिसमें ईश्वर एक माना जाता है।

दो

पाद, हस्त, लोचन, और यम—दो की संख्या के द्योतक।

दोपहर—प्रातःकाल और संध्याकाल के बीच का समय।

दो पक्ष—कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष।

दोहा—दो पंक्तियों में लिखा छन्द विशेष।

द्विज—जो दो बार उत्पन्न हुआ हो जैसे—द्विजाति, पक्षी, सर्प, दाँत और न्द्र। (१) अंडो से उत्पन्न पक्षी (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य। इनका यज्ञोपवीत स्कार दूसरा जन्म माना जाता है। (३) चन्द्रमा—पहले जन्म में चन्द्रमा अत्रि नि का पुत्र था। दूसरे जन्म में समुद्र-मंथन के समय समुद्र से निकला।

द्विरद—दो दाँतोंवाला हाथी।

द्विजदंपति—लक्ष्मी नारायण।

अयन—वर्ष के दो भाग—दक्षिणायन और उत्तरायण।

द्वन्द्व—हानि-लाभ, जीवन-मरण, सुख-दुख, उत्पत्ति-विनाश, यश-अपयश।

यमज—दो बच्चे जो एक साथ उत्पन्न हुए हों।

दो अश्विनीकुमार।

दो अक्षर—राम नाम के 'र' और 'म' अक्षर।

द्विजवाहन—गरुड पक्षी पर चढ़नेवाले विष्णु ।

द्विजेन्द्र—चन्द्रमा ।

द्विदेह—गणेश । इनका एक बार सिर कट गया था, फिर हाथी का सिर जोड़ा गया था ।

द्वैतवाद—एक सिद्धान्त जिसमें आत्मा और परमात्मा, जीव और ईश्वर दो भिन्न-भिन्न रूप माने गए हैं ।

दो पवनपुत्र—हनुमान, भीमसेन ।

तीन

गुण, राम, अग्नि—तीन के द्योतक अंक ।

तीन अग्नि—बड़वाग्नि, जठराग्नि, दावाग्नि ।

तीन अवस्था—बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था ।

तीन कर्म—संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण ।

तीन काल—भूत, भविष्य, वर्त्तमान ।

भगवान् के तीन गुण—सत्, चित्, आनन्द ।

प्रकृति के तीन गुण—रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण ।

काव्य के तीन गुण—ओज, माधुर्य, प्रसाद ।

ओम के तीन अक्षर—अ उ म (ॐ)

तीन श्रोता—मुक्त, मुमुक्षु, विषयी ।

तीन राम—श्रीराम, परशुराम, बलराम ।

तीन एषणा—सुयश, धन-राज्य, स्त्री-पुत्र ।

तीन युग—सत्ययुग, द्वापर, त्रेता ।

तीन शक्तियाँ—इच्छा, ज्ञान, क्रिया ।

तीन समय—प्रातः, मध्याह्न, संध्या ।

तीन नायिका—स्वकीया, परकीया, सामान्य ।

तीन नित्य पदार्थ—जीव, ब्रह्म, प्रकृति ।

तीन ऋण—देवऋण, गुरुऋण, पितृऋण ।

तीन क्रियाएँ—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक।

तीन धर्म—विद्या, दान, यज्ञ।

मुनित्रय—पाणिनी, कात्यायन, पतंजलि।

त्रिकूट—क्षीरोद सागर में एक पर्वत का नाम, जिस पर लंका बसी हुई थी। यह पर्वत सुमेरु पर्वत का पुत्र माना जाता था। इसके तीन शिखर थे। एक स्वर्ण शिखर, जहाँ सूर्य आश्रय लेते थे; दूसरा रजत शिखर, जहाँ चन्द्र आश्रय लेते थे और तीसरा बर्फ से आच्छादित हिम शिखर, जो वैदूर्भ इन्द्र-नील आदि असख्य मणियो से जगमगाता रहता था।

त्रिचक्र—अश्विनीकुमारों का तीन पहियों का रथ।

त्रिनयन, त्रिलोचन—शिवजी जिनका अग्निनेत्र नामक एक तीसरा नेत्र भी है। इस नेत्र की अग्नि से उन्होंने मदन-दहन किया था।

त्रिजटा—तीन जटाओंवाली लंका की एक राक्षसी।

नरक के तीन द्वार—काम, क्रोध, लोभ।

त्रिविध शक्तियाँ—प्रभु शक्ति, उत्साह शक्ति, मंत्र शक्ति।

त्रिताप, त्रिदुःख, त्रिशूल—दैविक, दैहिक, भौतिक अथवा आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक।

त्रिदंडी – मन, वचन और कर्म तीनों से षट्रिपुओं का दमन करनेवाला संन्यासी।

तीन दंड—वाग्दंड, मनोदंड, कायदंड।

त्रिदेव, त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु, महेश या दत्तात्रेय।

त्रिदोष—वात, पित्त और कफ से उत्पन्न दोष।

त्रिधातु—सोना, चाँदी, ताँबा।

त्रिधारा—स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों में बहनेवाली त्रिपथ-गामिनी गंगा।

त्रिपथ—कर्म, ज्ञान और उपासना के तीन मार्ग।

त्रिपदा—तीन पद का गायत्री मंत्र।

त्रिवेदी, त्रिपाठी—ऋक्, यजु और साम वेदों को जाननेवाला।

त्रिपुरारि—तारकासुर के पुत्रों के वनाए तीन नगरों का नाश कर वाले शिवजी।

त्रिपुरुष—पिता, पितामह, प्रपितामह की तीन ,पीढ़ियाँ।

त्रिशंकु—(१) ब्राह्मण-पत्नी हरण, (२) पिता का अपमान, (३) गाय हनन इन तीन महापापों का करनेवाला।

त्रिफला—एक ओषधि जिसमें हड, बहेडा और आँवला ये तीन फल हों

त्रिभंगी—एक विशेष मुद्रा जिसमें खड़े होने से शरीर तीन स्थानों से टेढ़ा जाता है। पेट, कमर और गर्दन पर बल पड जाते हैं। श्रीकृष्ण इसी मुद्रा खड़े होकर बाँसुरी बजाया करते थे।

त्रिलोक, त्रिभुवन—भूः, भुवः, स्वः, स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल अथवा आका पाताल और मृत्युलोक।

त्रिमद—वंश, विद्या और वैभव से उत्पन्न हुआ गर्व।

त्रिवेणी—प्रयाग जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम है। हठयो के अनुसार इडा, पिंगला और सुषुम्ना नामक तीन नाड़ियों का संगमस्थान।

त्रिशूल—तीन तीक्ष्ण नोकोंवाला महादेवजी का शस्त्र।

त्रिशिरा—रावण का एक भाई, जो खरदूषण के साथ दडक वन में र करता था इसके तीन सिर थे।

चार

कृत, श्रुति, समुद्र, अम्बुधि—चार की संख्या के द्योतक शब्द।

चार अवस्थाएँ—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, समाधि अथवा तुरीय।

चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, सन्यास।

चार कर्म—संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण, भावी।

चार पन—बाल, युवा, प्रौढ़, वृद्ध।

चार जीव—जरायुज (पिंडज), अण्डज, स्वेदज, उद्भिज।

चार दिशा—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण।

चार युग—सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग। चार युग का एक कल्प होता है।

चार फल, पदार्थ या उद्देश्य—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

चार वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

चार वर्ष—सौर, चान्द्र, सायन, नाक्षत्र।

चार नायक—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीर प्रशान्त।

चार प्रकार की स्त्रियाँ—पद्मिनी, शंखिनी, चित्रिणी, हस्तिनी।

चार मोक्ष—सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सादृश्य।

चतुरंगिणी सेना—वह सेना जिसमें, हाथी-घोड़े, रथ और पैदल ये चारों अंग हों।

चतुर्मुख, चतुरानन—चार मुखवाले ब्रह्मा।

चतुर्भुज—चार भुजाओंवाले भगवान्।

चतुर्भुजी—चार भुजाओंवाली देवी।

चतुर्वेदी—ऋक्, यजु, साम और अथर्व चारों वेदों का ज्ञाता।

चातुर्मास या चौमासा—वर्षाकाल के चार मास : आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, और आश्विन।

चार नीति, योग या उपाय—साम, दाम, दंड, भेद।

चार मत—वैष्णव, शैव, शाक्त, वेदान्त।

चार भक्त—आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी।

चार प्रमाण—प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान।

चार रिपु—काम, क्रोध, लोभ, मोह।

चार पहर (दिन)—पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, सायं।

चार पहर (रात)—प्रदोष, निशीथ, त्रियामा, उषा।

विष्णु भगवान् की चार प्रिय वस्तुएँ—शंख, चक्र, गदा, पद्म।

पाँच

मरुत, वायु, वाण, शर—पाँच की संख्या के द्योतक शब्द।

पच कन्याएं—अहल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा, मंदोदरी ये पाँच स्त्रियाँ प कन्या कहलाती है। विवाह करने पर भी इनका कौमार्य नष्ट नहीं हुआ था।

पाँच कारण—काल, स्वभाव, नियति, पुरुप, कर्म।

पाँच कर्म—सृष्टि, स्थिति, ध्वस, विधान, अनुग्रह।

पाँच मकार—मद्य, मास, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन।

पाँच वाद्य—तन्त्री, ताल, झाँझ, नगाडा, तुरही।

पचेन्द्रियाँ—नाक, कान, नेत्र, जिह्वा और त्वचा।

पंच गगा—गगा, यमुना, सरस्वती, किरणा, धूतपापा।

पचगव्य—गाय से प्राप्त पाँच द्रव्य : दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र।

पञ्चजन—गन्धर्व, पितर, देव, असुर, राक्षस।

पञ्चतत्व, पञ्चत्व या पञ्चभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ("क्षिति ज पावक गगन समीरा")।

पञ्चतरु—मंदार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष, हरिचन्दन।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ—हाथ, पाँव, वाणी, मल और मूत्र त्यागने के स्थान।

ब्रह्मचारी के पाँच लक्षण—काक चेष्टा, बकध्यान, श्वान-निद्रा, अल्पाह गृहत्याग।

पाँच इंद्रियों के विपय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध।

पञ्चदेव—आदित्य, रुद्र, विष्णु, गणेश, देवी।

पञ्चपुष्प—देवताओं के पाँच प्रिय पुष्प—चम्पा, मंजरी, शमी, कम कर्णिकार।

पञ्चपल्लव—आम, जामुन, कैथ, बिजौरा, और बेल वृक्षों के पत्ते।

पञ्चपाडव—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव।

पञ्चप्राण—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान।

पञ्चमहापाप—ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरु की स्त्री से व्यभिचार और इन पापों के कर्त्ता का संसर्ग ।

पञ्चमहायज्ञ—वेदपाठ, तर्पण, होम, बलि, अतिथि-सत्कार ।

पञ्चध्वनि—वेदध्वनि, वंदीध्वनि, जयध्वनि, शंखध्वनि, निशानध्वनि ।

पञ्चभर्तारी—द्रौपदी जिसके पाँचों पाडव पति थे ।

पञ्चबाण, पञ्चशर, पञ्चपुष्प बाण—कामदेव के पाँच बाण :—द्रवण, शोषण, तापन, मोहन, उन्मादन ।

पञ्चपुष्प—कमल, अशोक, आम्र, नवमल्लिका, नीलोत्पल के फूल ।

पञ्चपापग्रह—सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु ।

पञ्च यमनियम या महाव्रत—अहिंसा, सत्यवचन, इन्द्रिय निग्रह, शुचिता, अस्तेय ।

पञ्चरत्न—सोना, हीरा, नीलम, लाल, मोती ।

पञ्चवटी—दंडकारण्य में गोदावरी नदी के तीर पर वह स्थान, जहाँ पाँच प्रकार के वट वृक्ष अश्वत्थ, बिल्व, वट, धात्री और अशोक लगे थे। यहाँ कुछ समय रामचन्द्रजी का निवासस्थान रहा था । यहीं सीताहरण हुआ था ।

पञ्चरिपु—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद ।

पञ्चमाता—जन्म देनेवाली माता, गुरुपत्नी, सास, राजपत्नी, जन्मभूमि ।

पञ्चाक्षरी—नमोशिवाय मंत्र के न, म, श, व, य पाँच अक्षर ।

पञ्चदानवीर—त्यागवीर, दयावीर, विद्यावीर, पराक्रम-महावीर, धर्मवीर ।

आत्मा के पञ्चकोष—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष ।

पञ्चनीराजन—दीप, पुष्प (कमल), वस्त्र, आम्रपत्र, पानपत्र से की हुई पाँच प्रकार की आरती ।

पञ्चनाथ—बद्रीनाथ, द्वारकानाथ, जगन्नाथ, रंगनाथ, श्रीनाथ ।

पचांग—तिथिपत्र जिसमें संवत् के पाचों अंग वार, तिथि, नक्षत्र, योग और करण लिखे हों । वृक्ष के पाँच अंग एक ही शाखा की छाल, पत्र,, पुष्प, मूल, फल ।

पंचाग्नि—अन्वाहार्य्य, पचन, गार्हपत्य, आहवनीय और आवसथ्य।

पंचामृत—दूध, दही, घी, चीनी और मधु जिनसे देवता स्नान करते थे और आज भी जिनसे भगवान् की प्रतिमा का स्नान करवाया जाता है।

पञ्चानन—शिवजी, जिनके पाँच मुख माने जाते हैं। सिंह—सिंह सदैव मुख खोले चारों दिशाओं की ओर देखनेवाला होता है। चार पंजे और मुँह मिला कर बहुत से लोग सिंह को पञ्चानन कहते हैं। मुँह चौड़ा होने के कारण भी वह पञ्चानन कहलाता है।

पञ्चलवण—काचक, सैंधव, सामुद्र, बिड, सौवर्चल।

पञ्चनद—शतद्रु, विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता।

पञ्चपिता—जनक, उपनेता, कन्या का श्वशुर, अन्नदाता, भयत्राता।

छः (षट्)

अंग, तर्क, ऋतु, रस—छः की संख्या के द्योतक शब्द।

छः ईतियाँ—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डीदल, मूषक आक्रमण, खगवृन्द।

षट्कर्म—ब्राह्मणों के छः कर्म—यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, याचना, दान। राजा के छः कर्म—सन्धि, विग्रह, दान, आसन, द्वैधीभाव, समाश्रय।

षट्कर्ण—कहनेवाले और सुननेवाले के अतिरिक्त तीसरे व्यक्ति को कही हुई बात—छः कानों में पड़ी बात।

षडंग या छः वेदांग—वेद के छः अंग–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष।

शरीर के छः अंग—दो पैर, दो हाथ सिर और धड़।

आरती के छः अंग—धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, आरती, वन्दन।

षडाग्नि—धूमाग्नि, मन्दाग्नि, दीपाग्नि, मध्यमाग्नि, खराग्नि, मयाग्नि।

षडानन—कार्त्तिकेय जिनके छः मुख थे।

छः सूर्यपुत्र—शनि, यम, वरुण, अश्विनीकुमार, सुग्रीव, कर्ण।

मनुष्य के छः लक्षण—इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख-विज्ञान, चेतना, धृति, यत्न।

छः दुःख—गर्भ, जन्म, रोग, जरा, क्षुधा, मरण।

सात

अश्व, पर्वत—सात की संख्या के द्योतक।

राजा के सात अङ्ग—मन्त्री, शस्त्र, अश्व, गज, देश, कोष, कोट अथवा स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोष, राज्य, दुर्ग और बल।

सात रङ्ग—लाल, नारङ्गी, पीला, हरा, नीला, आसमानी, बैंगनी।

सप्तर्षि अथवा ब्रह्माजी के सात पुत्र—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, वसिष्ठ। अथवा गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, यमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि।

सात अप्सराएँ—घृताची, मेनका, रंभा, उर्वशी, तिलोत्तमा, सुकेशी, मंजुघोषा।

सप्तजिह्व—अग्नि जिसकी सात जीभें मानी गई हैं।

सप्तद्वीप—जम्बु, कुश, प्लक्ष अथवा गोमेद, शाल्मलि, क्रौंच, शाक, पुष्कर।

सप्तवायुमार्ग—आवहः, प्रवहः, संवहः, उद्वहः, विवहः परिवहः, परिवाहः।

सप्तपदी—विवाह की सात भाँवरें।

सात तल—अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल।

सप्तलोक—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यः।

सात अवध्य—ब्राह्मण, गौ, कुटुम्बी, बालक, स्त्री, अन्नदाता, शरणागत।

सप्तपुरी—अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, काची, अवन्ती, द्वारका।

सप्तसप्ति, सप्ताश्व—सूर्य जिसके रथ में सात घोड़े हैं।

सप्तपर्वत—मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुवर्ण, हिरण्यष्ठ और मेघमाल, अथवा हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत तथा शृङ्ग

सप्तस्वर—षडज, ऋषभ, गन्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद।

सप्तसागर—लवण, इक्षु, दधि, क्षीर, मधु, सुरा, घृत।

सप्ताह के सात दिन—रविवार, सोमवार, मङ्गलवार, बुधवार, गुरुव शुक्रवार, शनिवार।

सप्तमातृका—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, चामु माहेन्द्री।

सात रिपु—निद्रा, आलस्य, स्वाद, सुख, काम, चिन्ता, केलि।

सात सुख—खान, पान, परिधान, ज्ञान, गान, शोभा, संयोग।

सात काण्ड—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरक युद्धकाण्ड, उत्तरकाण्ड।

सप्त चिरंजीविन्—अश्वत्थामा, वलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, ३ परशुराम।

आठ

सर्प, नाग, गज, सिद्धि—आठ की संख्या के द्योतक शब्द।

आठ पहर—दिन-रात, पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, सायं, प्रदोष, निश त्रियामा, उषा।

आठ अवगुण—पैशुन्य, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थ दूषण, वाग पारुष्य।

आठ गुण—बुद्धि, कुलीनता, शास्त्रज्ञान, इन्द्रियनिग्रह, पराक्रम, ि भाषण, दान, कृतज्ञता।

अष्ट कुल—सर्पों के आठ कुल : शेष, वासुकि, कंबल, कर्कोटिक, पद्म, महापद्म, शंख, कुलिक।

अष्टचक्र, अष्ट कमल—हठयोग के अनुसार मूलाधार, विशुद्ध, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान, अनाहत, आज्ञा, सहस्रार, सुरति।

अष्ठ धातु—सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, जस्ता, सीसा, लोहा, पारा।

अष्ट दिशा—उत्तर, वायुकोण, पश्चिम, नैऋत्यकोण, दक्षिण, अग्निकोण, पूर्व, ईशान।

अष्टदिग्गज—सार्वभौम, पुष्पदन्त, अंजन, कुमुद, वामन, पुंडरीक, ऐरावत, सुप्रतीक।

अष्ट दिग्पाल—इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, राक्षस, वायु, शिव।

अष्ट सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व।

अष्ट वसु—एक मत से पृथ्वी, वायु, अंतरिक्ष, आदित्य, द्यौ, अग्नि, चन्द्र, नक्षत्र, दूसरे मत से धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास आठ वसु हैं।

अष्टांग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

अष्टांग विकार—सतोगुण से उत्पन्न शरीर के आठ विकार होते हैं—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय।

साष्टांग प्रणाम—जानु, पद, हाथ, उर, सिर, मन, वचन, दृष्टि इन आठों अंगों से प्रणाम करना।

अष्टाक्षर मंत्र—ॐ नमोः नारायणाय।

अष्टावक्र—आठ अंगों से टेढ़े एक विद्वान् ऋषि।

अष्टमातृका—ब्राह्मी, माहेश्वरी, चंडी, वाराही, वैष्णवी, कौमारी, चामुंडा, चर्चिका।

अष्टाध्यायी—पाणिनी का बनाया एक ग्रंथ जिसमें आठ अध्याय हैं।

अष्टछाप—सूरदास, कृष्णदास, परमानन्द, कुंभनदास, चतुर्भुज, नन्ददास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी।

ग्यारह अवस्थाएँ—विरह की एकादश अवस्थाएँ होती हैं:—अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्च्छा और मरण।

ग्यारह इन्द्रियाँ अथवा एकादश द्वार—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—चक्षु, श्रोत्र, नासिका, रसना, त्वचा, और पाँच कर्मेन्द्रिय—वाणी, हाथ, पैर, गुदा, लिंग और एक उभयात्मक अन्तरेंद्रिय—मन।

बारह

द्वादशलोचन—कार्त्तिकेय।

बारह राशियाँ—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ, मीन।

बारह आभरण—नूपुर, चूड़ी, हार, कंकण, अँगूठी, बाजूबन्द, बेसर, बिरिया, टीका, शीशफूल, करधनी, कंठश्री।

बारह मास और बारहमासा—बारह महीनों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए जो पद्य या गीत गाया जाता है, वह बारहमासा कहलाता है। बारह महीनों के नाम हैं: चैत, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, या कुआर, कार्तिक, अगहन या मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन।

बारह सूर्य—विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शुक्र, उरुक्रम।

बारह बान—द्वादश वर्ण का बहुत ही खरा सोना।

बारह स्वर और बारहखड़ी—अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः इन बारह स्वरों को मात्रा के रूप में जब व्यंजनों में लगाते हैं, तो वह वर्णमाला बारहखड़ी कहलाती है।

बारह कलाएँ—सूर्य की बारह कलाओं के नाम हैं—तपनि, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी, क्षमा।

द्वादश संस्कार—गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, केशान्त, समावर्त्तन, विवाह।

तेरह

तेरहीं—किसी के मरने की तेरहवीं तिथि। अतएव तेरह की संख्या अशुभ-सूचक और अमंगल मानी जाती है। पश्चिमीय देशों में भी तेरह की संख्या अनिष्टकारक समझी जाती है।

तेरस—किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि। त्रयोदशी का व्रत प्रदोष भी कहलाता है।

तेरह दक्षकन्या—कश्यप मुनि का विवाह दक्ष की तेरह कन्याओं से हुआ था, उनके नाम हैं—अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, मनु, कद्रु और सिंहिका।

पांडव वनवास—बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास।

चौदह

इन्द्र, मन्वन्तर—चौदह की संख्या का द्योतक।

चौदह भुवन, चौदह लोक— तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक।

चौदह रत्न—कालकूट, विष, रंभादि अप्सराएँ, धन्वन्तरि, वारुणि नामक सुरा, उच्चैःश्रवा, कौस्तुभ, अमृत, ऐरावत, कल्पवृक्ष, कामधेनु, चन्द्रमा, लक्ष्मी, धनुष, शंख।

चौदह विद्याएँ—ब्रह्मज्ञान, रसायन, वेद, वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण, धनुर्विद्या, जल में तैरना, संगीत, अभिनय, अश्वारोहण, कोकशास्त्र, कृषि, न्याय।

चौदह मनु—स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्म सावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि, इन्द्र सावर्णि।

चौदह इन्द्रियाँ—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और चार अन्तरेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त।

चौदह यम—यम, धर्मराज, मृत्यु, अंतक, वैवस्वत, नील, काल, सर्वभूतक्षय, उदुंबर, दध्न, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र, चित्रगुप्त।

रामवनवास—चौदह वर्ष का वनवास।

पन्द्रह

तिथि—१५ संख्या की द्योतक।

पक्ष—चाद्रमास के पन्द्रह दिनों का एक पक्ष या पखवारा कहा जाता है।

सोलह

नृप—राजा में सोलह कलाएँ होती हैं, अतएव १६ संख्या का द्योतक शब्द

सोलह कला—चन्द्रमा की सोलह कलाओं के नाम हैं : अमृता, मानदा, पू पुष्टि, तुष्टि, रति, धृति, शशनी, चन्द्रिका, काति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगद पूर्णा, पूर्णामृता।

षोडश मातृका—गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेन स्वधा, स्वाहा, शान्ति, पुष्टि, धृति, तुष्टि, मातरः, आत्मदेवता।

षोडश उपचार—आवाहन, आसन, अर्घ्यपाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्ना वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, गध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताबूल, परिक्रमा औ वन्दना।

षोडश शृंगार—अंग में उबटन लगाना, स्नान करना, स्वच्छ वस्त्र धार करना, बाल सँवारना, काजल लगाना, सिन्दूर से माँग भरना, महावर लगाना, मा पर बिन्दी लगाना, चिबुक पर काला तिल लगाना, मेंहदी लगाना, सुगंधि द्रव्य इत्यादि लगाना, आभूषण पहनना, पुष्पहार धारण करना, पान खान मिस्सी लगाना।

षोडश पूजा—आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, फिर से आच मन, स्नान, वस्त्राभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वन्दना।

सोलह संस्कार—गर्भाधान, पुसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारभ, समावर्त्तन, विवाह, वानप्रस्थ संन्यास, अन्त्येष्टि-संस्कार।

सत्रह

सत्रह—पाँसे के खेल में एक दाँव, जिसमें दो छक्के और एक पंजा तीन एक साथ पढते हैं।

अठारह

अठारह पुराण—विष्णु, पद्म, ब्रह्म, शिव, भागवत, नारद, मार्कंडेय, अग्नि, [वै]वर्त, लिंग, वाराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड, ब्रह्माड और भविष्य।

अठारह उपपुराण—सनत्कुमार, नारसिंह, नारदीय, शिव, दुर्वासा, कपिल, [मान]व, औशनस, वरुण, कालि, शाव, नन्दा सौर, पराशर, आदित्य, माहेश्वर, [भार्ग]व, वाशिष्ठ।

महाभारत के अठारह पर्व—आदिपर्व, सभापर्व, वनपर्व, विराटपर्व, [उद्य]ोगपर्व, भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शल्यपर्व, सौन्द्रिकपर्व, स्त्रीपर्व, [शा]न्तिपर्व, अनुशासनपर्व, अश्वमेधपर्व, मौसलपर्व, महाप्रस्थानपर्व, स्वर्गा-[रोह]ण पर्व।

उन्नीस

उन्नीस—परिमाण में कम।

बीस

नख—बीस संख्या के द्योतक। हाथ-पैर के बीस नाखून।

बीस भुज— रावण का एक नाम, उसके बीस हाथ थे।

कोडी—बीस का समूह।

इक्कीस

स्वर्ग, नरक मूर्च्छना—२१ संख्या के द्योतक शब्द।

इक्कीस नरक—तामिस्र, अंधतामिस्र, रौरव, महारौरव कुंभीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, शूकर मुख, अंधकूप, कृमिभोजन, सदंश, तप्तशूर्म्मि, वज्रकंटक, शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीची, अयः पान।

इक्कीस मूर्च्छनाएँ—संगीत शास्त्र के अनुसार उत्तरमुद्रा, रजनी, उत्तरायणी, शुद्ध षडजा, मत्सरी क्रान्ता, अश्वक्रांता, अभिरुता, सौवीरी, हरिणाश्वा, कपोलनता

शुद्धमध्या, मार्गा पौरवी, मंदाकिनी, नदा, विशाला, सोमपी, विचित्रा, रो सुखा, अलापी।

बाइस

बाइसी—बाइस पद्यों का समूह।

चौबीस

चौबीस गुरु—दत्तात्रेय के चौबीस गुरुओं के नाम थे : पृथ्वी, वायु, आका जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, सागर, पतंग, भ्रमर, हाथी, मधुहा हरिण, मत्स्य, पिंगला, वेश्या, गिद्ध, बालक, कन्या, बाण बनानेवाला, स मकड़ी, तितली।

चौबीस अवतार—मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, रा कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, ब्रह्मा, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृ धन्वन्तरि, मोहिनी, बलराम, वेदव्यास, हंस, हयग्रीव।

पच्चीस

पचीसी—पच्चीस का सग्रह अथवा पचीस वर्ष की आयु।

पचीसी—एक प्रकार का चौसर जैसा खेल।

सत्ताईस

सत्ताईस नक्षत्र—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आ पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वा विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रावण, धनिष्ठ शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, रेवती। पुराणानुसार ये २७ नक्षत्र दक्ष पुत्रियाँ हैं, जो चन्द्रमा को ब्याही है।

बत्तीस

दशन—३२ सख्या का द्योतक।

सिंहासन बत्तीसी—विक्रमादित्य के सिंहासन की बत्तीस पुतलियाँ।

बत्तीसी—दाँतों की पक्ति। मनुष्य के नीचे ऊपर के दांत मिलाकर बत्त ।

तैंतीस

अमर—३३ की संख्या का द्योतक।

संचारी भाव—निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, मद, धृति, आलस्य, [विष]ाद, मति, चिन्ता, मोह, स्वप्न, विबोध, स्मृति, आमर्ष, गर्व, उत्सुकता, [अ]वहित्थ, दीनता, हर्ष, क्रीडा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, [त्र]ास, उन्माद, जडता, चपलता, वितर्क।

व्यंजन—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग के २५ व्यंजन और य, र, ल, [व]ा, श, ष, स, ह।

देवता—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र और प्रजापति।

छत्तीस

छत्तीस—३६ की संख्या में ३ और ६ एक दूसरे की ओर पीठ किए हैं, अतः छत्तीस वैरभाव का द्योतक है।

छत्तीसा—चतुर, सयाना, धूर्त।

अन्य

उन्चास—उन्चास प्रकार के मरुत् पवन होते हैं।

छप्पन—पाक-शास्त्र में छप्पन प्रकार के व्यंजन प्रसिद्ध हैं।

त्रेसठ—६३ में ६ और ३ की संख्या एक दूसरे की ओर मुख किये हैं, अतएव मित्रता के भाव।

चौंसठ कलाएँ—गीत, नृत्य, चित्रकारी, सूचीकर्म, सूत्रकर्म, पुस्तकवाचन, वास्तु विद्या, प्रहेलिका, देशभाषा ज्ञान, द्यूत, केशमार्जन, इन्द्रजाल, मणिराग ज्ञान, शुकसारिका प्रलापन, हस्तलाघव इत्यादि चौंसठ कलाएँ होती हैं।

शतक, शती—सौ वस्तुओं का संग्रह।

शताब्दी—सौ वर्षों का समय।

शतायु—सौ वर्ष की आयुवाला।

शतायुध—सौ अस्त्रोंवाला।

शतक्रतु—इन्द्र जिसने सौ यज्ञ किए हों।

शतजिह्व—महादेव ।

शतदल—कमल जिसकी सौ पंखड़ियाँ हों ।

शतघ्नी—सौ को मारनेवाला अस्त्र ।

शतपादी—सौ पैरोंवाला एक कीड़ा ।

शतानीक—सौ सैनिकों का नायक ।

शतावधान—सौ बातों पर एक साथ ध्यान रखनेवाला व्यक्ति ।

सौ कौरव—दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, जलसन्ध, सम, सह्र, अनुविन्द, दुर्धर्ष, सुबाहु, दुर्गम, चित्रायुध, नागदत्त, दीर्घबाहु, अभय, प्रमथ, कनकध्वज, विरजा इत्यादि धृतराष्ट्र और गान्धारी के सौ पुत्र ।

सहस्रानन—विष्णु

सहस्रनयन—इन्द्र ।

सहस्रदल कमल या सहस्रार—योग के अनुसार एक कल्पित कमल, जो मनुष्य के मस्तक में है ।

सहस्रबाहु—हजार भुजाओंवाला हैहयराज ।

सहस्रवदन—शेषनाग ।

सहस्रांशु, सहस्रकिरण—सूर्य ।

चौरासी लाख योनियाँ—९ लाख जलचर, ४ लाख मनुष्य, २७ लाख स्थावर, ११ लाख कृमि, १० लाख पक्षी, २३ लाख चौपाये ।

पौराणिक परिचय

अनुक्रमणिका